अप्रैल - अक्तूबर 2009 वर्ष : 41 अंक : 2/3

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में विकसित प्रौद्योगिकी

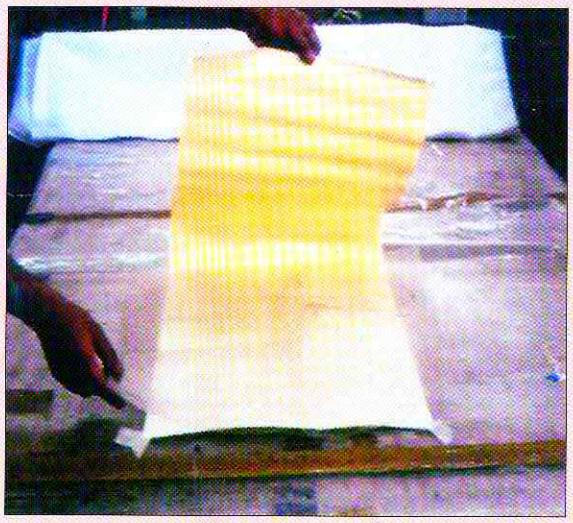

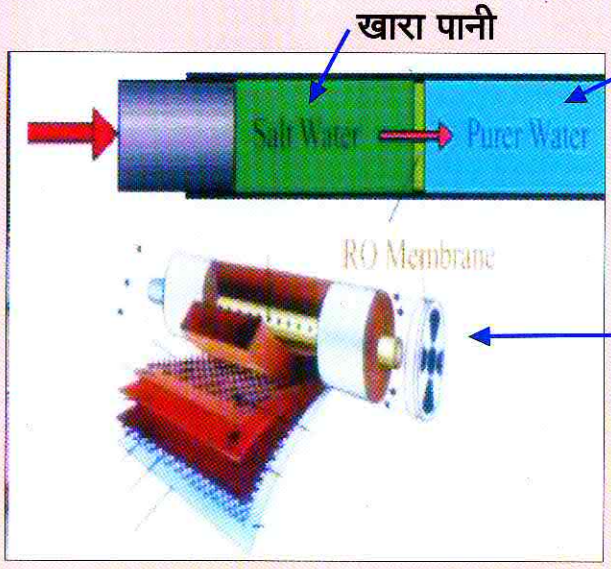

जल शुद्धिकरण हेतु विपरीत ऑमोसिस - झिल्ली (मेंबरेन)

: मूल्य :
20 रु.

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता – 2010

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा. प. अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित **हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता** हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर मौलिक एवं आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। लेख का अप्रकाशित होना अनिवार्य है। **मूल्यांकन में नवीनतम जानकारी के साथ-साथ अच्छे रेखाचित्रों / फोटोग्राफों, तालिकाओं इत्यादि को समुचित महत्त्व दिया जाता है।** अतः चित्रों को अलग से सफेद कागज / ट्रेसिंग पेपर कर काली रोशनाई (इंडिया इंक) से बनायें। फोटोग्राफ ब्लैक एंड व्हाइट हों तो उचित रहेगा। इन्हें लेख के अंत में संलग्न करें। नीचे दिये गये पते पर कृपया दो टंकित अथवा स्पष्ट हस्तलिखित प्रतियां (लगभग 3000-4000 शब्द) भेजें।

अंतिम तिथि : 31 दिसंबर 2010

पुरस्कार

प्रथम	-	**2000/ रु.**
द्वितीय	-	**1500/- रु.**
तृतीय	-	**1000/- रु.**
प्रोत्साहन	-	**500/- रु.**

पाँच प्रोत्साहन पुरस्कार एवं अहिंदी भाषी प्रतियोगियों को दो विशेष पुरस्कार 500/- रु. (प्रत्येक) के दिये जायेंगे। अतः अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं "वैज्ञानिक" की संपत्ति होगी। "वैज्ञानिक" पत्रिका से संबंधित पदाधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे। यदि रचना एक ही लेखक द्वारा लिखी गयी हो तो उचित होगा।

प्रविष्टियां भेजने का पता :

श्री विपुल सेन
प्रतियोगिता संयोजक एवं व्यवस्थापक "वैज्ञानिक"
वैज्ञानिक अधिकारी, एन.आर.जी.(पी.) NRG(P), पी पी
भा.प.अ.केंद्र (B.A.R.C.), मुंबई - 400 085. फोन : 022 25591154

अ नु क्र म णि का

वैज्ञानिक

वर्ष 41 अंक 2/3

अप्रैल - सितंबर 2009

प्रतियोगिता विशेषांक

: संपादन मंडल :

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
(संयोजक)
श्री जयप्रकाश त्रिपाठी
श्री कवींद्र पाठक
श्री शिवकुमार सिंह
श्री कुलवंत सिंह

: व्यवस्थापन मंडल :

श्री विपुल सेन
(संयोजक)
श्री डी. एन. सिंह
श्री संजय गोस्वामी
श्री पी. एम. गांधी

वार्षिक शुल्क

आजीवन	संस्थागत	व्यक्तिगत
400 रु.	100 रु.	50रु.

कार्यालय

"वैज्ञानिक", हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेन्ट्रल कांप्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई - 400 085.

संपादकीय 3

लेख

1. जीवन विस्तार के उत्तरापेक्षी वंशाणु तथा जरावस्थारोधी औषधियों की खोज 5
   - रामप्रताप तिवारी
2. गंजेपन की समस्या - कारण एवं उपाय 14
   - सलमान हसन
3. प्रकृति का वरदान - गोबर एवं गौ-मूत्र 21
   - डॉ. सविता गुप्ता
4. आज तक के चंद्र-मिशन और उनके उद्देश्य 33
   - डॉ. देवकी नंदन
5. थिरैप्टैरा परजीवियों के अण्डों की संरचना द्वारा इनकी प्रजाति की पहचान 44
   - डॉ. आदेश कुमार
6. फ्लोराइड विषाक्तता : फ्लोरोसिस 50
   - डॉ. शान्ति लाल चौबीसा
7. भारतीय क्षेत्रीय नौसंचालन उपग्रह प्रणाली - आईआरएनएसएस 55
   - जितेन्द्र खर्डे
8. नैनो तकनीकी के दो आधार स्तंभ : क्रमवीक्षण संसूचक तकनीक तथा परमाणु बल संसूचक तकनीक 58
   - डॉ. यशवंत नाईक

टिप्पणियां

1. साईबर कानून एवं अपराध 64
   - डॉ. एन. के. बोहरा
2. श्वसन संस्थान के संक्रमण 66
   - डॉ. प्रेमचंद स्वर्णकार, एम.डी.
3. फैक्टरी कर्मियों को हो सकते हैं खतरनाक रोग 68
   - डॉ. प्रेमचंद स्वर्णकार, एम.डी.

✪ *"वैज्ञानिक"* में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

✪ *"वैज्ञानिक"* में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित हैं।

✪ *"वैज्ञानिक"* एवं हिं. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा।

"वैज्ञानिक" में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिये उपयोग कर सकते हैं। परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री 'वैज्ञानिक' से साभार

4. **टाइफा - इंदिरा गांधी नहर की एक उपयोगी खरपतवार** 71
- डॉ. एम. के. बोहरा

विज्ञान कविता

1. **रिहाई** 32
- सीताराम गुप्ता

2. **प्रकृति अपनी बदल** 79
- श्रीमती रवि रश्मि 'अनुभूति'

विज्ञान समाचार

* **भा.प.अ. केंद्र से** 74

* **अन्य विज्ञान समाचार** 77

कुछ फूल : कुछ कांटे 80

आवरण पृष्ठ पर दिये गये चित्र का विवरण.....

पॉलीएमाइड, संश्लिष्ट परानिस्यंदन झिल्ली : खारा पानी निर्लवणीकरण हेतु

चित्र में बाँयी ओर प्रदर्शित, भा.प.अ. केंद्र में विकसित एक पॉलीएमाइड संश्लिष्ट परानिस्यंदन झिल्ली है, जिसका उपयोग समुद्र के खारे पानी के निर्लवणीकरण हेतु किया जाता है। इनके द्वारा समुद्र के पानी में लगभग 99% खारापन घटाया जा सकता है।

चित्र में दाँयी ओर परानिस्यंदन विधि का एक सरलतम स्वरूप दिखाया गया है। इस विकसित झिल्ली का उपयोग पानी में खारापन दूर करने के साथ साथ फार्मास्यूटिकल एवं जैवतकनीकी, प्रदूषित जल, विद्युत लेपन, रंग, दुग्ध, खाद्य तथा पेय पदार्थों से संबंधित उद्योगों में होगा।

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद कार्यकारिणी समिति (वर्ष 2009–2011)

क्र. सं.	पद नाम	पदाधिकारी का नाम	क्र. सं	पद नाम	पदाधिकारी का नाम
1.	अध्यक्ष	डॉ. कृष्णा बी. सैनिस	9	सदस्य	श्री राजेश कुमार मिश्र
2.	उपाध्यक्ष	डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल	10.	सदस्य	श्री किशन चंद
3.	सचिव	श्री जयप्रकाश त्रिपाठी	11.	सदस्य	श्री ए. के. अहिरवार
4.	कोषाध्यक्ष	श्री दीनानाथ सिंह	12.	सहयोजक सदस्य	श्री कुलवंत सिंह
5.	सहसचिव	श्री सत्य प्रभात प्रभाकर	13.	सहयोजक सदस्य	श्री पी. के. रामटेके
6.	सदस्य	डॉ. सुभाष त्रिपाठी	14.	सहयोजक सदस्य	श्री विपुल सेन
7.	सदस्य	श्री जगदीश शर्मा	15.	सहयोजक सदस्य	श्री एम. सी. गोयल
8.	सदस्य	श्री कवींद्र पाठक			

संपादकीय

पेयजल - एक सुविचारित प्रबंधन आवश्यक

22 मार्च 2010 विश्व जल दिवस के रूप में घोषित किया गया है। आखिर एक आम प्रतीत होने वाली वस्तु के बारे में सारा विश्व इतना चिंतित क्यों ? वस्तुतः पानी एक ऐसी आम वस्तु है जो हवा के बाद हर प्राणी के लिए नितांत आवश्यक है। यह एक ऐसी प्राकृतिक वस्तु है जो गैस, द्रव तथा ठोस तीनों अवस्थाओं में पायी जाती है। इसके व्यवहार में ऐसी विचित्रताएं हैं कि वैज्ञानिक पिछले 40-50 वर्षों से इसे सही तौर पर जानने एवं समझने हेतु प्रयत्नशील है। इस विषय पर मैंने 'वैज्ञानिक' के जनवरी-जून 2006 के अंक में कुछ प्रकाश डाला था। वह जानकारी तो थी पानी के अणु के बारे में जो हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन के परमाणुओं मिलकर बना है। परंतु आज हम चर्चा कर रहे हैं पानी की उस समस्या की जो सारे विश्व के लिए एक अहम् प्रश्न बन गया है यानी वे स्वच्छ पेयजल स्त्रोत जो हमारी औद्योगिक एवं वैज्ञानिक प्रगति के साथ बढ़ती मांग की विपरीत दिशा में अग्रसर होते जा रहे हैं। पृथ्वी की सतह पर लगभग 70% पानी मैजूद होने के बावजूद स्वच्छ पेयजल की उपलब्धता में कमी होना विश्व के लिए चिंता का कारण अनुचित नहीं लगता है।

ऐसा माना जाता है कि पृथ्वी पर जीवन की शुरुआत जल की उपलब्धता के साथ हुई है। इसीलिए यह भी माना जाता है कि पृथ्वी पर आरंभ में जल मौजूद नहीं था जो अतीत में धरती पर हुई अनेक प्राकृतिक गतिविधियों एवं घटनाओं के बाद उपलब्ध हुआ और इसका वातावरण जीवन योग्य बना। जीवन विकास के क्रम में अनेक सभ्यताएँ (जैसे यूनान, मिस्त्र, सिंधु घाटी इत्यादि) नदियों के आस पास ही पनपी हैं।

स्वच्छ पेयजल जन जीवन की एक अहम् आवश्यकता है क्योंकि दूषित पेयजल कई रोग, बिमारियों, महामारियों को जन्म दे सकती है। साथ ही विश्व की जनसंख्या में हो रही निरंतर वृद्धि के कारण सुरक्षित पेयजल में भी कमी होती जा रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ के एक आँकड़े के आधार पर 2025 तक विश्व में लगभग आधे देशों में ताजे पानी के स्त्रोतों की कमी पूर्णतः सामने आ जाएगी और मध्य शताब्दी तक पृथ्वी की 75% जनसंख्या पानी की कमी की शिकार हो जाएगी। एक ओर जन संख्या वृद्धि तो दूसरी ओर विज्ञान एवं औद्योगिकी विकास गति के फलस्वरूप जनजीवन के स्तर में सुधार (आमदनी में बढोत्तरी), दोनों ही पानी की मांग में वृद्धि के स्पष्ट कारण हैं। यही नहीं अपशिष्ट का त्रुटिपूर्ण निपटान, औद्योगिक संदूषकों का निष्कासन, उर्वरकों की अधिकता तथा तटीय खारे पानी का भूमिगत स्वच्छ जल स्त्रोतों में मिलन इत्यादि हमारे जल स्त्रोतों को दूषित कर रहे हैं।

एक व्यक्ति की सब कामों के लिए पानी की कितनी आवश्यकता है ? 'स्टॉकहोम अंतर्राष्ट्रीय जल संस्थान' तथा विश्व में अन्य विशेषज्ञों ने पाया कि कम से कम औसतन 1000 घन मीटर पानी की प्रति वर्ष, प्रति व्यक्ति पीने, जनस्वास्थ्य, खाद्य पैदावर इत्यादि के लिए आवश्यकता होती है। किसको कितना पानी मिल पाता है यह निर्भर करता है कि वह पृथ्वी के किस भाग में रहता है क्योंकि जल का प्राकृतिक वितरण भी भिन्न भिन्न है। विश्व की सभी बड़ी बड़ी नदियां जैसे गंगा, नील, जार्डन, यांग्त्जे में जल मात्रा लगातार कम होती जा रही है। पर्यावरणीय कारणों से भूमिगत स्त्रोतों का जल स्तर भी घटता जा रहा है, अतः स्वच्छ पेयजल यानी ताजे पानी की समस्या न केवल अविकसित, विकासशील देशों तक सीमित है बल्कि कई विकसित राष्ट्र भी इसकी चपेट में आते जा रहे हैं। हालांकि विश्व के देशों की अपेक्षा भारत में सबसे अधिक वर्षा होती है, यह अमरीका की प्रतिवर्ष औसत वर्षा का लगभग 5 गुना है, परंतु हमारी जनसंख्या एवं जल के सही प्रबंधन के अभाव के कारण यहां पर पेयजल समस्या विकराल रूप धारण करने जा रही है। अतः समय रहते सही आर्थिक एवं राजनैतिक सोच एवं निर्णय के साथ साथ आधुनिक पद्धतियों को अपनाने के प्रयास बढ़ाने होंगे। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्त्वावधान में कनाड़ा में हुए एक अधिवेशन में 1990 तक सभी को पेयजल उपलब्ध कराने की बात कही गयी थी। 1981-1991 दशक जल आपूर्ति एवं स्वच्छता दशक के तौर पर मनाया गया। इसी प्रकार 'रियो' में हुए पृथ्वी सम्मेलन में 2015 तक सबको साफ पीने का पानी उपलब्ध कराने पर जोर दिया गया। भारत ने भी अपने तौर पर इस दिशा में कई योजनाएँ कार्यान्वित की हैं।

हमारे पास दो विकल्प हैं; एक उपलब्ध स्रोतों का सही समाकलित प्रबंधन तथा दूसरा दूषित जल का आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों से स्वच्छीकरण। एक ओर हमारा उद्देश्य है जल को व्यर्थ होने से बचाना, वहीं दूसरी ओर उन क्षेत्रों जिसमें अत्यधिक पानी उपयोग में आता है जैसे सिंचाई एवं उद्योग (उदाहरण के तौर पर एक डेनिम जीन बनाने में एक मानक साइज के ट्रक के टैंक के बराबर पानी लगता है) तक पहुँचाना। वर्तमान सिंचाई के तरीके तथा खेती पद्धति के रहते तो पानी की समस्या निरंतर बढ़ती ही जायेगी। इसलिए सिंचाई के दौरान प्रयुक्त साधनों (नहर, पाइप लाइन इत्यादि) में सरण द्वारा व्यर्थ होने वाले पानी को रोकने से अच्छे परिणाम मिल सकते हैं। प्रबंधन में सबसे अहम् होगा उच्च जल आपूर्ति क्षेत्रों (जहाँ अधिक वर्षा होती है) से किसानों के लिए फसल हेतु आवश्यक समय पर जल पहुँचाने का कार्य। इसके लिए वर्षा काल में पानी को बाँध द्वारा रोकने और सही समय पर खेती के लिए छोड़ने वाली योजना को प्रभावी तौर पर कार्यान्वित करने की दिशा में जोर देना होगा। चूंकि खुले बाँध में वाष्पन द्वारा पानी काफी उड़ जाता है अतः भूमिगत जल बैंकों (अमरीका के एरिजोना, कैलीफोर्निया इत्यादि जगहों पर सुचारु रूप से काम कर रहे हैं) के निर्माण किये जा सकते हैं। एक संकल्पना के अंतर्गत जिसे 'काल्पनिक पानी' **(Virtual Water)** की संज्ञा दी जाती है, में सूखाग्रस्त क्षेत्रों तथा रेगिस्तान में फसल उपजाने के लिए अत्यधिक पानी उपयोग करने के स्थान पर वहाँ खाद्य सामग्रियों को यथा समय पहुँचाना पानी की बचत कर सकता है।

बहरहाल उपरोक्त पानी प्रबंधन के लाभ अपनी जगह हैं जन जीवन के लिए पीने एवं जन स्वास्थ्य (हाइजीन) के लिए बहता पानी भी अत्यन्त आवश्यक है। शहरों में ऐसे पानी की बढ़ती माँग के लिए एक ओर पीने के लिए पानी आधुनिक युक्तियों (फिल्टर, एक्वागार्ड इत्यादि) का प्रयोग तो दूसरी ओर जल आधारित वैयक्तिगत स्वच्छता के तरीकों में परिवर्तन की आवश्यकता है। मूत्र पृथ्थकीकरण निकाय वाले शुष्क कंपोस्टिंग शौचालय का निर्माण अच्छा विकल्प है। इसमें मूत्र का उपचार कर जल सिंचाई के काम में प्रयोग किया जा सकता है, जबकि लवण इत्यादि उर्वरक के रूप में।

ताजे पानी की माँग पर नियंत्रण रखने के अलावा अतिरिक्त स्वच्छ पेयजल भी तैयार करने के लिए आज विज्ञान ने नये साधन उपलब्ध करा दिये हैं। हम जानते हैं कि पृथ्वी की सतह पर केवल 3% ही ताजा (स्वच्छ जल) है, बाकी खारा। हम खारे पानी को विलवणीकृत कर पीने योग्य बना सकते हैं। इस कार्य के लिए ऊर्जा दक्ष विलवणलीकरण हेतु आवश्य प्रौद्योगिकी तैयार है। परानिस्यंदन **(Reverse Osmosis)** झिल्ली वाले निकाय विकसित किये जा चुके हैं (भा.प.अ. केंद्र में विकसित ऐसे एक निकाय का चित्र आवरण पृष्ठ पर दिया गया है)। इस के उपयोग से तटीय क्षेत्रों में पीने योग्य स्वच्छ जल कम कीमत पर उपलब्ध हो सकता है। हालांकि अभी इस प्रकार के पेय जल को जन सामान्य तक पहुँचाना मंहगा प्रकल्प लगता है फिर भी भारत तथा चीन जैसे आर्थिक तौर पर उभरते देशों के लिए यह अच्छा समय है। एक ओर यह आवश्यक है कि स्वच्छ जल के समुचित उपयोग एवं बचत हेतु एक सुविचरित समाकलित योजना हो, उपलब्ध आधुनिक खारे पानी से स्वच्छ जल तैयार करने की प्रौद्योगिकी को अपनाने में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक सहयोग हेतु निर्णय लिया जाय वहीं दूसरी ओर विज्ञान संचार हेतु कार्यरत वैज्ञानिक एवं शिक्षित वर्ग पानी की महत्ता को जन साधारण तक पहुँचाएं। जब तक बचत एवं सदुपयोग की संस्कृति का विकास जन साधारण में नहीं होगा, सभी कथित प्रयास निरर्थक हो जाएँगे। पानी की महत्ता को समझाने के लिए पानी की कीमत बढ़ाना एक विकल्प हो सकता है परंतु ऐसे समाज में जहाँ कम शिक्षित एवं गलत तरीके अपना कर अधिक धन उपार्जन करने वालों की कमी न हो, यह विकल्प अधिक लाभ नहीं देगा। आवश्यक यह है कि ऐसी मानसिकता पैदा की जाय जिसमें जब कभी भी हम पानी का नल खोलें, तो हमारी आंतरिक चेतना हमें सचेत करे कि यह अमूल्य वस्तु है न कि तथाकथित पानी की तरह बहाने वाली वस्तु।

प्रस्तुत है ''वैज्ञानिक'' का अप्रैल-अक्तूबर 2009 अंक (प्रतियोगिता विशेषांक), जिसमें वर्ष 2008 की डॉ. होमी भाभा विज्ञान प्रतियोगिता के पुरस्कृत लेखों के अतिरिक्त टिप्पणियां, विज्ञान कविता तथा विज्ञान समाचार दिये गये हैं। परिषद ने लेखों के मानदेय को बढ़ाने का निर्णय लिया है। ''वैज्ञानिक'' के प्रकाशन में चल रहे विलंब के लिए खेद है परंतु आशा करते हैं कि आपका सहयोग सदैव की भांति बना रहेगा।

- डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2008) में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त

जीवन विस्तार के उत्तरापेक्षी वंशाणु तथा जरावस्थारोधी औषधियों की खोज

रामप्रताप तिवारा
वैज्ञानिक अधिकारी (से. नि.), ग्राम, पोस्ट - पलिया (हरपालपुर), जनपद - हरदोई - 241 402, उत्तर प्रदेश

''जीवेम् शरदः शतम्'' – मनुष्य अनादि काल से चिरंजीवी होने की कामना करता रहा है। मुट्ठी भर वंशाणु जो शरीर की प्रतिरक्षा के नियंत्रक होते हैं, वे ही वास्तव में जीवनावधि के विस्तार और स्वास्थ्य के अनुरक्षण हेतु उत्तरदायी होते हैं। अनेक प्राणियों में इनकी भूमिका का अध्ययन किया जा चुका है। अद्यतन, संपन्न शोधकार्यों से यह संकेत प्राप्त हो चुका है कि जीवन विस्तार तथा जरावस्था प्रवेश में विलम्ब संभव है। प्रस्तुत लेख में इस विषय के अन्यान्य पहलुओं पर संपन्न अधुनातन शोध-परिणामों की जानकारी दी गई है जो निश्चय ही विस्मयकारी है।

आयुवर्धन तथा जैविक अपघटन :

आयुवृद्धिकारी वंशाणुओं की अप्रत्यक्ष भूमिका मानव जीवन विस्तार में सक्षम है। इनका योगदान आयुगत अपघटित ऊर्जा, शक्ति एवं अंगवृद्धि के पुनर्स्थापन में भी सिद्ध हो चुका है। इस संदर्भ में संपन्न प्रयोगों और क्रियात्मक संज्ञान के द्वारा कष्टदायी जरावस्था-दिक्पात के बजाय व्यक्ति की वास्तविक आयु 70, 90 या 100 से भी अधिक होते हुये भी, वह 50 वर्षीय व्यक्ति के समतुल्य ऊर्जा एवं युवावस्था का अनुभव कर सकेगा। इस संदर्भ में कभी आपने एक अत्यधिक दूरी तय की हुई मोटरकार के क्रय-विक्रय के बारे में सोचा है - इतने समय तक प्रयुक्त कार का मूल्यांकन साधारणतया इसके द्वारा तय की गई कुल दूरी तथा इसके मॉडल (निर्माण वर्ष) पर ही किया जाता है। कार में हुई यांत्रिक क्षति तथा अनुरक्षणात्मक त्रुटियों पर भी ध्यान देना आवश्यक समझा जाता है। ठीक इसी प्रकार मानव शरीर पर भी आयु प्रभाव (अपघटनीय प्रभाव) होता है। केवल अंतर कार की यांत्रिकीय संरचना और शरीर की जैविकतंत्रीय संरचना का ही है। यद्यपि जैविकतंत्र आवश्यकतानुसार क्षमता, शक्ति के अनुरूप अपना प्रतिरक्षण और अनुरक्षण स्वयं ही करते रहते हैं, तथापि इनका अपघटन एक नैसर्गिक प्रक्रिया होती है।

जरावस्था के सृजन की पृष्ठभूमि में मात्र जैविक अपघटन ही नहीं होता है, अपितु प्राणी विशेष के वंशाणुक्रम (जीनोम) पर आधारित समग्र विकास भी होता है। पूर्ण परिपक्वता प्राप्त कर लेने के तत्काल पश्चात् आयुवर्द्धन के लिए उत्तरदायी वंशाणु पर्यावरण, ऊर्जा, उपापचीय क्षय तथा कालानुसार इसकी दिशा को कब्र की ओर मोड़ना प्रारंभ करने लग जाते हैं। संप्रति वैज्ञानिकों ने उद्विकास के प्राकृतिक चयन आधारित इस तथ्य को अधिक मान्यता देने का विचार व्यक्त किया है कि प्रजननशील आयु प्राप्त कर लेने के पश्चात् प्राणी अपघटन क्रियाशीलता प्राप्त करने लगता है। अद्यतन शोधकर्ताओं ने वंशाणुओं के एक ऐसे वर्ग का संज्ञान किया है जो प्राणी की प्रतिकूल वातावरण के प्रति सहनशीलता और क्षमता के हेतु उत्तरदायी होता है। अत्यधिक उच्च तापमान अथवा भोजन की अनुपलब्धता की स्थिति में नैसर्गिक प्रतिरक्षा और अनुरक्षण संबंधी कार्यों की गति वर्धित करने की प्रेरणा भी इन वंशाणुओं द्वारा उत्पन्न होती है। ये वंशाणु सतत रूप से सभी जैविक क्रियाओं को सुचारु रूप से क्रियाशील बनाये रखते हैं तथा आसन्न विपत्तियों से रक्षा करते हुए आयुवृद्धि में योगदान करते रहते हैं। कभी-कभी अतिशय क्रियाशील हो जाने पर ये वंशाणु प्राणी के स्वास्थ्य तथा जीवनावधि में वृद्धि भी कर सकते हैं। वस्तुतः ये वंशाणु आयुवर्धी वंशाणुओं के विलोम होते हैं। वैज्ञानिकों का लक्ष्य इन वंशाणुओं का सम्यक् संज्ञान तथा प्राणी की जीवनावधि के नियंत्रण एवं नियमन में इनकी भूमिका का अध्ययन करना ही है।

इस वर्ग के प्रमुख संज्ञात वंशाणुओं के कूट नाम DAF 2, PIT 1, MP 1, CLV 1 तथा P66 तथा SHC हैं। कई प्राणियों पर संपन्न प्रयोगों के माध्यम से इनकी तनावरोधी तथा आयुवृद्धिकारी क्षमता का पता लगाया जा चुका है। इन परिणामों से आयुगत विघटनों तथा तनावों से प्रतिरक्षण हेतु मौलिक कार्यप्रणाली का भी संज्ञान हो चुका है। (तालिका - 1 देखें) एक अन्य वंशाणु (मूक सूचना नियामक) SIR.2 (Silent Information Regulator) और उसके अन्य प्रतिरूपों का विशेष रूप से अध्ययन किया गया है क्योंकि यह वंशाणु यीस्ट से लेकर मानव तक प्रायः सभी प्राणियों में उपस्थित रहता है। इसके कतिपय अतिरिक्त प्रारूप ही इन जीवों में आयुवर्धन की प्रेरणा प्रदान करते हैं। वर्तुल कृमि (Round worm), यीस्ट तथा फल मक्षिकाओं पर संपन्न प्रयोगात्मक अध्ययनों के अतिरिक्त संप्रति बड़े प्राणियों, यथा मूषकों आदि

तालिका 1 - आयुवर्धनकारी वंशाणु परिपथ

वंशाणु/परिपथ	प्राणी/आयुवृद्धि %	गुणवर्ती मात्रा	प्रभावित होने वाली प्रणालियां	प्रबंधन से संभावित उप परिणाम
SIR 2 (SIRT 1)	यीस्य, कृमि, मक्षिकाएं 30%	अधिक	उपापचय था दाबीय प्रत्युत्तर, कोशिकीय उत्तरजीविता	अज्ञात
TOR	यथोपरि 30 से 250 %	न्यून	कोशिका वृद्धि तथा पोषक संवेदन	वर्धित संक्रमण / कैंसर
Daf / Fox O प्रोटीनें (IGF-1 इंसुलिन)	कृमि, मक्षिकाएं, मूषक 100%	न्यून	वृद्धि तथा शर्करा उपापचय	वन्ध्यापन, ऊतक अपघटन, नाटापन तथा मननशीलताक्षय
घटीय वंशाणु (C_0O)	कृमि / 30%	न्यून	सहप्रकिण्वक '0' का संश्लेषण	अज्ञात
Amp-1 (AMPK)	कृमि / 30%	न्यून	उपापचय तथा दबावी प्रत्युत्तर	अज्ञात
वृद्धि हारमोन	मूषक / 7 से 150%	न्यून	शरीर का सपूर्ण नियमन	नाटापन
P66 Shc	मूषक / 27%	न्यून	स्वतंत्र मूलकों का सृजन	अज्ञात
कैटालेज़ (CAT)	मूषक 15%	अधिक	हाइड्रोजन परॉक्साइड का निर्विषीकरण	अज्ञात
Prop 1, Pit 1 (PoulF1)	मूषक / 42%	न्यून	पिट्यूटरी क्रियाशीलता	नाटापन, वंध्यापन तथा हाइपर थायरायड प्रभाव
Klotho	मूषक 18–30%	अधिक	विटामिन D, इंसुलिन तथा IGFI का नियमन	इंसुलिन प्रतिरोध
Methuselah (CD 97)	मक्षिकाएं / 35%	न्यून	दबावी प्रतिरोध, कोशिकीय संवेदी संचार	अज्ञात

पर इसकी भूमिका का विशद् अध्ययन प्रगति पर है। वस्तुतः इस वंशाणु की कार्यप्रणाली आनुवंशिकीय रूप से नियंत्रित होने वाले आयु विस्तार तथा स्वास्थ्य-सुधार के प्रमुख नियामक घटक के रूप में सिद्ध हुई है।

S I R 2 प्रमुख आयुवर्धी वंशाणु :

प्रारंभिक प्रयोगों में सरलतम जीव-यीस्ट (Bakers' yeast) पर कोशिका की वृद्धि के हेतु उत्तरदायी और इसके नियमन के पीछे उस वंशाणु (S I R 2) की भूमिका का संज्ञान किया गया क्योंकि संभवतः यीस्ट के जीवनवृत्त-विस्तार संबंधी अध्ययनों से मानव जीवन विस्तार हेतु इसकी भूमिका के संज्ञान का मार्ग भी प्रशस्त हो सके। यीस्ट की आयुवृद्धि की गणना मातृकोशिका के विखण्डन के आधार पर की जाती है अर्थात् मूल कोशिका का कितने बार विखण्डन संपूर्ण जीवन में संतति कोशिकाओं के उत्पादन हेतु होता है। एक प्रारूपिक यीस्ट कोशिका लगभग 20 बार विखण्डन प्राप्त कर सकती है। यीस्ट कोशीय अनेक संवर्गों के ऊपर असाधारण जीवनावधि विस्तार वाली कोशिका चयन हेतु सूक्ष्म प्रयोग आयु-विस्तार के उत्तरदायी वंशाणुओं के संज्ञान के उद्देश्य से किये गये हैं। इसके परिणामस्वरूप S I R 4 नामक वंशाणु के एकमात्र उत्परिवर्तन का संज्ञान हुआ है। इसके द्वारा एक जटिल प्रोटीन संवर्ग का प्रकूटन (Encoding) किया जाता है जिसमें S I R 2 प्रकिण्वक (Enzyne) भी उपस्थित होता है। S I R 4 के उत्परिवर्तन से S I R 2 प्रोटीन यीस्ट के वंशाणुक्रम के उच्चतम प्रविभाजी क्षेत्र पर एकत्रित हो गई। इस पट्टिका में कोशिका की प्रोटीन उत्पादी इकाइयों का प्रकूटन होता रहता है जिसे r D N A (Ribosomal DNA) कहते हैं। एक औसत यीस्ट कोशिका के वंशाणुक्रम में 100 से भी अधिक इसी प्रकार के rDNA घटक विद्यमान होते हैं। स्थायी रूप में इनका रह पाना कष्टसाध्य होता है।

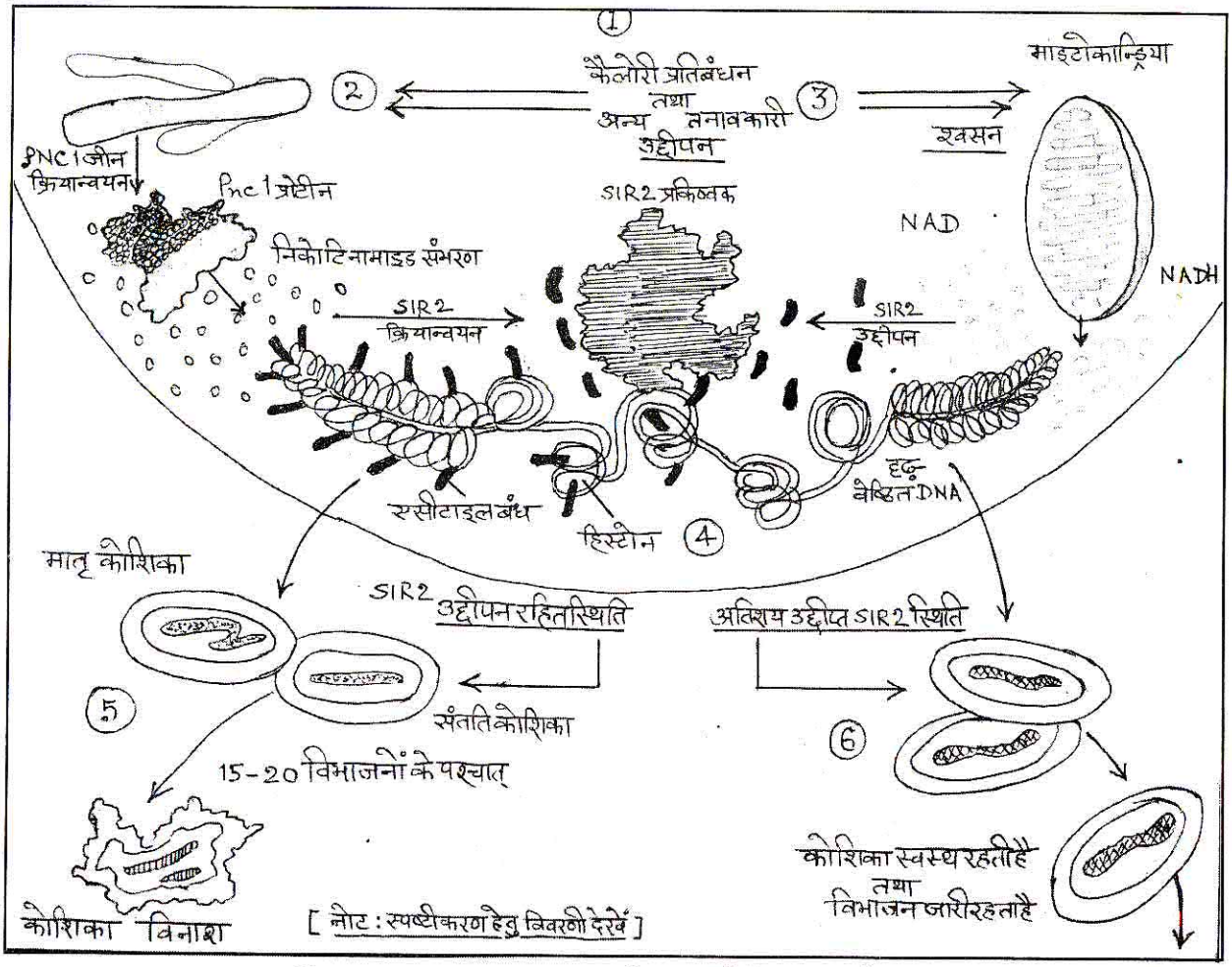

चित्र 1 - SIR2 तथा यीस्ट कोशिका उद्वेलन

rDNA घटकों के आधिक्य के कारण ये परस्पर पुनर्संयोजन करने लग जाते हैं। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप मानव शरीर में कई व्याधियां यथा - हंटिंगटन व्याधि, कर्कव्याधि (Cancer) उत्पन्न हो सकती हैं। यीस्ट कोशिकाओं पर संपन्न हुये प्रयोगों के परिणामों से यह स्पष्ट संकेत मिले हैं कि मातृ कोशिकाओं की जरावस्था के आसंजन का प्रमुख कारण rDNA का किसी प्रतिरूप में अनस्थायित्त्व ही होता है (तालिका भी देखें)। SIR2 प्रोटीनें इसमें कमी उत्पन्न करती रहती हैं। वस्तुतः rDNA के आश्चर्यजनक अनस्थायित्त्व का भी संज्ञान किया गया है - बारंबार विभाजन के उपरांत मातृ-कोष rDNA की अतिरिक्त प्रतिलिपियों को चक्रीय रूप में विमोचित करने लगती हैं और ये वंशाणुक्रम से पृथक हो जाती हैं। इन गुणसूत्रेतर rDNA की वर्तुल प्रतिलिपियां (ERC) यद्यपि कोशिका विभाजन के पूर्व ही मातृकोशिका के गुणसूत्रों के प्रतिलिपीकरण के साथ साथ तैयार होने लग जाती हैं परन्तु बाद में मातृकोशिका के केंद्रक में ही स्थित रहती हैं। इस प्रकार मातृकोशिका में इनके सतत एकत्रीकरण से शनैः शनैः अपघटन का प्रादुर्भाव होने लगता है। संभवतः ERC के प्रतिलिपिकरण में अनेक संघटकों का उपयोग हो जाने से मातृकोशिका अपने वंषाणुक्रम के पुनर्प्रतिलिपिकरण करने में सक्षम होने लगती है।

SIR2 जीन की एक अतिरिक्त प्रतिलिपि कोशिका में प्रविष्ट कर देने पर r DNA के वर्तुलों का उत्पादन कम होने लगता है और कोशिका की जीवनावधि में वृद्धि हो जाती है। यह वृद्धि 30% हो सकती है। इस महत्त्वपूर्ण संज्ञान से यीस्ट कोशिका की उत्तरजीविता की पृष्ठभूमि में SIR2 वंशाणु के प्रभाव का स्पष्ट संकेत प्राप्त हुआ है। इस जीन के अन्य प्रतिरूपों के द्वारा वर्तुलकृमियों में 50% तक जीवनावधि विस्तारण संभव है। यद्यपि यीस्ट कोशिकाओं तथा वर्तुल कृमियों में उद्विकास की दृष्टि से अत्यधिक अंतर है तथापि SIR2 जीन के प्रभाव की समानता एक विस्मयकारी उपलब्धि सिद्ध हुई है। वर्तुल कृमियों का शरीर वस्तुतः वयस्करूप में मात्र अविभाज्य कोशिकाओं युक्त ही होता है अतएव यीस्ट कोशिकाओं की जीन प्रतिलिपीकरण प्रक्रिया समान रूप से इन जीवों में नहीं होती है।

चित्र - 1 की क्रियात्मक (स्पष्टीकृत) विवरणी

(1)

SIR 2 प्रकिण्वक की क्रियाशीलता में वृद्धि उत्पन्न करके साधारण तनाव भी यीस्ट कोशिका की आयु में 30% तक की वृद्धि कर सकता है। तनाव उत्पत्ति के कारण SIR 2 की क्रियाशीलता में दो भिन्न परिपथों के द्वारा उत्कर्ष होने लगता है। अति उद्दीप्त SIR 2 वंशाणुक्रम के अस्थायित्त्व का शमन करता है जो अन्यथा सामान्य रूप से प्रायः 20 विभाजनों के उपरान्त कोशिका मृत्यु को प्रेरित करता है।

(2)

तनावसर्जक कारक, यथा-खाद्याभाव, अल्प नाइट्रोजन मात्रा, लवणाधिक्य, उच्च तापक्रम - यीस्ट कोशिका के PNC-1 वंशाणु को उद्दीप्त कर देते हैं। इसके द्वारा प्रकूटित प्रोटीन कोशिका से निकोटिनामाइड को मुक्त करने लगती हैं जो वास्तव में Sir 2 का निषेधकर्ता अवयव है।

(3)

कैलोरी नियंत्रण कोशिकीय माइटोकॉन्ड्रिया की प्रकिण्वीकरण क्रिया को ऊर्जा उत्पादक श्वसन क्रिया में बदल देता है, अतएव NADH परिवर्तित होकर NAD की उत्पत्ति करने लगता है जो Sir 2 का दमनकर्ता है जबकि NADH प्रकिण्वक प्रभावों की वृद्धि करता है।

(4)

SIR 2, DNA पैकेजकर्ता प्रोटीनों (हिस्टोन्स) से एसीटाइल बंधों को पृथक कर देता है। परिणामस्वरूप DNA अतिशय कसावयुक्त होकर कुण्डलित होने लगता है। जब कोशिका विभाजन के पूर्व अपने वंशाणुक्रम का प्रतिलिपीकरण करने लगती है तो प्रकिण्वक एक DNA क्षेत्र को विशेष रूप से एसीटाइल विहीन करने लग जाता है जो मुद्रिकाकार आनुवांशिक द्रव्य के अंश चक्रीयविधि से मुक्त करने में सक्रिय हो जाता है।

(5)

SIR 2 के क्रियान्वयन में अभाव के कारण यीस्ट कोशिकाएं मातृ तथा संतति कोशिकाओं में विभाजित होकर प्रजनन करने लगती हैं। अनेक विभाजनों के उपरान्त मातृ कोशिका सामान्य रूप से अतिरिक्त DNA मुद्रिकाओं का संग्रहण करने लगती है। 20 विभाजनों के पश्चात् यह नष्ट हो जाती है।

(6)

अति उद्दीप्त SIR 2 की उपस्थिति में वंशानुक्रम का आघात संवेदी क्षेत्र अधिक कसाव से कुण्डलित होने के लिए प्रेरित होने लगता है जो यीस्ट कोशिका को अतिरिक्त DNA मुद्रिकाएं उत्पादन के प्रति सुरक्षा प्रदान करता है। परिणामस्वरूप कोशिकाएं दीर्घजीवी, स्वस्थ और ऊर्जा से परिपूर्ण रहती हैं।

मूक सूचना नियामक (S I R 2) जीन :

S I R 2 जीन मौलिक रूप से एक विशिष्ट एंजाइम को प्रकूटित करता है। कोशिकीय DNA-आवृत्तिकारी प्रोटीनों के एक जटिल स्वरूप के आवरण – हिस्टोन्स (Histones) से अच्छादित रहता है। इनमें कई रासायनिक बंधन (Tags), यथा-एसीटाइल संवर्ग-भी होते हैं जो DNA को आच्छादन में योगदान प्रदान करते रहते हैं। इन संवर्गों के पृथक्करण से DNA के आवरण अधिक दृढ़िकृत हो जाते हैं और एंजाइमों के रासायनिक प्रभावों से पूर्णतः सुरक्षित हो जाते हैं। इस प्रकार गुणसूत्रों से rDNA के वर्तुलों के बहिर्गमन के उत्तरदायी एंजाइमों को DNA के पास प्रभावी नहीं होने देते हैं। DNA का यह एसीटाइल हीन स्वरूप 'मूक' कहा जाता है क्योंकि इस क्षेत्र में अवस्थित वंशाणुक्रम के सभी वंशाणु क्रियाशीलता से वंचित रह जाते हैं। S I R प्रोटीनों का जीनों की मूकता आसंजन का प्रभाव पूर्वज्ञात भी है तथापि S I R 2 उन तमाम एंजाइमों में से एक का सृजन करने में सक्षम है जो हिस्टोनों में से एसीटाइल संवर्ग को पृथक कर सकता है। S I R 2 के एक विश्लेषणात्मक अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि NAD नामक अणु के सूक्ष्म रूप में विद्यमान होने पर ही यह क्रियाशील होता है। कोशिकाओं के कई उपापचयी चक्रों में NAD की उपादेयता पूर्व ज्ञात है।

NAD तथा S I R 2 का यह समुच्चय अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि शरीर के उपापचय में S I R 2 की क्रियाशीला की भूमिका अहम होती है और इसका गहन संबंध हमारे दैनिक भोजन, कैलोरी नियंत्रण तथा जरावस्था, आयुवर्धन से भी है।

कैलोरी नियंत्रण की भूमिका :

प्राणियों के जीवनवृत्त के संवर्धन हेतु उसके द्वारा अंतर्ग्रहण की जाने वाली कैलोरी का नियंत्रण एक प्रसिद्ध अवधारणा है। लगभग सात दशकों से यह तथ्य आज भी एकमात्र सिद्ध और प्रभावी है। वास्तव में दैनिक भोजन अंतर्ग्रहण में 30% से 40% तक की कमी प्राणी के सामान्य भोजन की तुलना में कर देने से जीवनवृत्त में विस्तार परिलक्षित होता है। मूषकों से लेकर कुत्तों तथा संभवतः प्राइमेट/स्तनधारियों के दीर्घजीवी होने के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं जो नियंत्रित भोजन पर रहते हैं। पुनश्च, वे अपने वर्धित आयुकाल में कहीं अधिक स्वस्थ और क्रियाशील भी रहते हैं। अधिकांश व्याधियां जिनमें कर्कव्याधि, मधुमेह यहां तक कि तंत्रिकाक्षयी व्याधियां भी हैं, ऐसे प्राणियों में प्रकट नहीं हो पाती हैं। प्राणि विशेष उत्तरजीविता के प्रति अतिशय प्रभावी ढंग से अनुकूलित हो जाता है। कतिपय जीवों में संभावित प्रजनन शक्ति का क्षय ही एकमात्र दोष होता है जो इस पद्धति का ऋणात्मक घटक है।

अनेक वर्षों से शोधकर्ताओं के लिए कैलोरी नियंत्रण की कार्यविधि तथा स्वास्थ्य पुनर्प्राप्ति हेतु औषधियों का विकास प्रधानलक्ष्य रहे हैं। अधिक समय तक 'उपापचयी क्रियाओं का मंद पड़ जाना' ही मात्र एक सरल कारक के रूप में माना जाता था। वस्तुतः इसकी पृष्ठभूमि में प्राणिकोशिका के द्वारा ईंधनरूपी अणुओं से ऊर्जा सृजन का मंदन होता है। यह प्रभावीरूप में विषैले उपोत्पादों में कभी उत्पन्नकर देता है जब प्राणी अल्पाहार ग्रहण करता है। संप्रति, यह अवधारणां सर्वमान्य नहीं प्रतीत होती है।

कैलोरी नियंत्रण वास्तव में स्तनधारियों में उपापचय क्षय में कोई योगदान नहीं करता है परन्तु यीस्ट तथा कृमियों में अवश्य प्रभावी होता है। अधिकांश वैज्ञानिकों का विचार है कि कैलोरी नियंत्रण एक जैविक क्रियाक्षयी (Stressor) कारक होता है, ठीक उसी प्रकार जैसी कि प्राकृतिक भोजन अनुलपब्धता। यही जीवों में आयुवर्द्धन तथा प्रतिरक्षात्मक प्रभाव उत्पन्न करता रहता है। स्तनधारियों में इसके प्रभावों में कोशिकीय प्रतिरक्षण, अनुरक्षण, ऊर्जा सृजन तथा नियोजित कोशिका अवसान (death) अथवा एपॉप्टोसिस (Apoptosis) की क्रियाशीलता प्रमुख होते हैं। S I R 2 की सरलतम प्राणियों में कैलोरी नियंत्रण के प्रभावों में भूमिका का प्रमुख रूप से अध्ययन किया गया है।

S I R 2 वंशाणु की भूमिका :

यीस्ट कोशिकाओं में भोजन की नियंत्रित मात्रा में उपलब्धता दो प्रमुख परिपथों को प्रभावित करती है जो S I R 2 की प्रकिण्वकारी क्रिया को वर्धित कर देते हैं। एक ओर कैलोरी नियंत्रण का प्रभाव एक वंशाणु PNC 1 पर परिलक्षित होता है जो एक प्रकिण्व का सृजन करता है और कोशिका से निकोटीनामाइड को मुक्त कर देता है। निकोटीनामाइड विटामिन B_3 से सदृश छोटा अणु है जो S I R 2 के प्रभाव को प्रतिस्थापित करने में सक्षम होता है। कतिपय अन्य प्रभावी मंदनकारकों से भी PNC 1 वंशाणु सक्रिय होने लगता है जो यीस्ट कोशिका के जीवनकाल में वृद्धि करते हैं, यथावर्धित तापमान, लवणीय आधिक्य। दूसरे परिपथीय आसंजन का प्रभाव यीस्ट के श्वसन पर परिलक्षित होता है। इस ऊर्जासृजक प्रक्रिया में NADH के स्तरों में कमी हो जाने पर NAD की उपोत्पाद रूप में उत्पत्ति होने लगती है। केवल NAD ही S I R 2 को क्रियाशील नहीं करता है, तथापि NADH प्रकिण्व सृजन का प्रतिरोधी होता है अतएव कोशिका में NAD तथा NADH का अनुपात S I R 2 की क्रियाशीलता को अत्यधिक प्रभावित करता है। जैविक क्रियाओं में इन प्रभावी कारकों की जीवनावधि-वर्धी उपोदेयता तथा S I R 2 की क्रियाशीलता में वृद्धि के प्रभाव को दृष्टिगत करते हुए

प्रश्न उठता है कि आयुवर्धन हेतु क्या SIR2 आवश्यक है? अद्यतन शोध के अनुसार यह सिद्ध हो गया है कि यह आवश्यक होता है। फल मक्षिकाओं की तरह के प्राणियों में भी जीवनावधि-विस्तार हेतु SIR2 की प्रमुख भूमिका कैलोरी नियंत्रण के अंतर्गत होती है।

वयस्क फल मक्षिका का शरीर अनेक मानव-सदृश ऊतकों से ही बना होता है अतः स्तनधारी जीवों में भी कैलोरी नियंत्रण को प्रभावी करने हेतु SIR2 परमावश्यक होने के संकेत मिल रहे हैं। तथापि मनुष्यों में कैलोरी नियंत्रण के आयु विस्तारी लाभ प्राप्त करने की दिशा में मात्र आधारभूत खाद्य मात्रा का अधिग्रहण उचित विकल्प नहीं माना जाता है। SIR2 तथा इससे संबद्ध जीनों (सामूहिक नाम - SIRTUINS) की क्रियाशीलता के नियमन हेतु औषधियों की आवश्यकता एक महत्त्वपूर्ण घटक होता है। रेसवेराट्रॉल (Resveratrol) एक प्रभावी क्रियाशील यौगिक- (Sirtuin Active Compound) विशेष रूप से लाभदायक सिद्ध हुआ है। रेसवेराट्रॉल वास्तव में एक क्षुद्र अणु होता है जो लाल मदिरा में विद्यमान होता है तथा कई विशिष्ट पादपों पर दबाव डालकर प्राप्त किया जाता है। कम से कम 18 अन्य यौगिक भी पौधों द्वारा ही विशिष्ट दबाव डालने पर सृजित किये जा चुके हैं जो SIRTUINS के प्रभावों का नियमन करने में सक्षम सिद्ध हो चुके हैं। संभवतः वनस्पतियों में भी SIR2 प्रकिण्वों के नियंत्रण हेतु इसका उपयोग किया जा सकता है।

यीस्ट, कृमियों या मक्षिकाओं को रेसवेराट्रॉल खिलाने पर अथवा कैलोरी नियंत्रित भोजन देने से उनकी आयु में लगभग 30% की वृद्धि होने के प्रमाण प्राप्त हुये हैं परन्तु केवल तब, जब SIR2 वंशाणु विद्यमान हो। पुनश्च, एक मक्षिका, जिसमें SIR2 की आधिक्य हो, स्वतः ही वर्धित आयु प्राप्त होती है, जिसे पुनः विस्तार नहीं प्रदान हो सकता है। रेसवेराट्रॉल पोषित मक्षिकाएं न केवल दीर्घजीवी होती हैं, अपितु अपघटित प्रजननशक्ति से भी ग्रस्त नहीं हो पाती हैं जो कैलोरी नियंत्रण के परिणामस्वरूप प्रायः उत्पन्न हो सकती है, चाहे वे कितना ही अधिक खाद्य ग्रहण करती हों। इस संज्ञान के आधार पर मनुष्यों की कई व्याधियों के उपचार का मार्ग प्रशस्त हुआ है। SIR2 प्रकिण्वों के प्रभावों के सर्जक रासायनिक अणुओं/औषधियों की खोज अतिमहत्त्वपूर्ण मानी जा रही है (चित्र-1 देखें)।

स्तनधारियों में SIR2 की भूमिका :

SIR2 वंशाणु स्तनधारी प्राणियों में अपने ही समतुल्य प्रारूप 'SIRT1' के रूप में होता है। इसके द्वारा SIR2 की प्रकिण्वकीय क्रियाशीलता के समान प्रभावी प्रोटीन - 'Sirt 1' को प्रकूटित करने में योगदान करता है। केंद्रक में तथा कोशिकीय द्रव्य की अनेक प्रोटीनों को भी एसीटाइल मुक्त कर देता है। SIRT1 के द्वारा परिलक्षित कई ऐसी प्रोटीनों की पहचान की जा चुकी है जो कई क्रांतिक प्रक्रियाओं का नियंत्रण करती हैं, यथा-कोशिका प्रतिरक्षण, एपोप्टोसिस, उपापचय आदि। SIR2 वंशाणु परिवार के सदस्यों की जीवनावधि वर्द्धक भूमिका स्तनधारियों में विशेष महत्त्वपूर्ण होती है। अत्यधिक जटिल तथा बड़े प्राणियों में यह भूमिका गौण होती है। इनमें उन परिपथों की जटिलता आशातीत रूप से विकसित होती है जिनके द्वारा सिरटुइनों का प्रभाव संप्रेषित हुआ करता है।

मूषकों में SIRT1 की वर्धित मात्रा संकटपूर्ण परिस्थिति में भी उनको जीवित बनाये रखती है जो अन्यथा उनको नियोजित आत्मघाती प्रेरणादायक भूमिका प्रदान कर सकती है। इसकी पृष्ठभूमि में Sirt 1 द्वारा कई अन्य महत्त्वपूर्ण प्रोटीनों की क्रियाशीलता का नियमन होता है, यथा - p53, Fox O, Ku70 आदि। इनकी भूमिका कोशिका विनाशक आधार की स्थापना अथवा अनुरक्षणीय प्रभावोत्पादक होती है। इस प्रकार Sirt 1 का प्रभाव कोशिकीय अनुरक्षण के दौरान, जरावस्था आसंजन के एक महत्त्वपूर्ण घटक कोशिका विनाश द्वारा ''कोशिका क्षय'' भी होता है, विशेष रूप से कतिपय ऐसे ऊतकों से निर्मित अंगों में, जिनका पुनर्नवीकरण असंभव होता है - यथा हृदय, मस्तिष्क। इन कोशिका क्षयी क्रियाओं का मंदन भी संभवतः Sirtuins द्वारा आयु विस्तारण तथा स्वास्थ्य अनुरक्षणकारी हो सकता है। Sirt 1 की जीवन विस्तारक क्षमता का ज्वलंत प्रमाण स्तनधारियों की कोशिकाओं के संदर्भ में मूषकों में एकल वंशाणु के दो प्रतिरूप किये गये, इस उत्परिवर्तन के फलस्वरूप तंत्रिकाणुओं में संकटाकीर्ण परिस्थितियों के प्रतिरोध हेतु अद्‌भुत क्षमता का संप्रेरण द्रष्टव्य हुआ जो तंत्रिकाक्षयी व्याधियों, रासायनिक उपचारगत विषाक्तता तथा आघातों का प्रतिरक्षक भी सिद्ध हुआ है (तालिका 2 देखें)।

वर्ष 2004 में वाशिंग्टन विश्वविद्यालय, सेन्टलुई में शोधरत वैज्ञानिकों ने मूषकों में वैलेरियन जीन उत्परिवर्तन द्वारा NDA सर्जक एक प्रकिण्वक के क्रियाशीलता-वर्धी परिणाम का संज्ञान किया है। अतिरिक्त NDA ही वस्तुतः तंत्रिकाणुओं की प्रतिरक्षा SIRT1 को उद्वेलित करके बनाये रखता है। पुनश्च, वैलेरियन उत्परिवर्तन के समान ही STACs (यथा रेसवेराट्रॉल) भी सामान्य मूषकों के तंत्रिकाणुओं की प्रतिरक्षा हेतु प्रभावी होते हैं। वर्ष 2005 में संपन्न एक अध्ययन में फ्रांस के राष्ट्रीय स्वास्थ्य तथा चिकित्सा शोध संस्थान के वैज्ञानिकों ने रेसवेराट्रॉल के अतिरिक्त एक अन्य STAC- "FISETIN" को कृमियों और मूषकों के तंत्रिका क्षय के प्रतिरोधक अवयव के रूप में ज्ञात किया है। तंत्रिकाक्षय के कारण मानव में हंटिगटन व्याधि

तालिका - 2 लाभदायक परिवर्तनों का जनक

"Sirt 1"

1) मानव सदृश प्राणियों में स्वास्थ्य परिरक्षक तथा आयुवृद्धिकारक
2) सभी स्तनधारियों में कैलोरी नियंत्रण के प्रभावों का उत्कर्षक
3) अन्य कई जैविक प्रणालियों की क्रियाओं का उत्कर्षक
4) कोशिका के आंतरिक अनुशीलन में गतिशीलता का वर्धी
5) कई मुख्य प्रोटीनों के परिमार्जन द्वारा स्वप्रभाव का वर्धी
6) कतिपय अणुओं की आकल्पन क्रिया में अभिवृद्धि द्वारा समस्त शरीर में उत्पन्न होने वाले तनाव प्रत्युत्तरों से संलप्तिता

हुआ करती है। यह STAC प्रेरित प्रतिरक्षण सभी मामलों में सिरटुइन-वंशाणु क्रियाशीलता पर निर्भर होता है। एकल कोशिकाओं में सिरटुइनों का प्रतिरक्षी प्रभाव उत्तरोत्तर स्पष्ट होता जा रहा है। तथापि, यदि ये वंशाणु कैलोरी नियंत्रण की लाभप्रदा भी क्रिया के सर्जक हैं, तो नियंत्रित भोजन किस प्रकार इनकी क्रियाशीलता का नियमन करता है? यह प्रश्न उठता है।

वर्ष 2006 में जोन्स हॉपकिंस विश्वविद्यालय के चिकित्सा विद्यालय के वैज्ञानिकों ने यह पता लगा लिया है कि उपवास की स्थिति में यकृत कोशिकाओं में NAD के स्तरों में वृद्धि हो जाती है जो SIRT1 की क्रियाशीलता में वृद्धि करते हैं। प्रोटीनों में Sirt 1, वंशाणु प्रतिलिपीकरण के अति महत्त्वपूर्ण नियामक PGC-1x पर प्रभावी सिद्ध हुई है। यह घटक कोशिका के ग्लूकोज़ उपापचय में परिवर्तन उत्पन्न कर देता है। इस प्रकार Sirt 1 पोषक तत्त्व-उपलब्धता तथा यकृत प्रतिक्रिया दोनों का नियामक सिद्ध हुआ है। कई अन्य अध्ययनों के निष्कर्ष के द्वारा Sirt 1 की एक केंद्रीय उपापचयी नियामक के रूप में यकृत, मांसपेशीय तथा वसागत कोशिकाओं में मध्यस्थ भूमिका होने के प्रमाण प्राप्त हो रहे हैं। इसके द्वारा NAD/NADH अनुपात का कोशिकाओं में संवेदन होता रहता है जो खाद्य विविधता को प्रभावित करता है। इन ऊतकों में वंशाणु प्रतिलिपीकरण पर इसका दूरगामी प्रभाव पड़ता है। तालिका-1 में यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार से Sirt 1 अनेक वंशाणुओं तथा परिपथों का एकीकरण कर सकने में सक्षम होता है जो आयुवर्द्धन प्रभाव सृजित करते हैं।

Sirt 1 की समस्त शारीरिक क्रियाओं की पृष्ठभूमि में एक से अधिक क्रियाविधियों की भूमिका होती है। एक अन्य परिकल्पना के अनुसार स्तनधारी जीव अपनी खाद्य उपलब्धता का नियमन वसा के रूप संचित ऊर्जा के आधार पर करते हैं। वसीय कोशिकाएं ऐसे हारमोन्स उत्पन्न करती हैं जो शरीर के अन्यान्य ऊतकों को संकेत ले जाते हैं परन्तु यह क्रिया संचित वसा के स्तरों पर निर्भर होती हैं। संचित वसा में कमी होने पर कैलोरी नियंत्रण हारमोनों के प्रारूपीय संकेतों का सृजन करने लगता है तो आविर्भाव करते हैं जो खाद्य न्यूनता को प्रकट करने लगते हैं और ये कोशिकीय प्रतिरक्षण का अविर्भाव करते हैं। आनुवंशिकीय अभियंत्रण से उत्पन्न मूषक कृशगात (दुबले) होने पर भी दीर्घ जीवी होते हैं, यद्यपि इनके तथा अवधारणाओं के आधार पर यह संभावना भी प्रकट की जा रही थी कि Sirt 1 खाद्य अंतर्ग्रहण के प्रत्युत्तर में वसा संचय का भी नियमन करता होगा और आश्चर्यजनक रूप से यह प्रमाणित हो गया है कि वास्तव में खाद्य परिसीमन के उपरांत वसा कोशिकाओं में Sirt 1 की क्रियाशीलता में वृद्धि हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप कोशिकाओं में संचित वसा रक्तप्रवाह के माध्यम से अन्य ऊतकों में ऊर्जा अंतरण हेतु विमोचित होने लग जाता है।

अनुमान है कि Sirt 1 खाद्य संवेदनीय होता है और वसा संचयन का नियमन भी करता है। इस प्रकार से वसा कोशिकाओं का हारमोन नियमन भी करने में सक्षम है। इसके कोशिकीय प्रभाव तथा सृजित संकेतों से जीवों को संपूर्ण शरीर की आयुवर्द्धन गति के नियमन का मार्ग प्रशस्त हो गया है। वस्तुतः Sirt 1 स्तनपायियों में कैलोरी नियंत्रण के माध्यम से उत्तरजीविता का एक प्रधान नियामक सिद्ध हुआ है। इसके द्वारा जरावस्था आसंजन और उपापचयी व्याधियों (जिनमें प्रारूप 2 का मधुमेह भी शामिल हैं, जो अत्यधिक वसा एकत्र होने से संबन्ध होता है) का घनिष्ठ संबंध भी ज्ञात हो चुका है। अतः Sirt 1 परिपथ को भेषजीय रूप से अंतरित कर वसा कोशिकाएं न केवल आयुवर्धन को अपितु व्याधियों को भी देर से प्रभावी होने की प्रेरणा देती रहती हैं। वस्तुतः Sirt 1 सर्वोत्कृष्ट प्रकिण्वक माना जाता है तथापि स्तनधारियों में मात्र यही प्रकिण्व नहीं विद्यमान होता है। वंशाणु जो SIRT 1 से

तालिका - 3 उपरिदृश्य – जीवनावधि सीमा का अतिक्रमण

1) संकटाकीर्ण परिस्थितियों में प्राणी की सक्षमता अप्रभावित बनाये रखने वाले जीन ही शरीर को अस्थायी रूप से उत्तरजीविता हेतु भी अत्यावेशिथ करते रहते हैं।

2) अधिकांश जीवों में दीर्घकालिक उद्दीपन होने पर तनाव प्रत्युत्तर ही व्याधिमुक्त जीवन विस्तार के प्रमुख कारक होते हैं।

3) ''सिरटुइन'' परिवार के सदस्य वंशाणु जीवन विस्तार प्रभाव के आधारभूत नियामक होते हैं।

4) वंशाणुओं के उद्दीपन तथा प्रभावी कारकों की उत्पत्ति की प्रक्रिया के सम्यक् संज्ञान के माध्यम से मानवीय, जरावस्था विषयक व्याधियों के निवारण हेतु औषधि निर्माण ही नहीं अपितु जीवन विस्तार तथा ओजपूर्ण, स्वस्थ जीवन की प्राप्ति का मार्ग भी प्रशस्त हुआ है।

5) कैलोरी नियंत्रित खाद्य-अंतर्ग्रहण द्वारा मात्र दीर्घायु ही नहीं, अपितु कहीं अधिक स्वस्थ और व्याधिरहित उत्तरजीविता भी प्राप्त होती है।

6) संप्रति, जरावस्था प्रवेश के कारकों तथा प्रक्रिया का पूर्ण संज्ञान उपलब्ध न होते हुये भी इसे विलम्बित किया जाना संभव है।

7) आइये, अंततः हम उस जीवन की कल्पना करें जब मानव 90 के दशक वाले आयुवर्ग में भी युवातुल्य ओज से परिपूर्ण आधुनिक व्याधियों से मुक्त जीवन जी रहा होगा।

संबंधित होते हैं, कई समतुल्य क्रिया वाले प्रकिण्वकों को उत्पन्न करते हैं जो कोशिकाओं में विभिन्न स्थलों पर क्रियाशीलता उत्पादक प्रभाव डालने में सक्षम होते हैं। Sirt 1 कोशिका केंद्र तथा कोशिकाद्रव्य दोनों में अन्य प्रोटीनों को एसीटाइल विहीन बनाकर उनके प्रभावों को अंतरित करता रहता है। प्रतिलिपीकरण के संघटक इसके प्रमुख लक्ष्य होते हैं जो सीधे वंशाणुओं को उद्वेलित करने में सक्षम होते हैं अथवा इनके नियामक होते हैं। वास्तव में ये Sirt 1 को कई क्रांतिक कोशिकीय कार्यों के प्रतिपादनार्थ नियमन तथा नियंत्रण हेतु सक्षम बनाते रहते हैं।

संप्रति, वैज्ञानिक अन्य सिरटुइंस की भूमिकाओं का भी अध्ययन कर रहे हैं तथा उनके द्वारा आयुवर्द्धन प्रभाव-सृजन की संभावनाओं का संज्ञान भी किया जा रहा है। उदाहरणार्थ - SIRT 2 द्वारा कोशिका के आंतरिक विनाशी घटक - TUBULIN को परिमार्जित कर दिया जाता है जो कोशिका विभाजन को संभवतः प्रभावित करता है। SIRT 3 कोशिका की ऊर्जा सर्जक क्रियात्मता में वृद्धि करता है अर्थात माइटोकोंड्रिया को उद्वेलित करता रहता है तथा तापमान नियंत्रण में भी इसकी भूमिका प्रतीत होती है। SIRT 4 तथा SIRT 5 की भूमिकाएं अभी तक ज्ञात नहीं की जा सकी हैं। SIRT 6 को प्रकूटित करने वाले वंशाणु में होने वाले उत्परिवर्तनों की संबद्धता समयपूर्व जरावस्था के आविर्भाव से होती है। SIRT 2 तथा इसके अन्य वंशाणु संबंधियों (SIRTUINS) में से कतिपय दीर्घजीवन की प्रगति में योगदान करते हैं (जब इनकी अधिक मात्रा में प्रतिलिपियां विद्यमान होती हैं) या फिर इनके द्वारा प्रोटीनों के प्रकूटन की प्रक्रिया में वृद्धि की जाने लगती है। अनेक वंशाणुओं तथा उनकी प्रोटीनों का आयुरेखा पर नकारात्मक प्रभाव भी पड़ता है अतएव इनकी क्रियाशीला के अपघटन द्वारा आयु विस्तारण संभव है।

कृमियों में इंसुलिन तथा इंसुलिन सदृश वर्धी घटक (IGF-1 के कोशिकीय संग्राहकों को प्रकूटित करने वाला वंशाणु daf-2 होता है। वयस्क कृमियों में इस वंशाणु की क्रियात्मकता के अपघटन से संकेत प्रसार (जो इंसुलिन और IGF-1 के माध्यम से होता है) बाधित होने लगता है, इस के फलस्वरूप जीवनावधि में 100% तक की वृद्धि हो सकती है। अनेक अन्य वृद्धि से सम्बद्ध वंशाणुओं की आणविक क्रियाशीलता के परिपथों के अंतरण या व्यतिक्रमण के द्वारा भी जीवनावधि का प्रोन्नयन संभव है। वैज्ञानिकों की धारणा है कि SIRT 2 तथा इसके संबंधी निश्चितरूप से एक महत्त्वपूर्ण नियामकतंत्र का अंग होते हैं जो या तो कैलोरी नियंत्रण के दौरान SIRTUINS का नियमन स्वतः करते हैं या फिर इनके द्वारा ही प्रोटीनों का नियमन होता रहता है (तालिका-1 देखें)।

शारीरिक प्रवाह एक अन्य क्रांतिक स्थिति है जो Sirt1 से प्रभावित होती है और कई व्याधियों या व्यतिक्रमों के परिणाम से उत्पन्न होती है, तथा - कैंसर, गठिया (संधिवात), दमा, हृदयरोग और तंत्रीय अपघटन

(Neurodegeneration) आदि। वर्जीनिया विश्वविद्यालय के कुछ शोधकर्ताओं ने ज्ञात किया है कि Sirt 1 एक ऐसे प्रोटीन गुच्छ की क्रियाओं को बाधित करने में सक्षम होती है, जो प्रदाही प्रत्युत्तरों के सृजन को प्रोन्नति प्रदान करती है। इसे NF - KB नाम से संज्ञान किया गया है। Sirt 1 को क्रियाशील करने वाला यौगिक - रेसवेराट्रॉल भी समतुल्य प्रभावी सिद्ध हुआ है। इस संज्ञान की उपादेयता अतिमहत्त्वपूर्ण है क्योंकि औषधि अनुसंधान तथा विकास के क्षेत्र में NF - KB रोधी अणुओं की खोज का मार्ग प्रशस्त हो गया है। पुनश्च, कैलोरी नियंत्रण के एक अन्य लोकप्रिय प्रभाव - उत्तरवर्धी शारीरिक प्रदाहशमन की भी पुष्टि हो चुकी है। इस प्रकार संज्ञात तथ्यों के आधार पर SIR 2 जरावस्था आसंजन के नियामक तंत्र का प्रधान नियंत्रक होते हुए कई अन्य नियामकों के समूह का भी परिचालक सिद्ध हो रहा है, यथा - अंतर्कोशिकीय नियामक प्रोटीनें, दीर्घजीवीता के लिए अन्य प्रभावी जीन, हारमोन नेटवर्क आदि।

अधुनातन शोधपरिणामों में से एक सर्वाधिक उल्लेखनीय तथ्य Sirt 1 के द्वारा इंसुलिन तथा इंसुलिन-सदृशवर्धी घटक (IGF-1) का सृजन है क्योंकि इन दोनों शक्तिशाली संकेतक अणुओं द्वारा Sirt 1 के उत्पादन का नियमन किया जाता है जो एक जटिलतम पश्चप्रभावी चक्र का अंश होता है। Sirt 1, IGF-1 तथा इंसुलिन के मध्य नियोजित संबंध होते हैं, इनके योगदान से ही एक ऊतक की संक्रियात्मकता शरीर के अन्य ऊतकों की कोशिकाओं में संचारित की जाती है। पुनश्च, इंसुलिन और IGF-1 के प्रसारित स्तरों की उपोदयता विभिन्न जीवों, यथा-कृमि, मक्षिका मूषकों और संभवतः हमारे स्वयं, में जीवनावधि निर्देशन की दिशा में भी होती है (तालिका-2 भी देखें)।

आयुवर्धन की गति का मंदन तथा नियमन :

यद्यपि सहस्त्रों साल से मनुष्य आयुवृद्धि के मंदन के विषय में परिकल्पनाएं करता रहा है और असफलता ही हाथ लगी। अतः एक मुट्ठीभर वंशाणु वर्ग को अंतर्प्रेरित कर देने से आयुवर्द्धन नियंत्रित किया जाना सहज रूप से विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता था, तथापि आयुवर्धन के सटीक कारणों के वास्तविक संज्ञान का अभाव होते हुए भी संप्रति, यह संभव हो गया है तथा प्रदर्शित भी हो चुका है। स्तनधारी प्राणियों में साधारण भोजन-अंतर्ग्रहणीय परिवर्तन - कैलोरी नियंत्रण द्वारा आयुवृद्धि में मंदन क्रिया उत्पन्न होती है। आयुवृद्धि मंदकों के अनेक घटकों में से कतिपय घटकों के उचित नियमन द्वारा प्राणी के स्वास्थ्य तथा ऊर्जा को भी संरक्षित करना संभव हो गया है। स्तनधारियों पर इस दिशा में शोध जारी है।

अद्यतन, SIR 2 परिवार के वंशाणुओं के पूर्व उद्विकास के विषय में संज्ञान प्राप्त किया जा चुका है क्योंकि आज बेकर्स यीस्ट, लेशमानिया परजीवी तथा कृमियों से लेकर मक्षिकाओं और मनुष्यों तक में इनकी उपस्थिति ज्ञात हो चुकी है। इन सभी प्राणियों (मनुष्य के अतिरिक्त) में (परीक्षण अभी संपन्न नहीं हुये हैं) SIRTUINS ही आयुवर्धन के नियामक सिद्ध हुये हैं। इस निष्कर्ष से यह विश्वास हो गया है कि मानव सिरटुइन वंशाणु हमारे उत्तरवर्ती स्वास्थ्य और आयुवर्धन की कुंजिका होते हैं। वस्तुतः इनकी क्रियाशीलता के बारे में पूर्ण संज्ञान कष्टसाध्य प्रतीत होता है अतएव वह समय तो अभी बहुत दूर दिखाई देता है जब एक गोली औषधि लेकर मनुष्य 130 वर्ष तक स्वस्थ जीवन जी सकेगा। तथापि, सिरटुइनों के प्रकिण्वकों के नियंत्रण द्वारा कुछ विशिष्ट स्थितियों में (यथा-एल्ज़हीमर व्याधि, कर्कव्याधि, मधुमेह तथा हृदय सम्बंधी व्याधियां) उपचार और शमन हेतु औषधियों की उपलब्धता आने वाले कुछ वर्षों में संभव होगी क्योंकि मधुमेह तथा तंत्रिकाक्षयी व्याधियों के उपचार हेतु कई औषधियों के परीक्षण प्रगति पर हैं। आने वाले समय में आशा है कि न केवल इन आयुवर्धन आधारित व्याधियों का सफल उपचार ही संभव हो सकेगा, वरन् इनके आविर्भाव को भी नियंत्रित किया जा सकेगा।

आज यह अनुमान लगाना यद्यपि कठिन प्रतीत होता है कि तब मानव जीवन कैसा होगा? जब लोग युवा ऊर्जा से सपूरित तथा अपेक्षाकृत आज कल की व्याप्त व्याधियों से मुक्त होंगे और वह 90 से अधिक आयु वर्ग में भी! कुछ लोगों को आश्चर्य भी होगा कि मानव जीवन विस्तार की कल्पना एक महत्त्वाकांक्षी विचार है। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में जीवन की आशा लगभग 45 वर्ष हुआ करती थी जो आज बढ़ कर लगभग 75 हो चुकी है, इसका श्रेय प्रमुख रूप से प्रतिजीवी औषधियों तथा जनस्वास्थ्य अनुरक्षण को जाता है जिनके कारण संक्रामक व्याधियों के उपचार और नियंत्रण द्वारा मानवजीवन को प्रतिरक्षा प्राप्त होती रही है। तथापि अंततः यह मानना ही होगा कि हमारी भावी संततियां, अवश्य ही, शताधिक आयु प्राप्त होने पर भी स्वस्थ और युवा सदृश ऊर्जायुक्त तथा व्याधिमुक्त जीवन जीने के लिए वंशाणुओं की भूमिका के संज्ञान की आभारी रहेंगी।

डॉ होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2008) में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त

गंजेपन की समस्या - कारण एवं उपाय

सलमान हसन

छात्र, आई.आई.एस.ई.आर. कोलकाता, पोस्ट ऑफिस-बी.सी.के.वी.वी., मोहनपुर, नदीया, (प.बं.)

गंजापन अर्थात केश गिरने की समस्या विश्वव्यापी है। सिर के ऊपर जिन स्थानों पर बाल होने चाहिए अर्थात सिर के ऊपर, सामने, सिर के दोनों ओर तथा पीछे से केशों का निरंतर झड़ना, कम होते जाना या सिर से केशों के गिरने पर त्वचा दिखायी देना आदि गंजेपन के अंतर्गत आता है। इस विषय के विभिन्न पहलू यथा केश के प्रकार, उनका जीवनक्रम, गिरने के कारण तथा उपचार पर प्रकाश डाला गया है।

यद्यपि केश गिरने की समस्या आधुनिक मानी जाती है परन्तु इससे संबंधित उद्धरण इतिहास में भी मिलते हैं। ग्रीक, रोमवासी तथा मिस्रवासियों द्वारा गंजेपन के उपचार पर अपार धन संपदा खर्च करने के प्रमाण मिलते हैं। प्राचीन मिस्रवासियों द्वारा सर्वप्रथम इसका उपचार खोजने के आलेख मिलते हैं। उन्होंने सांप, मगरमच्छ, गीस, दरियाई घोड़ा, शेर एवं आईबेक्सस से रेमसिड वसा निकालकर प्रयोग किया। बाइबिल में भी केश झड़ने से संबंधित उद्धरण मिलते हैं।

प्राचीन काल से आधुनिक युग तक सबसे अधिक सांप के तेल का प्रयोग करने की जानकारी मिलती है। अमरीका में लगभग 350 लाख लोग 150 करोड़ डॉलर प्रतिवर्ष केश रक्षा के रसायनों, औषधियों तथा केश प्रत्यारोपण सर्जरी पर खर्च करते हैं।

आयुर्वेद में भी केश गिरने की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन मिलता है। आयुर्वेद में पूर्ण गंजेपन को **खालित्या** कहते हैं। सिर पर केश गिरने से बने चकत्ते को **इन्द्रलुप्त** कहा जाता है। आयुर्वेदिक उपचार केश गिरने की प्रारंभिक अवस्थाओं के निदान में सक्षम पाया गया है। सिर पर **जोंक (लीच) थैरेपी** देने का भी प्रावधान है।

केश की संरचना :

केश किरेटीन नामक प्रोटीन के बने होते हैं, जो उसकी संरचना को नष्ट होने से बचाते हैं। यह प्रोटीन नाखून में भी पाई जाती है। किरेटीन प्रोटीन का एक बड़ा कण है जो कि अमीनो एसिड के छोटे-छोटे कड़ों से मिलकर बना होता है। अमीनो अम्ल एक दूसरे से कड़ियों में जुड़े रहते हैं। एक केश का व्यास अधिकांश 0.05–0.09 मिमी. होता है और यह प्रत्येक मनुष्य में अलग–अलग होता है। त्वचा की ऊपरी सतह एपीडर्मिस होती है। प्रत्येक केश इससे बाहर निकलता है। बाल के दो भाग होते हैं; हेयर फॉलिकल तथा हेयर शेफ्ट।

हेयर फॉलिकल – यह एक छोटे से कप के आकार का गड्ढ़ा होता है जो सिर की त्वचा (स्केल्प) में धंसा रहता है। इसका निचला सिरा तेजी से बढ़ने वाली कोशिकाओं का बना होता है जो बाल के धागे का निर्माण करती हैं। यहीं पर स्थित विशेष कोशिकाएं जिन्हें मिलेनोसाइट्स कहते हैं मिलेनेन नामक रंजक पदार्थ उत्पन्न करती हैं जो बालों को उनका रंग प्रदान करता है। पुरुष हारमोन एड्रोजन के रिसेप्टर इन्हीं कोशिकाओं पर स्थित होते हैं। हेयर बल्ब की तली में स्थित डर्मल पेपिला में रक्त वाहिनियां संग्रहित रहती हैं जो केश को पोषित करती हैं। हेयर फॉलिकल के निकट पसीने की ग्रंथियां पाई जाती हैं जो प्राकृतिक तेल उत्पन्न करती है (चित्र -1क)।

हेयर शेफ्ट – केश का वह भाग जो त्वचा के ऊपर रहता है और जिसे हम देखते हैं तथा बाल मानते हैं हेयर शेफ्ट कहलाता है। यह मृत कोशिकाओं का बना होता है जो किरेटिन, बांधने वाले तत्त्व तथा जल से बनी होती है। इसी कारण बाल काटने पर कष्ट नहीं होता है। हेयर शेफ्ट में तीन पर्तें होती हैं, सबसे अंदर की पर्त मेडयूला कहलाती है। मध्य पर्त कॉरटेक्स है जो किरेटीन की बनी होती है यह बालों को मजबूती, रंग तथा सतह की बनावट प्रदान करती है। सबसे ऊपर अत्यधिक महीन तथा रंगहीन पर्त होती है जो कॉरटेक्स को सुरक्षा प्रदान करती है (चित्र -1क)।

मनुष्य के शरीर पर 3 प्रकार के केश उगते हैं —

1. **वेलस हेयर** – यह छोटे रंगहीन केश होते हैं तथा इनके पास पसीने की ग्रंथि नहीं होती है तथा इसमें मेलानिन पर्त नहीं पाई जाती है।
2. **टर्मिनल हेयर** – लंबे केश, जिसमें रंजक पदार्थ होता है तथा पसीने की ग्रंथि निकट पायी जाती है।
3. **इन्टरमीडिएट हेयर** – यह उपरोक्त दोनों के बीच के होते हैं। इसमें रंजक पदार्थ टर्मिनल हेयर से कम

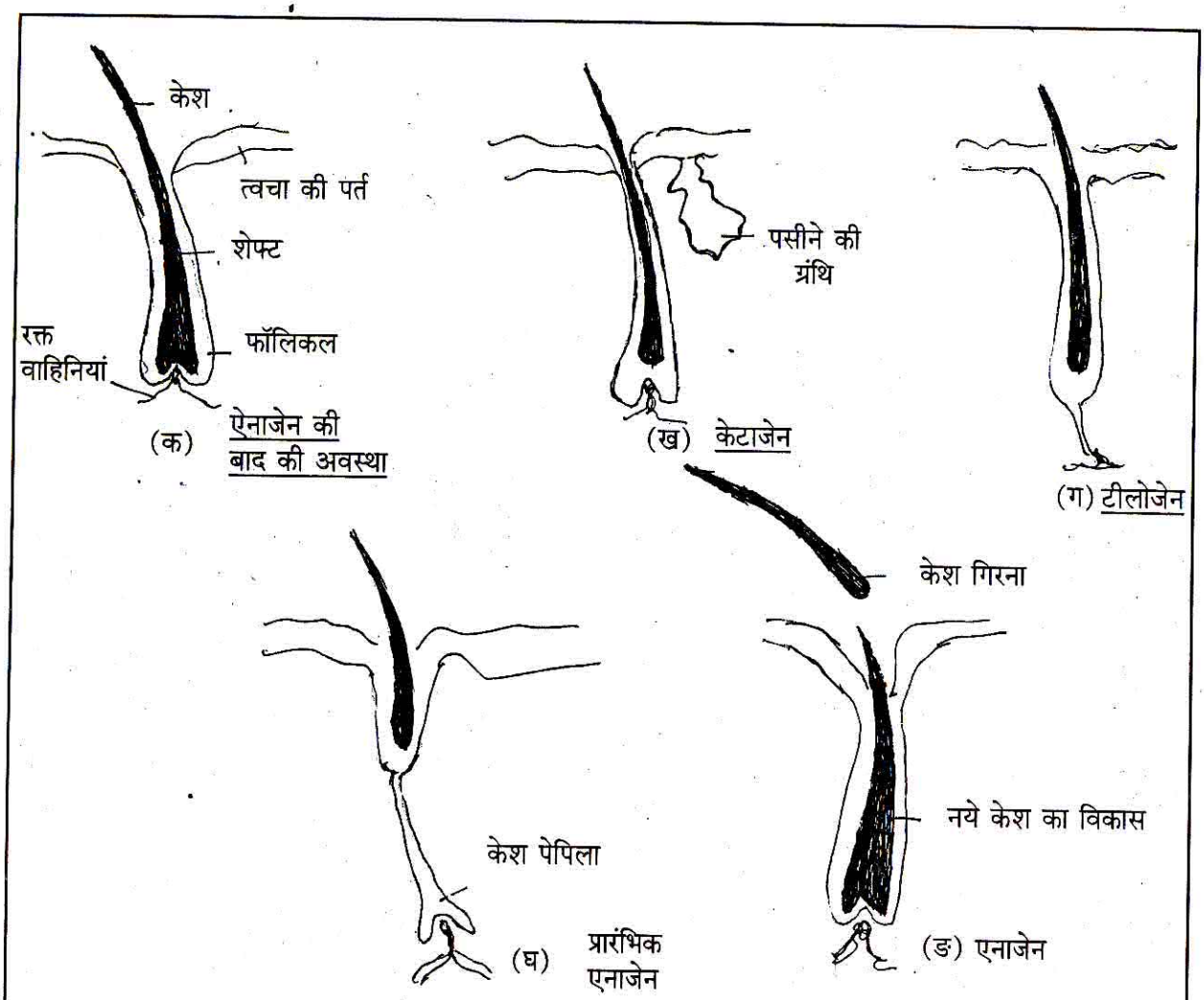

चित्र-1 केश विकास की विभिन्न अवस्थाएँ

पाया जाता है। गंजेपन की प्रक्रिया में टर्मिनल तथा इन्टरमीडिएट केश के फॉलिकल कुछ इस तरह से परिवर्तित होते हैं कि यह टर्मिनल हेयर नहीं बनाते हैं उसके स्थान पर वेलस हेयर बनने लगते हैं।

केश का जीवन चक्र :

केश का एक तंतु अपने जीवन काल में तीन अवस्थाओं से गुजरता है।

1. **एनाजेन** – यह केश के बढ़ने की अवस्था है तथा 2–6 वर्ष की होती है। (चित्र -1 क, घ, ङ)
2. **केटाजेन** – यह फॉलिकल में बाल बढ़ने से विश्राम के बीच की अवस्था होती है जो 2–3 सप्ताह तक चलती है। इसके पश्चात् फॉलिकल का अन्दरूनी भाग क्षय होने लगता है (चित्र -1ख)।
3. **टीलोजेन** – यह हेयर फॉलिकल की अंतिम तथा विश्राम की अवस्था है और 3–4 माह की होती है। इस अंतराल के पश्चात् परिपक्व केश जो अपना जीवन समाप्त कर चुका है गिर जाता है तथा नया केश उगने की प्रक्रिया पुनः ऐनाजेन से प्रारंभ हो जाती है (चित्र -1ग)।

केश के जीवन चक्र का 90 प्रतिशत भाग बढ़ने की अवस्था एनाजेन (1000 दिन या उससे अधिक) होता है जबकि केटाजेन अवस्था (10 दिन) तथा केश गिरने की अवस्था टीलोजेन (100 दिन) मिलाकर 10 प्रतिशत ही होता हैं। केश के बढ़ने का सामान्य क्रम 2–6 वर्ष होता है। इस समय प्रत्येक केश एक सेमी. प्रति माह की दर से बढ़ता है। किसी भी समय हमारे सिर के 90 प्रतिशत केश बढ़ने की प्रक्रिया में होते हैं तथा 10 प्रतिशत विश्राम अवस्था में रहते हैं। 2–3 माह के पश्चात् विश्राम अवस्था के केश गिर जाते हैं तथा उनके स्थान पर नए केश उगना प्रारंभ कर देते हैं। अतः प्रतिदिन कुछ केशों का गिरना प्रकृति का एक नियम है। वयस्क व्यक्ति के सिर में 1 से 1.5 लाख केश होते हैं और सामान्यता 100 केश तक प्रतिदिन गिरते हैं।

केश क्यों गिरते हैं? –

केश ह्रास के प्रमुख कारण उम्र की परिपक्वता, कुपोषण, तनाव, प्रदूषण, बीमारी, औषधियों का दुष्प्रभाव, हारमोनों का असंतुलन तथा अनुवांशिकीय है।

जब शरीर में टेस्टोस्टोरोन की मात्रा बढ़ती है यह "5–अल्फा रिडस्टेज" नामक एन्जाइम की क्रिया द्वारा सिर की खाल में एक अलग एन्ड्रोजन में बदल जाता है जिसे "डाईहाइड्रोटेस्टोस्टेरोन (डी.एच.टी.)" कहते हैं। डी.एच.टी. किसी भी अन्य एन्ड्रोजन की तुलना में अनुवांशिक संवेदनशील केशों को गिरा देता है। डी.एच.टी. केश गिरने की प्रक्रिया को तीन प्रकार से बढ़ा सकती है –

1. स्वस्थ फॉलिकल 2–5 वर्ष तक केश उगाने की अवस्था में रहते हैं तत्पश्चात् पुनः नये केश उगाने से पहले कुछ समय के लिए आराम अवस्था में आ जाते हैं। डी.एच.टी. केशों के बढ़ने की अवस्था को छोटा करने के साथ फॉलिकल के आराम की अवस्था को लंबा कर देता है जिसके फलस्वरूप सिर पर नये केश बहुत छोटे तथा कम संख्या में रहते हैं।
2. एक स्वस्थ फॉलिकल द्वारा केश की पूर्ण वृद्धि हो जाने पर उसकी वृद्धि को रोक दिया जाता है परन्तु डी.एच.टी. के प्रभाव से यह वृद्धि रुकने के कुछ पहले ही जबकि केश पूर्ण रूपेण परिपक्व नहीं होता है अचानक फॉलिकल केश वृद्धि को रोक देता है जिससे केश पतला एवं क्षीण हो जाता है (वेलस हेयर)। डी.एच.टी. फॉलिकल को समय से पहले ही सिकुड़ने के लिए बाध्य कर देता है। इसी कारण से गंजे व्यक्तियों के सिर पर महीन और छोटे केश दिखायी देते हैं।
3. डी.एच.टी. फॉलिकल में रक्त के प्रवाह को कम कर सकता है।

गंजेपन का वर्गीकरण :

1. **एमपीटी (मेल पैटर्न बॉल्डनेस) :** यह आनुवांशिक बीमारी है और किसी भी आयु में हो सकती है। बाल सिर के सामने से, ऊपर या सिर के दोनों पटलों से गिरना प्रारंभ होते हैं। कुछ व्यक्तियों के सब बाल गिर जाते हैं तो कुछ में बाल गिरने से सिर की त्वचा चकत्तों में दिखायी देने लगती है, कुछ में केवल सिर के किनारों पर पंक्ति में ही बाल रह जाते हैं। हेमिल्टन (1951) ने एमपीटी का वर्गीकरण किया जिसको नोखुड (1975) ने संशोधित किया। अब यह हैमिल्टन–नोखुड मानक माना जाता है (चित्र -2क)।
2. **एफपीटी (फीमेल पेटर्न बॉल्डनेस) :** स्त्रियों में पूर्ण गंजापन एक असंभव घटना है। स्त्रियों के बाल झड़ते रहते हैं तथा लगातार बाल गिरने से बाल कम हो जाते हैं और सिर की त्वचा हल्की दिखाई देने लगती है (चित्र -2ख)।
3. **एलोपिसिया अरेटा या स्पाट बॉल्डनेस :** यह एक स्वतः प्रतिरक्षा विकार है जिसमें शरीर के किसी एक स्थान के या पूरे शरीर का प्रत्येक केश गिर जाता है।
4. **ट्राइकोटिलोमेनिया :** यह अवस्था अधिकतर बच्चों तथा वयस्कों में देखने को मिलती है। केश जोर से खींचने या बांधने के कारण टूट जाते हैं।
5. **स्कारिंग एलोपेसिया :** सिर या शरीर के किसी भी भाग में चोट का निशान या दाग होने पर वहां केश नहीं उगते हैं। यह दाग बीमारी जैसे त्वचा कैंसर, फंफूद का त्वचा संक्रमण, तपेदिक, ल्यूकस आदि के कारण भी हो सकता है।
6. **टॉक्सिक एलोपेसिया :** गंभीर बीमारी या औषधियों के प्रभाव से केश गिरते हैं।

गंजेपन की प्रकृति तथा उग्रता कई बातों पर निर्भर करती हैं। गंजापन तीन प्रकार का हो सकता है;

एलोपेसिया अरेटा - सिर के कुछ बालों का गिरना।

एलोपेसिया टोटलिस – सिर के संपूर्ण बालों का गिरना।

एलोपेसिया यूनिवर्सल – सिर तथा शरीर के संपूर्ण बालों का गिरना।

पुरुषों में गंजापन (मेल पेटर्न बॉल्डनेस) :

यह अनुवांशिक गंजापन है तथा X गुणसूत्र (क्रोमोसोम) में पाया जाता है। यह गंजापन मां से लड़के में आता है। मनुष्य के शरीर में पाये जाने वाला 23वां गुणसूत्र जोड़ा ही उसके लिंग को निर्धारित करता है। चूंकि पुरुषों में केवल एक X गुणसूत्र होता है तथा गंजेपन की जीन X गुणसूत्र पर पाये जाने के ही कारण यह गुणसूत्र मां से उसके बेटे में आता है। गंजापन तब तक छुपा रहता है जब तक कि अभिव्यक्ति की जीन शरीर में उपस्थित रहती है।

स्त्रियों में XX गुणसूत्र पाया जाता है अतः जब तक दोनों गुणसूत्रों पर गंजापन अभिव्यक्त होने वाली जीन न हो, गंजापन नहीं होगा। एक स्त्री में 3 अनुवांशिक स्थितियां हो सकती है –

1. दोनों X गुणसूत्र पर गंजेपन की जीन नहीं है इन्हें X_n X_n दर्शाया गया है – स्त्री के बाल सामान्य होंगे।

2. एक सामान्य तथा एक गंजेपन की जीन X गुणसूत्र जोड़े पर होने पर भी सामान्य बाल होंगे – इन्हें X_n X_b दर्शाया गया है।
3. दोनों गुणसूत्र पर गंजेपन की जीन होने पर स्त्री में गंजापन होगा – जिसे $X_b X_b$ दर्शाया गया है।

उपरोक्त तीन संभावनाएं स्त्री में होने पर उसके पुत्र में गंजेपन की 4 संभावनाएं हो सकती है;

i पहली दशा में पुत्र सामान्य होगा $X_n Y$

ii दूसरी दशा में एक पुत्र सामान्य तथा दूसरा गंजा होगा $X_n Y / X_b Y$

iii तीसरी दशा में पुत्र गंजा होगा $X_b Y$

एक बार लड़के में गंजेपन की जीन आ जाने के बाद यह जीन स्वयं उसकी सभी पुत्रियों में आ जाती है। यदि उसकी पत्नी सामान्य है तो पैदा होने वाली लड़कियां में गंजेपन की जीन ($X_n Y_b$) (MPB) आने के 50 प्रतिशत अवसर होंगे।

इसका कारण है कि पुरुष केवल X_b जीन ही अपनी पुत्री दो दे सकता है। इस प्रकार पुरुष अपनी गंजेपन की जीन को पुत्रियों को देकर सामान्य महिलाओं ($X_n X_n$) की संख्या को कम कर देते हैं। इसी कारणवश महिलाएं जब पुत्र पैदा करती हैं तो उनमें गंजेपन के जीन पाये जाते हैं। कुल जनसंख्या की लगभग 30 प्रतिशत महिलाओं में यह जीन पाए जाते हैं। अनुवांशिक गंजेपन की अभिव्यक्ति निम्न है :-

X_n = सामान्य जीन XX– महिला

X_b = गंजेपन की जीन XY– पुरुष

क. सामान्य पुरुष X सामान्य महिला

$X_n Y$ ↓ $X_n X_n$

$X_n X_n, X_n X_n, X_n Y, X_n Y$ (सभी संतानें सामान्य)

ख. सामान्य पुरुष X महिला — छुपी गंजेपन की जीन के साथ (रिसेसिव जीन)

$X_n Y$ ↓ $X_n X_b$

$X_n X_n, X_n X_b, X_n X, X_b Y$

दो सामान्य लड़कियां जिसमें से एक में गंजेपन के जीन छुपे होते हैं — एक सामान्य लड़का एक गंजापन लिए लड़का

ग. गंजा पुरुष X महिला – छुपे गंजेपन के जीन के साथ (रिसेसिव जीन)

$X_b Y$ ↓ $X_n X_b$

$X_n X_b, X_n Y, X_b X_b, X_b Y$

1 सामान्य लड़का

1 गंजा लड़का

1 सामान्य लड़की (गंजेपन के छुपे जीन)

1 गंजी लड़की

घ. गंजा पुरुष X गंजी महिला

$X_b Y$ ↓ $X_b X_b$

$X_b X_b, X_b Y, X_b X_b, X_b Y$ सभी गंजे होंगे

गंजेपन का उपचार :

जब किसी भी व्यक्ति के केश सिर से सामने के भाग, ऊपर तथा दाएं, बाएं पटल से गिरने लगते हैं तब कोई भी तेल, शैम्पू, व्यायाम, पौष्टिक भोजन आदि उसको पूर्ण रूप से रोक नहीं पाता है। पुरुष में गंजेपन की समस्या किस प्रकार की है इसके ऊपर ही उसको दिया जाने वाला उपचार निर्भर करता है। उपचार की अनेक विधियां प्रचलित हैं जिनमें प्रमुख है औषधि का प्रयोग, लेसर थैरेपी, इम्यूनोसप्रेसएन्ट्स, सौपलमैटो, पॉलीग्लोनम मल्टीफ्लोरम, स्ट्रेस रिडक्शन, हेयर ट्रासप्लांट आदि। इनमें प्रमुख है केश प्रत्यारोपण, वीविंग या बुनना तथा औषधि का प्रयोग।

1. **केश प्रत्यारोपण :** सिर से आगे तथा ऊपर के केश झड़ जाते हैं क्योंकि यह अनुवांशिकीय रूप से हारमोन से प्रभावित होते हैं जब कि सिर के दाएं, बाएं पटल तथा पीछे के नीचे के केश अनुवांशिकीय रूप से हारमोन के प्रतिरक्षित रहते हैं तथा उनमें यह अनुवांशिक गुण निहित होता है कि वह जीवन भर उगते रहें। यदि उनको वहां से सिर के अन्य किसी भाग में प्रतिरोपित किया जाता है तो भी यह केश अप्रभावित रहते हैं और निरंतर बढ़ते रहने की क्षमता रखते हैं। यह एक चिकित्सीय सत्य है और लगभग पिछले 50 वर्षो से निर्विवाद है। इस तथ्य का प्रयोग ही केश प्रत्यारोपण में किया जाता है। "बोस्टले इन्टरनेशनल" अमरीका की सबसे बड़ी केश प्रत्यारोपण की कंपनी है और यहां वर्ष 2001 में विश्व की सबसे बड़ी "केश पुनर्जीवित प्रयोगशाला" स्थापित की गई है।

विधि : सिर की त्वचा में उपस्थित फॉलिकुलर यूनिट से ही केश उगते हैं। यह कोशी की जड़ है। केश प्रतिरोपण करने के लिए चिकित्सक सिर के पीछे से केश की जड़ सहित एक पतली पट्टी काट लेते हैं। इसको फिर छोटे–छोटे टुकड़ों में काट लिया जाता है। प्रत्येक छोटे टुकड़े में फॉलिकुलर यूनिट

चित्र-2 पुरुषों में केश ह्रास लुडविग स्केल - नॉरवुड चार्ट

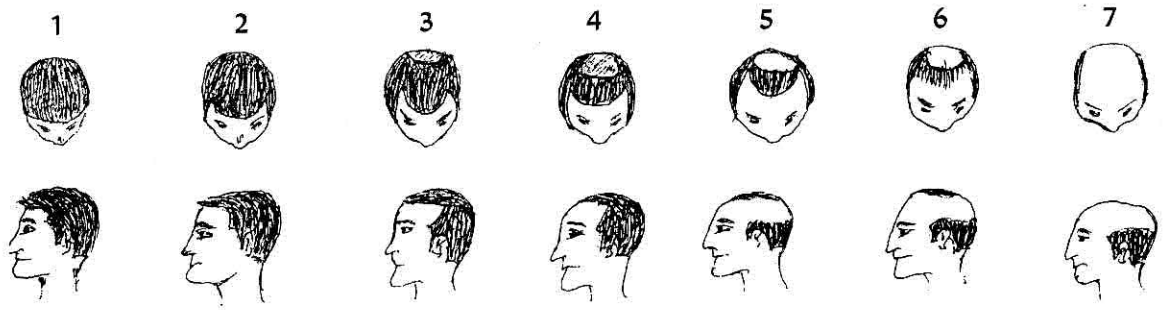

(क) मेल पेटर्न बॉल्डनेस

(ख) लुडविग केश ह्रास पैमाना स्त्रियों में

पुरुष एवं महिलाओं में गंजेपन की विभिन्न अवस्थाएँ

रहती है। चिकित्सक इन छोटे टुकड़ों को सिर की त्वचा में आवश्यकतानुसार लगा देते हैं। साधारणतया एक पुरुष को 1000–5000 ग्राफिटंग की आवश्यकता पड़ती है।

2. **केश बुनना (हेयर वीविंग) :** यह विधि प्रतिरोपण से सस्ती पड़ती है। इसका कोई दुष्प्रभाव भी प्राकृतिक केशों पर नहीं पड़ता है तथा इस विधि से लगाए गए केश सिर से पृथक भी नहीं होते हैं। इस प्रकार के केशों को किसी विशेष रख–रखाव की आवश्यकता भी नहीं होती है तथा इन केशों का जीवन 6 वर्ष से अधिक रहता है।

केश बुनने की कई विधियां प्रचलित हैं जिनमें केशों को प्राकृतिक केशों पर चिपकाना या सिलना प्रमुख है। इसके अतिरिक्त लेस एक्सटेंशन विधि है जिसमें नायलोन की टोपी पर केश गूंथ दिए जाते हैं तथा इसको सिर पर विशेष गोंद के द्वारा चिपका दिया जाता है। इस प्रकार के केशों पर स्नान करने, सिर धोने तथा तैराकी आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इस विधि के द्वारा आंशिक या पूर्णरूपेण गंजेपन का उपचार किया जाता है।

3. **औषधियों का प्रयोग :** केश गिरने की विभिन्न अवस्थाओं में औषधि का प्रयोग करने से लाभ मिलता है। यू.एस. फूड एंड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन द्वारा दो औषधियों को उपचार के लिए सही ठहराया गया है।

फिनास्टराईड : यह 5 एल्फा रिडक्टेस को रोक देती है जिससे डीएचटी की मात्रा नहीं बढ़ पाती है।

मिनोक्सीडियल : यह सीधे केश की कोशिकाओं पर प्रभाव डालती है तथा केश बढ़ने की अवस्था को लंबा कर देती है। यह दवाएं केश गिरने की प्रक्रिया को धीमा कर देते हैं जिसके कारण कुछ दिनों के लिए केश झड़ना कम हो जाता है। लेकिन यह केश गिरने की समस्या को पूर्ण रूपेण रोकने में असफल रहती है।

4. **आयुर्वेदिक उपचार :** आयुर्वेदिक तेल जैसे आंवला, ब्राह्मी, जसवंद, भृंगराज, ब्रान शोधन तेल आदि सिर पर मलना लाभकारी पाया गया है। केश झड़ने की गंभीर समस्या होने पर दूध का एनीमा दिया जाता है जिसे तिक्तक्षीर बस्ति कहते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ औषधियां खाने में प्रयोग की जाती है जैसे आरोग्य वर्द्धनी, गडक रसायन, लक्साडी गुगलू, अमलकी एवं गुडची आदि। केश गिरने पर काला चना एवं दूध का सेवन अधिक मात्रा में करना भी लाभकारी होता है।

आयुर्वेद में मान्यता है कि केश अस्थि से निकलता है अतः वह हड्डी की मजबूती पर अधिक ध्यान देते हैं। मानसिक तनाव से भी बाल गिरते हैं। इसके लिए ब्राह्मी, शंखपुष्पी, जटामांसी, वच आदि खायी जाती हैं। औषधीय तेल को नासिका में लगाने से भी असमय बालों के सफेद होने, उम्र से पूर्व होने वाले गंजेपन को रोकने में सहायता मिलती है।

5. **होम्योपैथिक उपचार :** होम्योपैथी में भी केश गिरने तथा गंजापन के उपचार की अनेक औषधियां हैं जिनमें प्रमुख हैं;

1. **नेट्रम म्यूरीएटीकम** – यह रक्त अल्पता वाली स्त्रियों में केश गिरना रोकती है।

2. **सिलिसिया** – बाल गिरने से रोकती है।
3. **लाइकोपोडियम** – अपरिपक्व गंजापन, बाल सफेद होने या गिरने की अवस्था में लाभकारी है।
4. **सीपिया** – यह एलोपेसिया एरेटा में काम आती है इसके अतिरिक्त मीनोपॉस की स्थिति में केश गिरने में लाभकारी है।
5. **ग्रेफाइट** – यह पूरे सिर से केश गिरने की अवस्था में लाभकारी है। इसके अतिरिक्त चकत्तों में केश झड़ने पर प्रयोग होती है।

कहावत है कि उपचार से बचाव बेहतर है अतः गंजेपन से बचाव के लिए अत्यधिक गर्म या ठंडी जलवायु से बचें, दिन में न सोएं, योग द्वारा तनाव कम करें, अपनी भावनाओं को नियंत्रण में रखें, तम्बाकू व शराब के सेवन से बचें, अत्यधिक चिकनाई व नमक, मसालेयुक्त गरिष्ठ भोजन से बचें, रात्रि में आठ बजे से पहले भोजन करें जिससे सोने से पहले पेट हल्का रहे।

केशों को तेज गर्म पानी से नहीं धोना चाहिए तथा नारियल का तेल सिर में लगाना लाभकारी बताया गया है।

विश्व भर के वैज्ञानिक गंजेपन की समस्या को दूर करने के लिए प्रयत्नशील है। रेजिना बेट्ज नामक वैज्ञानिक ने बान विश्वविद्यालय में अरब परिवार के 11 सदस्यों के रक्त के नमूने एकत्र किए जिसमें 10 बच्चे थे। इस परिवार में हाइपोट्राइकोसिस सिम्पलेंक्स नामक अनुवांशिक बीमारी थी जो कि 2 लाख में से किसी एक व्यक्ति को हो सकती है। इसमें केश झड़ने की प्रक्रिया बहुत छोटी उम्र में प्रारंभ हो जाती है। शिशुओं के डी.एन.ए. के स्केन की जांच करने से ज्ञात हुआ कि उनको $P_2 Y_5$ जीन का वैकल्पिक रूप (Variant) $P_2 RY_5$, जो केश फॉलिकल कोशिकाओं को अस्वाभाविक बनाता है, विरासत में मिला हुआ है। इसके अतिरिक्त लाइसोफोसफेटिडिक एसिड (LPA), एक पदार्थ जो सामान्यतया फॉलिकल कोशिका से चिपका रहता है और उनको केश बनाने के लिए उत्तेजित करता है, इन अस्वाभाविक कोशिकाओं में लगा हुआ नहीं था।

इस खोज के द्वारा वैज्ञानिकों को दिशा मिल गई है कि ऐसी औषधियों का निर्माण किया जाए जो एल.पी.ए. के सदृश हों तथा जिन व्यक्तियों में फॉलिकल स्वस्थ हों उनमें केश उगने को बढ़ावा दें।

वैज्ञानिकों ने केश बढ़ाने वाले सिग्नल खोजे हैं जो कि गंजेपन की समस्या का निदान करने में सहायक होंगे। इसमें दो प्रोटीन जिन्हें डूब्ल्यू.एन.टी. (Wnt) तथा रोगिन (Roggin) कहते हैं, प्राकृतिक संकेतक हैं। यह स्टेम कोशिकाओं का आकार इस प्रकार बदल सकती हैं कि यह अपने आसपास की अन्य कोशिकाओं से अलग होकर त्वचा की पर्तों में गहरे बैठ जाएं और वहां फॉलिकल में बदल जायें।

वैज्ञानिक एंजेलो क्रिस्टीआनो ने एक अनुवांशिकीय गंजेपन की बीमारी जिसे जनरलाइज्ड एट्राइका कहते हैं एक पाकिस्तानी परिवार में देखी। यहां बच्चों के जन्म के समय उनके सिर पर केश होते थे परन्तु जन्म के तुरंत बाद केश गिर जाते थे ओर फिर नहीं निकलते थे। यह एक असंभव बीमारी है जो कि एक अकेली जीन में खराबी के कारण थी। इस जीन को 'हेयरलेस' नाम दिया गया और यह मनुष्य के $8_p 21$ गुणसूत्र पर पायी गई है। यह प्रथम उदाहरण है जहां एक अकेली जीन में खराबी पायी गयी जिसके कारण केश गिर जाते हैं।

इन्हीं वैज्ञानिक की टोली ने एक आइरिश ट्रेवलर जिसमें लगभग समान लक्षण थे, कंजेनिटल एट्रिशिया (Congenital atrichia) का जीन परीक्षण किया और पाया कि हेयरलेस जीन का म्यूटेशन ही केश गिरने के लिए उत्तरदायी है परन्तु यह पाकिस्तानी परिवार में पाई जाने वाली जीन से अलग था।

जीन थैरेपी :

यह केश गिरने की समस्या के निदान की खोज का नया विषय है और इसमें अत्यधिक संभावनाएं हैं। इसमें कोशिकाओं की जीन को बदलकर उनका कार्य बदल दिया जाता है। जीन थिरेपी में डी.एच.टी. संवेदनशील केश फॉलिकल को डी.एच.टी. असंवेदनशील कोशिकाओं में बदल दिया जाएगा जिससे फॉलिकल जीवन पर्यन्त नये केश उगा सकेगा परन्तु इस प्रक्रिया में अनेक अड़चनें हैं –

1. करोड़ों जीनों में यह पहचानना की कौन सा जीन डीएनए पर है जिसको बदलना है (जिन पहचानना)।
2. जीन को पहचानने के पश्चात् किस प्रकार बदला जाए कि वह ऐसी प्रोटीन का निर्माण करें जिससे लाभ मिल सकें (जीन सुधारना)।
3. मनुष्य की कोशिकाओं में नयी और सुधरी हुई जीन को पुरानी जीन की जगह बदलना।

नवीन शोध :

वर्षों से वैज्ञानिकों का मत रहा है कि मां के गर्भ में ही शिशु के शरीर पर केश फॉलिकल का निर्माण हो जाता है और यदि उनमें से कोई बंद हो जाता है या किसी कारण नष्ट हो जाता है तो नया फॉलिकल नहीं बनता है।

पेनसिलवेनिया के वैज्ञानिक डॉ. जार्ज काटसरेलिस ने केश फॉलिकल को चूहों में पुनर्जीवित करने के प्रयोग किए। इसके लिए उन्होंने जीन Wnt में सुधार किया। यह जीन घाव के भरने की प्रक्रिया में संलग्न रहती है तथा नये केश फॉलिकल को उत्पन्न करती है। प्रयोगों से ज्ञात हुआ कि फॉलिकल घाव के भरने के बाद पुनः उत्पन्न हो जाते हैं। अतः इस प्रक्रिया के द्वारा फॉलिकल की संख्या बढ़ायी जा सकती है। कऊकेसियन मनुष्यों पर हुई वैज्ञानिक शोधों से ज्ञात हुआ है कि दो अज्ञात अनुवांशिक वेरियेन्ट 20 वें गुणसूत्र पर पाए जाते हैं जो एमपीबी के खतरें को बढ़ा देते हैं। यह परीक्षण 1125 कऊकेसियन पुरुषों पर किया गया।

श्वान में गंजापन :

मनुष्य की तरह श्वान में भी बाल झड़ने की समस्या पाई जाती है। जीन Fox 13 में म्यूटेशन से कुत्तों में गंजापन पाया जाता है। श्वान की तीन नस्लों मेक्सिकन, पेरूवियन तथा चाइनीड़ क्रेस्टेड पर शोध हुआ। वैज्ञानिकों का मत है कि म्यूटेशन पहले मेक्सिकन केश रहित कुत्तों पर हुआ होगा। यह पेरूवियन केश रहित कुत्तों तथा चाइनीड़ क्रेस्टेड कुत्तों को भी प्रभावित करता है। इन्हीं नस्ल के केश सहित कुत्तों में Fox 13 जीन पायी गई है।

टोसोलीब नामक वैज्ञानिक ने बर्न विश्वविद्यालय, स्विटजरलैंड में एक जीन जो कि पहले ज्ञात नहीं थी, में म्यूटेशन का पता किया। इस म्यूटेशन के कारण उपरोक्त तीनों नस्ल के श्वान पूर्ण गंजे या आंशिक गंजे हो गए। Fox 13 जीन के डीएनए के सात कोड की प्रतिलिपि ही इन तीनों नस्ल के श्वान के बालों की कम संख्या या गंजेपन के लिए जिम्मेदार है। परीक्षण में प्रयोग किए गए 140 केश रहित श्वान में यह प्रतिलिपि पायी गई जबकि केश युक्त श्वान इससे मुक्त थे। ऐसा समझा जाता है कि 4000 वर्ष पूर्व मेक्सिकन केश रहित श्वान में म्यूटेशन हुआ होगा और कालान्तर में प्रजनन के द्वारा अन्य दो नस्लों में आ गया होगा।

चूहों पर किए गए प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि Fox 13 प्रोटीन भ्रूण ऊतकों में निर्मित होती है तथा बाल, मूंछ और दांत बनाती है। यह जानकारी अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि बाल रहित श्वान की नस्ल में भी दांतों में विषमताएं पाई जाती हैं – जैसे दांतो का गायब होना या सही आकार न होना। इस प्रकार के लक्षण को केर्नाईन एम्टोडर्मल डिस्पेलेसिया कहा जाता है।

आज के युग में गंजापन न केवल शारीरिक कुरूपता है वरन् इसके व्यापक सामाजिक, मानसिक तथा मनोवैज्ञानिक दुष्प्रभाव भी हैं। अतः आशा की जाती है कि निकट भविष्य में नवीन शोधों द्वारा इस समस्या का समुचित निस्तारण संभव होगा।

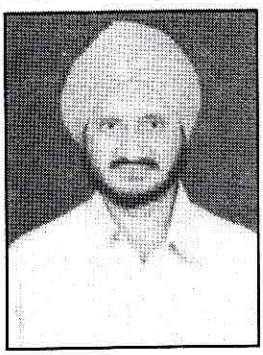

श्री कुलवंत सिंह

"वैज्ञानिक" के पूर्व व्यवस्थापक सम्मानित

हिंदी में विज्ञान के प्रचार प्रसार के लिए विगत कई वर्षों में किये गये अनेकानेक प्रयासों के लिए पदार्थ संसाधन प्रभाग भा.प.अ. केंद्र में वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी एवं ''वैज्ञानिक'' के पूर्व व्यवस्थापक श्री कुलवंत सिंह को अपने व्यक्तिगत प्रयासों के लिए 'भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र' द्वारा 'परमाणु ऊर्जा विभाग' के अध्यक्ष डॉ. अनिल काकोडकर के करकमलों द्वारा 22 अक्टूबर 2009 को 'राजभाषा गौरव पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। जिसके अंतर्गत उन्हें एक प्रशस्ति पत्र भी दिया गया। वे लगभग गत 15 वर्षों से 'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद' की कार्यकारिणी एवं गत 8 वर्षों से त्रैमासिक पत्रिका ''वैज्ञानिक'' का व्यवस्थापन से जुड़े हैं। इस दौरान उन्होंने अखिल भारतीय स्तर पर 'डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता' का संयोजन, परमाणु ऊर्जा विभाग के स्कूली छात्रों के लिए हिंदी विज्ञान प्रश्न मंच का संचालन किया। इसके अलावा डॉ. अरविंद कुमार द्वारा लिखी 'एटम्स एंड डेवलपमेंट' पुस्तक का हिंदी में अनुवाद 'परमाणु एवं विकास' नाम से अपने एक सहयोगी के साथ किया और कण-क्षेपण पर मोनोग्राफ हेतु पाण्डुलिपि तैयार की है।

संपादन मंडल की ओर से श्री कुलवंत सिंह को हार्दिक बधाई।

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2008) में तृतीय पुरस्कार प्राप्त

प्रकृति का वरदान : गोबर एवं गौ-मूत्र

डॉ. सविता गुप्ता

2 /78, विनीत खण्ड-2, गोमती नगर, लखनऊ, उ.प्र.

भारतीय संस्कृति में गोबर एवं गौ-मूत्र की प्रमुखता से सभी परिचित हैं। इन गौण लगने वाले पदार्थों पर हुए वैज्ञानिक शोध एवं सदियों से चली आ रही उनकी उपयोगिता के फलस्वरूप आज इन पदार्थों ने अपना विशेष स्थान बना लिया है। इन पदार्थों के गुणों एवं विविध उपयोगों के बारे में विज्ञान सम्मत जानकारी इस लेख में दी गयी है।

भारतीय संस्कृति में गौ (गाय) का स्थान समस्त पशुओं में सबसे उच्च है। वैदिक काल से ही गौ के अन्दर निहित गुणों को पहचान कर उसको करुणामयी, ममतामयी और अमृत के समान दुग्ध प्रदान करने वाली जान कर तथा जीवन पर्यन्त मनुष्य मात्र के लिए लाभकारी एवं मृत्युपरांत भी अपने देह से जग का कल्याण करने वाली देख कर ही उसको माता का स्थान दिया गया है। ''गौ माता'' जैसा सम्मानपूर्वक संबोधन अन्य पशुओं के लिए कहीं देखने को नहीं मिलता है। हिन्दू धर्म के अनेक धार्मिक अनुष्ठानों में गौ-मूत्र एवं गोबर का प्रयोग पूजन स्थान को लीपने व शुद्धि के लिए किया जाता है। गाय का गोबर व मूत्र भी पवित्र माना जाता है तथा गोबर के कंडे हवन में प्रयोग किए जाते हैं। वेदों में गाय के शरीर को संपूर्ण ब्रह्मांड की संज्ञा दी गई है तथा गोबर में लक्ष्मी का वास माना गया है। गाय के दूध के विषय में आयुर्वेद में बृहत् वर्णन किया गया है। यह आहार मात्र ही नहीं है वरन् इसे प्रकृति प्रदत्त रसायन माना गया है जो दुर्बल और रोगियों को नवजीवन प्रदान करता है। इसका दूध स्वास्थ्य एवं पौष्टिकता की दृष्टि से भैंस तथा अन्य पशुओं व मानव के दूध की तुलना में श्रेष्ठ माना जाता है। इसका मुख्य कारण इसमें वसा का कम होना तथा अन्य पोषक तत्त्वों की मात्रा का अधिक होना है।

भारतीय आर्थिक एवं सामाजिक परिवेश में प्राचीनकाल से ही पशुधन न केवल कृषि अपितु ग्रामीण विकास का आधार रहा है। यदि कृषि हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का आधार है तो पशुपालन कृषि का प्रमुख संबल है और इसकी उपयोगिता बहुआयामी है। खेती, पशुपालन, ऊर्जा, ग्रामोद्योग, स्वास्थ्य व पर्यावरण, फसल की उत्पादकता, पर्यावरण की सुरक्षा आदि पशुपालन के लाभ हैं। आज हमारा देश दुग्ध उत्पादन में विश्व में पहले स्थान पर है। इसका श्रेय अन्य कारणों के अतिरिक्त मुख्य रूप से देश में प्रचुर संख्या में उपलब्ध पशुधन को जाता है। विश्व जनसंख्या की लगभग 28 प्रतिशत पशु भारत में मिलते हैं जिसमें मुख्य रूप से लगभग 20 करोड़ गोवंशीय पशु हैं। यद्यपि गायों को केवल दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से देखा जाये तो उनका औसत दुग्ध उत्पादन मात्र 1.0 लीटर प्रतिदिन है। इसका कारण है कि हमने गौ-पालन को कभी भी दुग्ध पैदा करने वाले कर-कारखाने की तरह नहीं वरन् सदैव गौ माता की तरह देखा है जो न केवल हमें अमृत रूपी दूध प्रदान करती है वरन् उत्तम किस्म के बैल, गौमल व गौ-मूत्र भी देती है, जिसका केवल खेती ही नहीं बल्कि मनुष्य के पूरे जीवन में बहुत बड़ा महत्त्व है।

गोबर :

गौमल ही ''गोबर'' कहलाता है। चौरासी लाख योनियों के प्राणियों में गाय ही एक ऐसी प्राणी है जिसका मल (गोबर) रोगाणुनाशक व विषाणुनाशक है। गोबर से बनी खाद रासायनिक खाद की तुलना में मिट्टी की उर्वरा शक्ति को अक्षुण्ण बनाए रखने में सक्षम है, साथ ही यह ऊर्जावान भी है।

वैज्ञानिक अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि गोबर में कवक एवं अनेक हानिकारक जीवाणुओं को नष्ट करने की क्षमता होती है। इसलिए ग्रामीण इसका प्रयोग घर की दीवारों तथा फर्श को लीपने में करते हैं, इससे फर्श, दीवारों की दरारें भर जाती हैं और कीड़े तथा मच्छरों का प्रकोप नहीं होता है। ग्रामीण अंचलों में गोबर का सर्वाधिक उपयोग ईंधन (कंडे बनाकर) एवं खाद के रूप में किया जाता है। गोबर की राख बर्तन साफ करने के काम आती है। इसमें चूना और गीली मिट्टी मिलाने से यह सीमेन्ट की तरह कार्य करती है। गोबर को तालाब में डालने पर यह उसकी अम्लीयता को समाप्त कर देता है। इसको नीम के पत्ती के साथ पीसकर लगाने से

त्वचा के रोग दूर होते हैं। बीज को गोबर में मिलाकर बोने से जमाव अच्छा व शीघ्र होता है तथा सड़न की समस्या नहीं होती है।

गोबर के रासायनिक विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि इसमें कार्बनिक तत्त्व 18.0 प्रतिशत, नाइट्रोजन 0.: प्रतिशत, फॉस्फोरस पेन्टाऑक्साइड 0.01 प्रतिशत प जाता है। गोबर क्षारीय होता है इसमें निहित कार्बनिक त जीवाणुओं द्वारा अपघटित होकर नाइट्रोजन एवं फॉस्फो बनाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट एवं वसा विद्यमान रहते हैं। अकार्बनिक तत्त्वों में पोटेशियम त फॉस्फोरस मुख्य हैं।

कंपोस्ट :

मिट्टी की उर्वरता के अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए प्राचीन काल से ही खेतों में गोबर का खाद का उपयोग होता रहा है। घर के आसपास या खलिहानों में गोबर के ढ़ेर लगा दिए जाते हैं, जिनके सड़ जाने पर उसे उठा कर खेत में डाल दिया जाता था, जिसे कंपोस्ट भी कहते हैं। इसमें पोषक तत्त्वों की मात्रा कम रहती है (तालिका-1)। अतः आज उसे और उचित प्रकार से तैयार करने की आवश्यकता है। गोबर व जैविक पदार्थों जैसे पुआल, भूसा, खरपतवार, हरी सब्जी के छिलके, पत्तियां व अन्य पदार्थ जो अपघटित हो सके, उनका प्रयोग करके वैज्ञानिक ढ़ंग से खाद तैयार की जाए और कम लागत में अधिक लाभ उठाया जाये, यही आज समय व कृषि की मांग है। कंपोस्ट बनाने की अनेक विधियां प्रचलित हैं, जिनमें प्रमुख है ढ़ेर विधि, गडढ़ा विधि, नादेप कंपोस्ट, वर्मी कंपोस्ट, काऊ पैटपिट, सींग की खाद आदि।

ढ़ेर विधि : कंपोस्ट बनाने के लिए पौधों के अवशेष, गोबर और मूत्र, लकड़ी की राख, चारों तरफ उपलब्ध खरपतवार, सूखी या हरी पत्तियां, भूसा, पुआल, चारा, वनस्पतियों के अवशेष आदि पदार्थों का प्रयोग करके 2.5 मी. लम्बा × 1.5 मी. ऊंचा ढ़ेर बनाया जाता है (चित्र-1)। इसे ऊंचाई वाले स्थान पर पशुशाला के निकट बनाया जाता है। ढ़ेर बनाने में सभी पदार्थों को मिलाकर पानी से नम किया जाता है और ऊपर से ढ़ेर को मिट्टी–राख से लेपकर ढ़क दिया जाता है। गोबर और गौमूत्र से कृषि कचरे पर सूक्ष्म जीवों की क्रिया उत्प्रेरित होती है। लगभग 7–8 सप्ताह बाद इसको पलट दिया जाता है और पानी आवश्यकतानुसार छिड़क कर पुनः ढ़क दिया जाता है। अच्छी प्रकार सड़ाने के लिए 6 सप्ताह के बार प्रायः दो–तीन बार पलटने की आवश्यकता पड़ती है।

नादेय कंपोस्ट : एक किलो गोबर से 30–40 किग्रा. प्रभावशाली खाद तैयार होती है। एक गाय के गोबर से वार्षिक 80 से 100 टन खाद प्राप्त की जा सकती है।

चित्र 1 - ढेर लगाकर कंपोस्ट बनाने की विधि

कंपोस्ट हौदी : भूमि के ऊपर ईंट की आतयाकार हौदी बनाई जाती है जिसकी दीवारें 9 ईंच मोटी होती हैं। हौदी 12 फीट लम्बाई × 5 फीट चौड़ाई × 3 फीट ऊंचाई की होती है। ईंट की चिनाई करते समय चारों ओर दीवार में छेद रखे जाते हैं, जिससे वायु का आवागमन हो सके। हौदी के फर्श पर ईंटें बिछाई जाती हैं। सबसे ऊपर की चिनाई सीमेन्ट से की जाती है, जिससे ढांचा मजबूत रहें। तैयार हौदी की अंदर की दीवारें गोबर व मिट्टी के मिश्रण से लेप देते हैं।

हौदी भरने की विधि : पहली पर्त 6 ईंच की सूखे तथा हरे वानस्पतिक पदार्थ (60:40) से बनाते हैं। इसके ऊपर 4 किलो गोबर को 100 लीटर पानी में घोलकर छिड़कते हैं। जिससे पहली पर्त भींग जाए। यदि गोबर गैस की स्लरी उपलब्ध हो तो 10 किलो स्लरी पानी में घोल लेते हैं। तीसरी पर्त में वानस्पतिक पदार्थ को मिट्टी की 2 ईंच मोटी पर्त से ढ़कते हैं तथा थोड़ा पानी ऊपर से छिड़कते हैं। इस प्रकार तीन पर्तों के क्रम में हौदी को भरते हैं और अंत में 3 इंच मोटी गोबर मिट्टी के मिश्रण के लेप से पर्त बनाकर बंद कर देते हैं (चित्र-2)। 15–20 दिन बाद खाद सामग्री सिकुड़कर नीचे बैठ जाती है। अब पुनः पहली भराई की तरह तीन पर्त बनाकर हौदी को भरते हैं। प्रथम भराई के 90-120 दिन बाद कंपोस्ट तैयार हो जाती है। तैयार खाद भूरे रंग की, दुर्गंध रहित व सोंधीं सुगंध लिए होती है। इस हौदी से लगभग 30 कुंतल खाद तैयार होती है। इस खाद को 30 से 50 कुन्तल प्रति एकड़ की दर से बोवाई से 15 दिन पूर्व खेत में फैलाकर जुताई कर मिट्टी से मिला देते हैं। इस कंपोस्ट में पोषक तत्त्वों

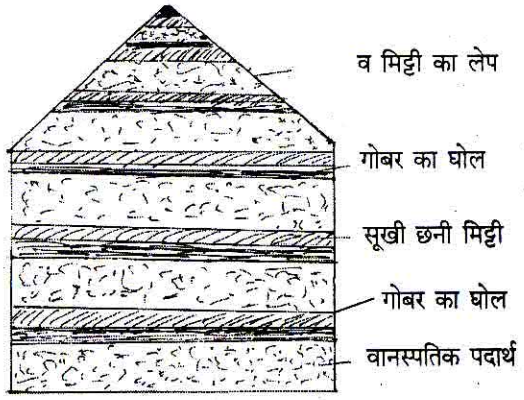

चित्र-2 : नादेय की विभिन्न पर्तो का विवरण

की मात्रा नाइट्रोजन 0.5-1.5 फॉस्फोरस 0.5–0.9 तथा पोटाश 1.2–1.4 प्रतिशत तक पायी जाती है (तालिका-1)।

वर्मी कंपोस्ट : इसको बनाने के लिए सतही केचुएं, जो मृदा कम कार्बनिक पदार्थ अधिक खाते हैं, प्रयोग किए जाते हैं। इन्हें एपीगीज के नाम से भी जाना जाता है। एसीनोफेटीडा जाति के केचुओं का प्रयोग कृषि अवसेश एवं गोबर से वर्मी कंपोस्ट बनाने में किया जाता है, इन्हें रेड वर्म भी कहते हैं। यह 3 ईंच लंबे और 3 से 0.9 ग्रा. तक होते हैं। वर्मी कंपोस्ट में गोबर खाद की तुलना में अधिक पोषक तत्त्व पाए जाते हैं (तालिका-1)। इसमें जीवंश कार्बन 20–25 प्रतिशत होता है तथा ह्यूमिक एसिड पाया जाता है जो भूमि के पीएच. मान को संतुलित रखता है।

वर्मी कंपोस्ट बनाने की विधि : खाद बनाने के लिए भूमि, लकड़ी की पेटी या प्लास्टिक का क्रेट भी प्रयोग किया जा सकता है। पेटी में नीचे 8–10 छिद्र जल निकास हेतु बनाते हैं। भूमि में 10 फीट लंबा × 2.5 फीट चौड़ा × 2 फीट गहरा गड्ढा छायादार तथा ऊंचाई वाले स्थान पर बनाते हैं। उसमें सर्वप्रथम 3–3.5 सेमी. मोटी ईंट या पत्थर की गिट्टी बिछा देते हैं इसके ऊपर 3–3.5 सेमी. मोरंग या बालू तथा 15 सेमी. अच्छी दोमट मिट्टी की पर्त बनाते हैं। इस पर पानी का छिड़काव करते हैं तथा 50–75 केचुएं डाल देते हैं (चित्र-3)। नम मिट्टी के ऊपर गोबर के ढ़ेर बनाकर रखते हैं तथा इसके ऊपर 5–10 सेमी. पुआल या सूखी पत्तियां डालकर पानी का छिड़काव नियमित रूप से करते हैं। 25 दिन के पश्चात् प्रति सप्ताह दो बार लगभग 5–10 सेमी. कचरे की तह तथा गोबर का ढ़ेर बनाकर रखते हैं। यह प्रक्रिया तब तक दुहराते हैं जब तक गड्ढा न भर जाए। पानी का छिड़काव नियमित रूप से करते हैं। 40–45 दिन बाद जब वर्मी कंपोस्ट तैयार हो जाती हैं तो 2–3 दिन तक पानी का छिड़काव बंद कर देते हैं। खाद को छानकर रखते हैं। वर्मी कंपोस्ट का प्रयोग 5-6 टन प्रति हेक्टर, खाद्यान्न फसलों में 10-12 टन प्रति हेक्टर सब्जी फसलों में तथा फलदार वृक्षों में 1–10 किग्रा. प्रति वृक्ष करना चाहिए।

काऊ पैट पिट : गाय के गोबर से एक निर्धारित आकार के गड्ढे में बनायी जाने वाली खाद "सी.पी.पी. या काऊ पैट पिट" कहलाती है। इस खाद को बनाने के लिए ताजा गोबर 60 किलो, 200 ग्राम बोर स्वायल या बेसाल्ट या बेनटोनाइट, 200 ग्राम अंडे के छिलके का पाउडर, बायोडायनेमिक प्रिपरेशन 502–507 प्रत्येक की एक-एक ग्राम मात्रा एक बाल्टी पानी की आवश्यकता होती है।

तालिका - 1 : कार्बनिक खादों में प्रमुख तत्त्वों की प्रतिशत मात्रा

कार्बनिक खाद	नाइट्रोजन	फॉस्फरस	पोटाश
गोबर की खाद	05–105	0.4–0.8	0.5–1.9
कंपोस्ट खाद (ग्रामीण)	0.4–0.8	0.3–0.6	0.7–1.0
कंपोस्ट खाद (शहरी)	1.0–2.0	1.0	1.5
गोबर + मूत्र मिक्षण	0.6	0.15	0.45
नादेय कंपोस्ट	0.6–1.5	0.5–1.0	1.2–1.4
वर्मी कंपोस्ट	1.0–2.5	0.5–2.0	0.6–1.2
काऊ पैट पिट (सी.पी.पी.)	1.30–1.55	0.3–0.55	0.5–0.65
बायो खाद 1.5–2.0	0.8–1.0	0.8–1.0	

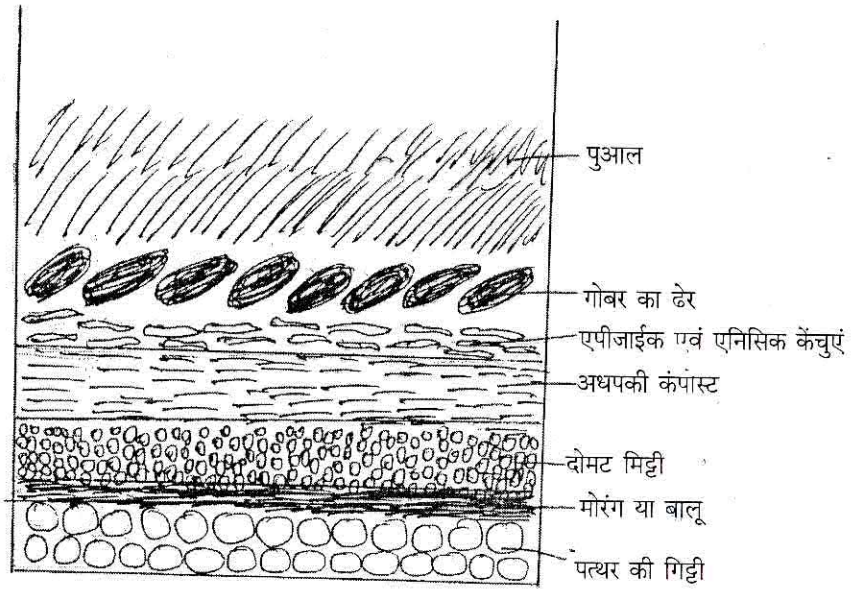

चित्र - 3 : वर्मी खाद बनाने हेतु टांके की विभिन्न पर्तों का विवरण

काऊ पैट पिट खाद बनाने की विधि : भूमि में तीन फीट लंबा × 2 फीट चौड़ा × 1.5 फीट गहरा गड्ढा बनाकर उसकी दीवारों में ईंटें या लकड़ी का पटरा लगा देते हैं। गाय के गोबर में अंडे के छिलके का पाउडर तथा बेसाल्ट मिलाकर तीन चौथाई गड्ढा गोबर से भर देते हैं। इसकी सतह पर अंगूठे से छेद कर के बी.डी. की एक-एक ग्राम मात्रा को डालकर छेद बंद कर देते हैं। बी.डी. प्रिपरेशन 507 की एक मिली. को 350 मिली. पानी में 10 मिनट तक घड़ी की दिशा में भंवर बनाते हुए डंडी से हिलाकर गोबर की सतह पर तथा दीवारों पर छिड़क देते हैं। टाट के टुकडे को गीला करके गड्ढे को ढ़कना चाहिए तथा इसके ऊपर टीन ढ़क कर एक सिरा ऊंचा करना चाहिए। एक माह बाद खाद को ऊपर नीचे पलटना चाहिए। दो से तीन माह में खाद तैयार हो जाती है इसमें मीठी सुगंध होती है।

खाद का प्रयोग : 500 ग्रा. से 1000 ग्रा. खाद को 40-45 ली. पानी में रात भर भिगोकर तरल खाद के रूप में प्रातः 10 मिनट तक घड़ी की दिशा व विपरीत दिशा में डंडी से चलाते हुए भंवर बनाकर छिडकाव करते हैं। यह मात्रा एक एकड़ हेतु पर्याप्त होती हैं। वृक्षों पर लेप करने में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

सींग की खाद : गाय के गोबर को सींग में भरकर तैयार की जाने वाली खाद को सींग की खाद या बायोडायनेमिक प्रिपरेशन 500 कहते हैं। इसको बनाने के लिए मृत दुधारू गाय के सींग, ताजा गोबर, पुरानी कंपोस्ट खाद तथा मिट्टी की आवश्यकता होती है।

मृत गाय के सींग एकत्र करके उनमें गाय के ताजे गोबर को भरकर भूमि में 2 मी. चौड़े × 4 मी. लंबे 1.5 फीट गहरे गड्ढे में माह सितंबर-अक्टूबर के शुक्ल पक्ष में गाड़ देते हैं। इसके पश्चात् गड्ढे को मिट्टी एवं कंपोस्ट मिलाकर भर देते हैं। सींगों को मार्च–अप्रैल के कृष्ण पक्ष में गड्ढे से निकालते हैं। सींगों से खाद निकालकर मिट्टी के बर्तन में एकत्र कर के ठंडे स्थान पर रखते हैं। यह खाद अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में प्रयोग की जाती है, 25 ग्राम खाद एक एकड़ हेतु पर्याप्त होती है। इसका प्रयोग बीज बोने या रूपाई से पूर्व सांयकाल भूमि में छिड़क कर करना चाहिए। छिड़काव करने के लिए 25 ग्राम खाद को 13.5 ली. पानी में मिलाकर 1 घंटे घड़ी की दिशा एवं विपरीत दिशा में डंडी से हिलाते हुए भंवर बनाकर कृष्ण पक्ष में प्रयोग करते हैं। इस खाद के प्रयोग से भूमि में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ती है, ह्यूमस बनने की प्रक्रिया, केचुओं व राइजोबियम बैक्टीरिया की क्रियाशीलता बढ़ती है।

गोबर औषधि के रूप में :

इटली के प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. जी.ई. बीगेड ने गोबर के अनेक प्रयोग कर यह सिद्ध कर दिया है कि गाय के ताजे

गोबर से तपेदिक तथा मलेरिया के रोगाणु मर जाते हैं। अमरीका के वैज्ञानिक जेम्स मार्टिन ने गाय के गोबर, खमीर और समुद्र के पानी को मिलाकर एक ऐसा उत्प्रेरक बनाया है जिसके प्रयोग से बंजर भूमि हरी भरी हो जाती है।

गोबर न केवल खाद बनाने के काम आता है अपितु यह औषधि के रूप में भी प्रयुक्त होता है। जले हुए अंग पर गोबर लगाने से शीघ्र आराम आ जाता है तथा उसका दाग भी नहीं रहता है। गोबर की राख को गोमूत्र में मिलाकर पशुओं के शरीर पर लेप करने से उनके घाव ठीक हो जाते हैं। गोबर की राख का छिड़काव पौधों पर करने से कीट नष्ट हो जाते हैं। गोबर जलाने पर निकलने वाला धुआं कीटाणुनाशी होता है, यह मच्छरों को दूर भगाता है। अतः इसका प्रयोग मच्छर भगाने वाले रसायन बनाने में किया जा रहा है। गोबर में गोमूत्र, घी, दूध, आयुर्वेदिक हवन सामग्री, गुगल, कपूर, लकड़ी का बुरादा, गुलाब की पंखुरी, चावल, लौंग इत्र आदि मिलाकर कंडे बनाए जा रहे हैं, जो जलाने पर वायु को शुद्ध एवं सुगंधित करते हैं। यह एक लघु उद्योग के रूप में जयपुर में स्थापित हो चुका है।

बायोगैस :

आज जब संपूर्ण विश्व में जीवाश्म ईंधन की बढ़ती खपत और क्षीण होते भंडार चिन्ता का विषय बना हुआ है और वैज्ञानिक नये विकल्पों के लिए अनुसंधान कर रहे हैं, बायोगैस अपारंपरिक ऊर्जा का एक ऐसा स्रोत है जो कभी भी समाप्त नहीं होगा। बायोगैस एक ग्रामीण प्रौद्योगिकी है। गोबर के दोहरे (खाद व ईंधन) एवं समुचित उपयोग के लिए इसका प्रयोग बायोगैस संयंत्र में किया जाता है। एक गाय वर्ष भर में 225 ली. पेट्रोल की ऊर्जा के बराबर गोबर देती है तथा 1 किग्रा. मीथेन गैस का कैलोरी मान लगभग एक किलो डीजल, पेट्रोल, मिट्टी का तेल या एल.पी.जी. के बराबर होता है। अतः गोबर से मीथेन उत्पन्न करके इसका ईंधन में प्रयोग करके जीवाश्म ईंधन को संरक्षित रखने के साथ-साथ ग्रामीण परिवेश को स्वच्छ एवं नये लघु उद्योग स्थापित करके सुदृण बना सकते हैं। इससे रोजगार के नये अवसर पैदा होंगे तथा युवकों का ग्राम से पलायन भी रुकेगा।

बायोगैस का रासायनिक संगठन :

बायोगैस एक ज्वलनशील गैसीय मिश्रण हैं। इसमें मीथेन (55-70%), कार्बन डायऑक्साइड (30-45%), हाइड्रोजन (1.2%), हाइड्रोजन सल्फाईड (1%), कार्बन मोनो ऑक्साइड (0.8%), नाइट्रोजन 1.0%) एवं ऑक्सीजन (0.9%) होती है। बायोगैस का मुख्य अवयव मीथेन गैस है जो कि ज्वलनशील होती है। इसके जलने से धुआंरहित लौ निकलती है। यह गंधहीन गैस है तथा इसकी ऊष्मा क्षमता भी अधिक होती है। बायोगैस एक स्वच्छ घरेलू ईंधन है इसका उपयोग करने से धुएं से होने वाले प्रदूषण एवं फेफड़ों की बीमारियों से भी बचाव होता है।

बायोगैस परियोजना :

सन् 1981-82 में **राष्ट्रीय बायोगैस विकास परियोजना** प्रारंभ की गयी। इसके पश्चात् 2001-02 में इस परियोजना का नाम बदलकर **राष्ट्रीय बायोगैस खाद प्रबंधन** कार्यक्रम रख दिया गया है। पशुधन के आंकड़ों में भारत का विश्व में प्रथम स्थान है। एक अनुमान के अनुसार हमारे देश में लगभग 40 करोड़ पशु हैं। इन पशुओं के गोबर से देश में 1 करोड़ 20 लाख 50 हजार बायोगैस संयंत्रों का संचालन किया जा सकता है और प्रत्येक गांव के प्रत्येक घर में रोशनी की जा सकती है। वैज्ञानिकों के अनुसार एक टन गोबर को कंडों के रूप में जलाने से 1,14,000 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है, साथ ही उत्तम खाद भी मिलती है। कर्नाटक में 1982-83 से 2003-04 तक 60,973 बायोगैस संयंत्र लगाए गये हैं। बड़ौदा, गुजरात में एशियन डेवलपमेन्ट बैंक तथा ग्राम विकास कमिश्नर ने जनता के सहयोग से कनास ग्राम में गोबर संयत्र लगाया है जो 40 परिवारों को गैस और खाद देता तथा बदले में उनसे प्रतिदिन गोबर लेगा। खाद भी इन परिवारों को अन्य लोगों की तुलना में सस्ती मिलेगी। अपारंपरिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय के 2005-06 के वार्षिक प्रतिवेदन के अनुसार हमारे देश में मार्च 2006 तक बायोगैस परियोजना के अंतर्गत 38.34 लाख बायोगैस संयंत्र स्थापित किये जा चुके हैं। बायोगैस के तकनीकी विकास में चीन अग्रणी रहा है। वहां के संयंत्र सस्ते और अपेक्षाकृत सरल होते हैं और स्थानीय सामग्री से चलते हैं।

नेपाल में बायोगैस उत्पादन कार्यक्रम को "**एशडेन एवार्ड फॉर सस्टेनबेल एनर्जी**" दिया गया है। यहाँ पर कुल 75 किलो में से 60 में यह कार्यक्रम चलाया जा रहा है जिससे 1,40,000 घरों में ईंधन के रूप में बायोगैस प्रयुक्त हो रही है। इससे न केवल वृक्षों की कटान रुकी है वरन्

600,000 टन ग्रीन हाउस गैस भी पर्यावरण में जाने से बच गई हैं। इसके साथ ही रोजगार के नये अवसर भी अस्तित्व में आए हैं। डच ने इस कार्यक्रम में मुख्य भूमिका निभाई है और अब वह यह कार्यक्रम बंगलादेश, वियतनाम, कम्बोडिया तथा अफ्रीकी देशों में भी चलाना चाहते हैं।

बायोगैस संयंत्र :

बायोगैस संयंत्र चलाने के लिए कम से कम 200 वर्ग फीट खुला स्थान होना चाहिए तथा स्वयं के जानवर हों जिससे गोबर नियमित उपलब्ध होता रहे। एक घनमीटर बायोगैस संयंत्र के लिए प्रतिदिन 25 किग्रा. गोबर की आवश्यकता होती है। गोबर व पानी को समान मात्रा में मिलाकर जब संयंत्र में हवा की अनुपस्थिति में सड़ाया जाता है तब गैस के रूप में ''बायोगैस'' एवं अपशिष्ट के रूप में खाद मिलती है। बायोगैस संयंत्र में गोबर की खाद बनने में 35-40 दिन का समय लगता है। इससे वर्ष में लगभग 6387 किग्रा. खाद की प्राप्ति होती है तथा गैस के रूप में ईंधन अलग से प्राप्त होता है। बायोगैस संयंत्र से जो गोबर का घोल सड़कर बाहर निकलता है उसे बायोगैस की खाद कहते हैं। बायोगैस संयंत्र में डाले गए गोबर का लगभग 20 प्रतिशत गैस में परिवर्तित हो जाता है और लगभग 80 प्रतिशत खाद में बदल जाता है (तालिका-2)। बायोखाद की मात्रा बढ़ाने के लिए भूसा, पत्ते, धान एवं अन्य कृषि अवशेषों को उपयोग में लाया जाता है (चित्र-4)।

बायोगैस तकनीक :

बायोगैस संयंत्र के अन्दर सूक्ष्मजीवों द्वारा एन्जाइम उत्पन्न करके रासायनिक प्रतिक्रिया द्वारा कार्बनिक पदार्थों को विघटित किया जाता है। वैज्ञानिकों ने 17 प्रकार के किण्वन करने वाले जीवाणु डाइजेस्टर में पाये हैं। गोबर से चलने वाले संयंत्रों में प्रोटियोलिटिक तथा एमाइलोटिक जीवाणुओं की संख्या अधिक पायी गई है। लगभग 70 प्रतिशत मीथेन का उत्पादन एसीटेट के विघटित होने से होता है। बायोगैस संयंत्र में सेल्यूलोलिटिक जीवाणु एसिटिविब्रियों स्प. तथा मीथेन पैदा करने वाले मिथेनोसरसिना स्पी., मिथेनोबैक्टीरियम स्पी., मिथेनोबैक्टेयिम स्प., मिथेनोबैक्टीरियम रयूमिनेटम, मी.बे. फारमीसीकम पाए जाते हैं। मिथेनोसरसिना बरकेरी मुख्य रूप से एसीटेट को विघटित करके मीथेन बनाते हैं। किण्वन करने वाले जीवाणु में रयूमिनोकॉकस स्पी. संयंत्र के रयूमेन में पाई जाती है। जबकि बायोगैस डाइजेस्टर में बैक्टीरियोड्स तथा क्लॉस्ट्रिडियम स्पी. पायी जाती है। मुख्य किण्वन करने वाले जीवाणु - रयूमिनोकोफस फ्लेयरफेसिएंस, यूबैक्टीरियम सेल्युलोसोलवेंस, क्लोस्ट्रिडियम सेल्युलोसोलवेंस, क्लो. सेल्युलोवोरेंस ग्लो. थर्मोसेलम, बैक्टीरियोड्स, सेल्युलोसोलरेंस, एसीटिविब्रो सेल्युलोलाईटिकस आदि हैं।

रासायनिक प्रक्रिया :

किण्वन करने वाले जीवाणुओं द्वारा कार्बनिक पदार्थों का विघटन करके उन्हें घुलनशील पदार्थ में बदल दिया जाता है। यह सर्वप्रथम कार्बनिक पदार्थों को छोटी कड़ी के फैटी एसिड, हाइड्रोजन एवं कार्बन डाइऑक्साइड में बदल देते हैं। हाइड्रोजन उत्पन्न करने वाले एसिटोजेनिक जीवाणु उन फैटीएसिडस को जो एसीटेट से बड़े होते हैं विघटित करके एसीटेट उत्पन्न करते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा मुख्य रूप से हाइड्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड एवं एसीटेट बनते हैं। इस हाइड्रोजन व कार्बन डाइऑक्साइड को हाइड्रोजन ऑक्सीडाइज्ड करने वाले एसिटोजेनिक जीवाणु एसीटेट में या कार्बन डाइऑक्साइड रिड्यूस्ड करने वाले जीवाणु मीथेन में, हाइड्रोजन ऑक्सीकृत करने वाले मीथेनोजीन जीवाणु

तालिका - 2 : गोबर को विभिन्न प्रकार से सड़ाकर बनायी जाने वाली खाद की तुलना

खाद का प्रकार	खाद बनाने में लगने वाला समय (दिन)	खाद से संरक्षित पोषक तत्त्वों की मात्रा (प्रतिशत)	उपलब्ध खाद की मात्रा (प्रतिशत)
खुले वातावरण में सड़ाकर	120–150	50–55	35–40
बन्द वातावरण में सड़ाकर	75–90	75–80	55–60
बायो गैस संयंत्र में सड़ाकर	40–55	90–93	75–80

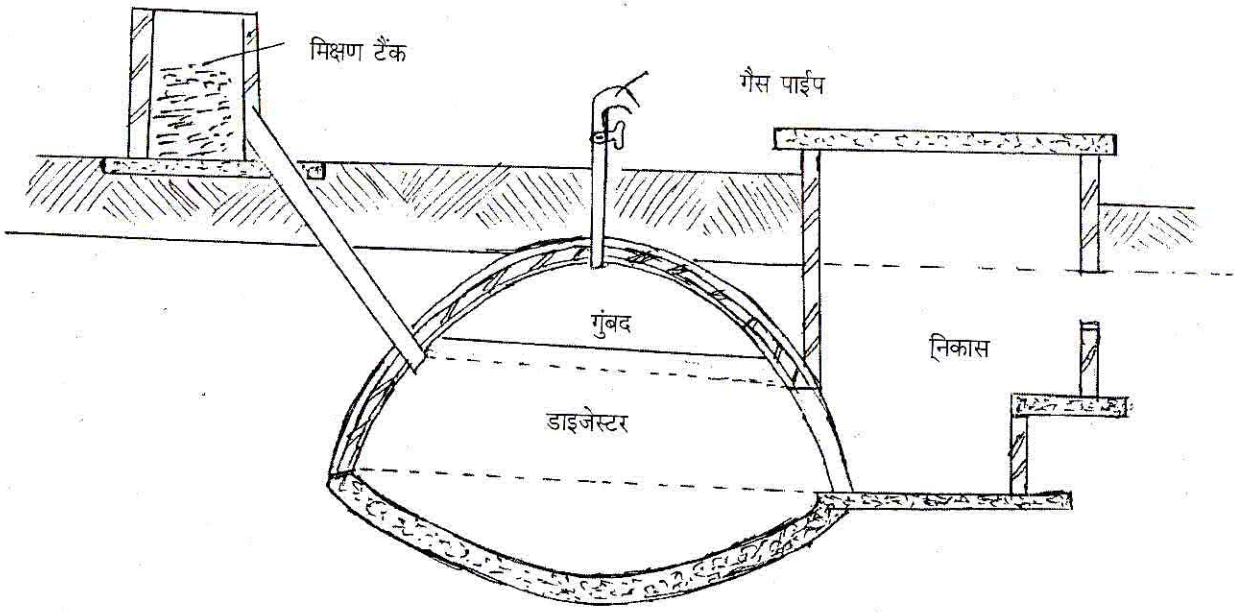

चित्र - 4 : बायो गैस का दीनबंधु मॉडल

मीथेन में बदल देते हैं। एसीटेट भी एसिटोक्लास्टिक मिथेनोजेन्स के द्वारा मीथेन में बदल जाता है (चित्र-5)।

बायोखाद : बायोखाद में पौधों के लिए आवश्यक तीन प्रमुख पोषक तत्त्व नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटेशियम (पोटाश) देशी खाद की तुलना में अधिक होते हैं। इसमें फसलों के लिए आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्त्व जैसे–ताँबा (28 पी.पी.एम.), लोहा (3550 पी.पी.एम.), जस्ता (144 पी.पी.एम.), कैल्शियम, बोरॉन आदि भी उचित मात्रा में पाये जाते हैं। ताजी बायोगैस स्लरी में 20 प्रतिशत नाइट्रोजन अमोनिकल यौगिक के रूप में होती है, जिसे पौधे मिट्टी से आसानी से अवशोषित कर लेते हैं। जबकि देशी तरीके से बनायी गयी गोबर की खाद नाइट्रेट तथा नाइट्राइट के रूप में होती है जिसे पौधे कुछ जटिल प्रक्रियाओं के पश्चात् ही अवशोषित कर पाते हैं (तालिका -2 एवं -3)।

गोबर के अन्य उपयोग :

गोबर की उपयोगिता एवं प्रचुर मात्रा में उपलब्धता को देखते हुए भारत ही नहीं वरन् संपूर्ण विश्व में इसको ऊर्जा के रूप में प्रयोग करने के लिए अनुसंधान हो रहे हैं। गोबर को जीवाष्म ईंधन के विकल्प के रूप में देखा जा रहा है। इस पर हुए कुछ नवीनतम शोध निम्न हैं :-

गोबर से विद्युत उत्पादन :

1. जापान में हुई नवीन शोधों में गोबर एवं गौमूत्र से हाइड्रोजन निकालकर ईंधन सेल में प्रयोग करने की तकनीकी विकसित की गयी है। ओबीहीरों कृषि एवं पशुपालन विश्वविद्यालय जापान के प्रोफेसर ज्यूनिची टकाहाशी तथा सुमिटोमो कारपोरेशन रिसर्च ग्रुप, जापान ने मिलकर यह तकनीक विकसित की है। इस विधि में गोबर एवं गौमूत्र को ऑक्सीजन की

तालिका - 3 : बायो खाद एवं देशी खाद में बाए जाने वाले पोषक तत्त्वों की तुलना

पोषक तत्त्व	बायोखाद		
	ताजा स्लरी में	सूखी स्लरी में	देशी खाद
नाइट्रोजन	1.5–2.0	1.3–1.7	0.5–1.0
फॉस्फरस	0.8–1.0	0.65–0.85	0.3–0.5
पोटाश	0.8–1.0	0.65–0.85	0.3–0.5

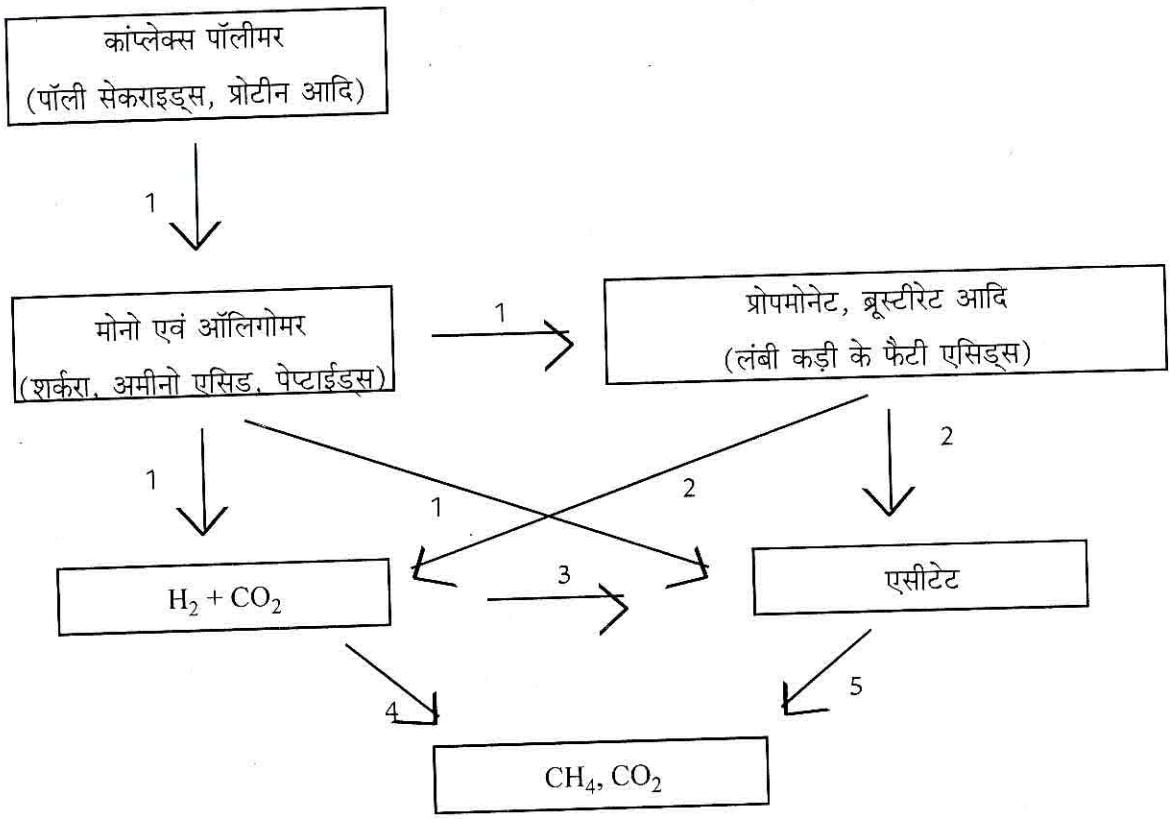

चित्र - 5 : बायोगैस संयंत्र में होने वाली रासायनिक क्रियाएं

अनुपस्थिति में किण्वित किया जाता है जिससे अमोनिया बनती है। इसको विद्युत प्रवाहित करके हाइड्रोजन तथा नाइट्रोजन में बदला जाता है। हाइड्रोजन गैस को ईंधन सेल में भेजा जाता है जहां ऑक्सीजन के साथ क्रिया करके विद्युत उत्पन्न होती है। उन्हें 2×1 मी. का उपकरण बनाकर 20 किलो गोबर व मूत्र से 0.2 वाट विद्युत उत्पन्न की।

2. यामहा, (जापान) ने गोबर के द्वारा गोल्फ कार्ट को चलाने का प्रयोग किया। इसके लिए मीथेन को एक विशेष टैंक में भरा गया जिसमें क्रियाशील (एक्टीवेटेड) कार्बन पहले से उपस्थित था। यह मीथेन को कम दाब पर सोख लेता है। जापान में कटोरी कस्बा "बायोमास कस्बा" कहलाता है। यहां पूरे कस्बे में गोबर गैस रस्ते जैव ईंधन के रूप में प्रयुक्त हो रहा है।

3. कनाड़ा के ऑन्टेरियो क्षेत्र में स्टॉटन डेरी फार्म में 750 गायों से 800 घरों में बिजली देने के प्रयास किए जा रहे हैं। यहां वैज्ञानिकों ने गाय के पेट से तरल पदार्थ निकालकर उससे विद्युत उत्पन्न की। गाय के पेट में जीवाणु (बैक्टीरिया) होते हैं, जो सेल्यूलोज को पचाते हैं। इस प्रक्रिया में इलेक्ट्रॉन निकलते हैं जो विद्युत पैदा करते हैं। आधा लीटर तरल पदार्थ से 600 एम.वी. विद्युत पैदा होती है।

4. चीन में जर्मनी की तकनीकी एवं मशीनों की सहायता से दुनिया का सबसे बड़ा गोबर प्लांट मंगोलिया क्षेत्र में लगाया गया है, जिसमें "ग्रीनहाउस गैस" मीथेन का प्रयोग करके बिजली बनाई जा रही है। यहां 10,000 गायों से 12000 क्यूबिक मीटर मीथेन पैदा की जाती है। जिससे 30,000 किलो वाट घंटा विद्युत प्रतिदिन पैदा होती है और 200,000 टन खाद प्रति वर्ष उत्पन्न होती है।

5. इण्डोनिया के प्रबंधन छात्रों ने गोबर से ईंटो का निर्माण करके 25,000 डॉलर का प्रथम पुरस्कार दसवीं वार्षिक "ग्लोबल सोशल वेंचर प्रतियोगिता" बर्कले, केलेफोर्निया में जीता। यह प्रतियोगिता प्रबंधन छात्रों द्वारा आयोजित की गई थी। गोबर से निर्मित ईंटें

सस्ती, मजबूत होने के साथ पर्यावरण सुरक्षित भी है और गांव में गोबर के निस्तारण की समस्या का समाधान करने के साथ ही साथ इन्डोनेशिया में सस्ते गृह निर्माण में भी सहायक है।

6. उड़ीसा राज्य में जर्मन बैंक (के.डब्ल्यू बेनकेन ग्रुपी) तथा सरकारी एजेन्सी (उड़ीसा रिन्यूएबल डेवलपमेन्ट एजेन्सी) के बीच में संधि हुई है कि 11,000 बायोगैस संयंत्र लगाये जायेंगे। उनसे जो कार्बन डाइऑक्साइड का बचाव होगा उसके कार्बन क्रेडिट दिये जायेंगे।

7. बुलंदशहर, उ.प्र. के गांव गंगागढ़ में दो छात्रों ने गोबर बैटरी बनाकर उसका प्रदर्शन भारतीय प्रबंध संस्थान, अहमदाबाद में किया। इस बैटरी से बल्ब जलाने, मोबाइल चार्ज करने तथा रेडियो चलाने का प्रदर्शन सफलतापूर्वक किया गया। उनकी बनाई बैटरी का प्रयोग अब करीब 250 परिवार कर रहे हैं, जिससे उनकी विद्युत की समस्या दूर हो रही हैं। इस बैटरी को बनाने के लिए उन्होंने गोबर को प्लास्टिक के डिब्बे में भरा उसमें दो डिस्चार्जड बैटरी रख दी। उसमें नमक का घोल डाला। बैटरी को तार से जोड़ा। इसी प्रकार कई बैटरी कतार में आपस में जोड़ दी जिससे विद्युत प्रवाहित हो सके। एक यूनिट से 1.5 वोल्ट विद्युत उत्पादित हो रही हैं।

गौमूत्र :

गौमूत्र को अत्यन्त पवित्र माना जाता है। आदिकाल से ही इसका प्रयोग औषधियों के निर्माण एवं औषधोपयोगी विषाक्त खनिजों, तत्त्वों एवं वनस्पतियों के शोधन में किया जाता है। गौमूत्र के गुणों एवं उपयोगों का वर्णन आयुर्वेद शास्त्रों में भी मिलता है। ताजा मूत्र गंधहीन, स्वाद में खारा, कड़वा, तीखा, नमकीन एवं मिठास (5 रस) लिए होता है। इसका pH 6.0-8.5 के मध्य होता है। शरीर से बाहर निकलने के 10-15 मिनट के पश्चात मूत्र में उपस्थित यूरिक एसिड रासायनिक प्रतिक्रिया द्वारा अमोनिया तत्पश्चात् यूरिया में परिवर्तित हो जाता है। तब यह मूत्र गंधयुक्त हो जाता है। इसमें निहित विभिन्न उपयोगी तत्त्व हमारे स्वास्थ्य एवं कृषिकार्य के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग प्राचीन काल में प्राकृतिक रंगों का निष्कर्षण तथा कपड़ों की रंगाई में किया जाता था।

गौमूत्र की रासायनिक संरचना :

एक लीटर गौमूत्र को गर्म करने पर 50 ग्राम ठोस तत्त्व प्राप्त होता है। गौमूत्र में सोडियम 120-250 मिग्रा., क्लोराइड 115-24 ग्रा., पोटेशियम 20-100 मिग्रा., कैलिशयम 95-255 मिग्रा. मेग्नीशियम 20-290 मिग्रा., फॉस्फोरस अकार्बनिक 1.0-1.2 ग्रा. होता है। इसके अतिरिक्त नाइट्रोजन युक्त तत्त्व अमोनिया 25.27 मिग्रा., क्रीमटीन 50-105 मिग्रा., क्रीमटिनीट 0.7-2.0 ग्रा., प्रोटीन 15-150 मिग्रा., यूरिया नाइट्रोजन 5-20 ग्रा., यूरिक एसिड 0.3-0.8 ग्रा. होते हैं। गौमूत्र में पाये जाने वाले तत्त्वों की मात्रा गौ के पोषण के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं।

गौमूत्र औषधि के रूप में :

सर्वेष्वपि च मूलेष गो-मूत्र गूणतोधिकम्
अतो विशेषात्कथितं मूत्र गोमूत्र मुच्यतें।
प्लीहादर श्वास कास शोथ वर्चो कफापहय्
शूल गुल्म रूजानाह कामला पांडुरोग हत्त॥

गौमूत्र का नियमित सेवन मनुष्य को निरोगी रखता है एवं उपरोक्त रोगों को दूर करता है। आयुर्वेद के अनुसार मनुष्य के शरीर में रोग उत्पन्न करने वाले तीन कारक हैं- कफ, वायु, पित्त। इन तीनों के संतुलित रहने से शरीर निरोगी रहता है और जब खानपान या प्राकृतिक कारणों से इन तीनों की व्यवस्था प्रभावित होती हैं मनुष्य का शरीर रोगी हो जाता है। गौमूत्र इन तीनों की संतुलित करता है परन्तु पित्त को कुछ बढ़ा देता है। पित्त रोगियों को 1 भाग मूत्र में 8 भाग पानी मिलाकर प्रयोग करना चाहिए। यह जठराग्नि को प्रज्ज्वलित रखता है जिससे रोग पास नहीं आ पाते हैं। यह कीटाणुनाशी होता है, शरीर में बड़ी आंत की गतिविधियों को नियंत्रित करता है, काया को बुढ़ापे से बचाता है, यौवन को क्षीण नहीं होने देता है। यह शरीर से निकलने वाले खनिज पदार्थों की कमी को भी पूरा करता है। मस्तिष्क की कार्य क्षमता को बढ़ाता है, शरीर से जहरीले पदार्थों को बाहर निकालता है। निम्न कहावत गौ की महत्ता को बताती है।

जा घर तुलसी और गाय
वा घर वैद्य कभी न आये

गौमूत्र पुराना होने पर खराब नहीं होता है वरन् अधिक गुणकारी हो जाता है। शास्त्रों के अनुसार गौमूत्र में गंगा का वास है इसलिए यह गंगाजल के समान पवित्र व कभी नष्ट नहीं होने वाला है। समस्त प्राणियों में केवल गाय में ही सूर्य केतु नाड़ी होती है। जो उसकी रीढ़ की हड्डी से जाती है। इस

नाड़ी द्वारा गाय सूर्य से सीधे ऊर्जा लेकर स्वर्ण लवण रक्त में बनाती है। यह लवण गाय के रक्त तथा शरीर के अन्य दृव्यों में विद्यमान रहते हैं। बंगला कहावत है जो गौमूत्र नियमित पीता है उसका शरीर कुन्दन सा चमकता है। गौमूत्र के समस्त गुण तथा औषधि के रूप में उपयोग चरक संहिता, श्रुत संहिता, वृद्धावागभट्ट, अमृत सागर आदि में लिखे हुये हैं। श्रुत संहिता के 45 वे सूत्रस्थान के 217, 220 एवं 221 श्लोक में गौमूत्र का वर्णन किया गया है। गौमूत्र को पीतल या तांबे के बर्तन में एकत्र नहीं करना चाहिए। इसके लिए मिट्टी, कांच, चीनी मिट्टी, स्टील, प्लास्टिक आदि के बर्तन का प्रयोग करना चाहिए। भारतीय नस्ल की गाय का मूत्र ही उपयोग में लाना चाहिए।

गौमूत्र द्वारा ठीक होने वाले रोग :

मनुष्य के शरीर में पाए जाने वाले लगभग सभी रोग इसके सेवन में ठीक हो जाते हैं। गौमूत्र सेवन करने से अपच, अतिसार, आंत्रवृद्धि, अम्लपित्त, अपेन्डिसाइटिस, ट्यूमर, मधुमेह, अनीमिया, मीसिल्स, मुंह के रोग, गैस, एक्जीमा, पेप्टिक अल्सर, कार्बांकल, हड्डी टूटना, मोटापा, उच्च रक्तचाप, खून की अशुद्धि, सिफलिस, अस्थमा, कैंसर, लू लगना, बवासीर, कब्ज, त्वचागत रोग, यकृत शोध, विषमयता, तिल्ली रोग आदि में लाभ मिलता है (तालिका-4)। इसका सेवन करने पर मांस व शराब का सेवन निषेध है। गौमूत्र की बनी हुई तीन दवाएं अधिक प्रचलित हैं– गौमूत्रासव, गौमूत्र अर्क तथा गौमूत्र गनवटी। महाभारत काल में नकुल (पाण्डव) गौमूत्र उपचार पद्धति के ज्ञाता कुशल चिकित्सक भी थे।

मध्य प्रदेश के इन्दौर जिले में "गौमूत्र द्वारा रोगों का उपचार" करने के लिए संस्थान प्रारंभ किया गया है। गुजरात कें जामनगर में "क्लिनीकल रिसर्च यूनिट फार पंचगव्य आयुर्वेद" की स्थापना की गई है।

पंचगव्य :

पंचगव्य गाय के दूध, दही, मक्खन, गोबर व गौमूत्र को मिलाकर बनाया जाता है। यह शरीर की सभी रोगों से रक्षा करने में सक्षम होता है। पंचगव्य घृत रक्त अल्पता, पागलपन, पीलिया, बवासीर, पेटदर्द, याददाश्त की अल्पता, मस्तिष्क की कमजोरी एवं जड़ता को दूर करता है। इसके अतिरिक्त पंचगव्य पौध सुरक्षा में भी प्राचीन काल से ही प्रयोग होता रहा है। जैसे बीज को दूध में भिगोकर बोना, पेड़ों की शल्य क्रिया करके घी का लेप लगाना, कीटों को नष्ट करने के लिए मट्ठे का प्रयोग करना आदि। 40 दिन पुराना मट्ठा जो खूब खट्टा हो गया हो उसका 5 प्रतिशत घोल बनाकर छिड़कने से हैलियोशिंस इल्ली (हरी इल्ली) जो खूब मोटी हो जाती है और जिस पर किसी कीटनाशी का प्रभाव नहीं पड़ता है, नियंत्रित किया जा सकता है।

गौमूत्र और गोबर के प्रयोग से पशुओं के शरीर में होने वाली बीमारियों को भी उपचारित किया जाता है। पशुओं की बीमारियां जैसे – अतिसार, एन्थ्रेक्स, दस्त, खुर एवं मुंह पका रोग, रिडंर पेस्ट, बुखार, अपच आदि में 250 मिली. गौमूत्र को 50 ग्रा. गुड़ के साथ सुबह व सांयकाल खिलाना लाभकारी होता है। पशुओं के शरीर पर घाव हो जाने पर गोबर की राख लगाने से आराम होता है। उत्तराखण्ड स्थित पंतनगर विश्वविद्यालय में हुए शोध से ज्ञात हुआ है कि मधुमक्खी पालन में भी गौमूत्र लाभकारी है। कीटनाशी व जीवाणुनाशी होने के कारण इसका छिड़काव मधुमक्खी की कॉलोनियों पर करने से इसके अंडे अधिक स्वस्थ रहते हैं तथा उनसे लार्वा भी रासायनिक औषधियों की तुलना में अधिक स्वस्थ निकलते हैं।

गौमूत्र पेय : गौमूत्र की बढ़ती ख्याति और स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगिता को देखते हुए इसका बना पेय पदार्थ भी निकट भविष्य में बाजार में आने की आशा है जिसको गौजल या काऊ वाटर नाम दिया गया है।

गौमूत्र पेटेन्ट : गौमूत्र के औषधीय गुणों को अब अमरीका ने भी मान्यता दे दी है। अब तक गौमूत्र के दो पेटेन्ट प्राप्त किये जा चुके हैं। प्रथम यू.एस. पेटेन्ट 6410059, 25 जून 2002 को केंद्रीय सरकार तथा वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद के संयुक्त प्रयासों से "फार्मास्युटिकल कम्पोजिशन कन्टेनिंग काऊ यूरीन डिस्टिलेट एंड एन एन्टीबायोटीक" शोध पर तथा द्वितीय 25 मई 2005 को यू.एस. 6896907 प्राप्त हुआ।

गौमूत्र का कृषि में प्रयोग : इसमें नाइट्रोजन युक्त यूरिया प्रचुर मात्रा में है अतः इसका उपयोग प्राकृतिक उर्वरक के रूप में किया जा सकता है। गोबर के साथ गौमूत्र कंपोस्ट बनाने में प्रयुक्त होता रहता है। गौमूत्र कीटनाशी, कीटाणुनाशी, फफूंदनाशी होने के कारण फसल सुरक्षा में भी प्रयुक्त हो रहा है।

गौमूत्र का छिड़काव : दुधारू गाय के गौमूत्र का 2-5 प्रतिशत घोल प्रति सप्ताह फसल पर छिड़कने से फसलों का पीलापन दूर होता है और कीट नहीं लगते हैं। टमाटर, बैंगन, मिर्च गोभी, कद्दू कुल की सब्जियां पर इसका छिड़काव विशेष प्रभावी पाया गया है।

तालिका - 4 : गौमूत्र की रासायनिक संरचना एवं उसके अवयवों का मनुष्य पर प्रभाव

रासायनिक खाद	रासायनिक तत्त्वों का शरीर पर प्रभाव
नाट्रोजन	रक्त से विषाक्त पदार्थ बाहर निकालना, वृक्क की क्रियाशीलता बढ़ाना, मूत्र वाहिनी का प्राकृतिक उत्प्रेरक
सल्फर	रक्त शुद्ध करना, बड़ी आंत का सही संचालन करना
अमोनिया	वात, कफ, पित्त को स्थिर रखना, रक्त बनाना
कॉपर	अनचाही वसा के बनने पर रोक लगाना
आयरन	लाल रक्त कोशिका का निर्माण
यूरिया	मूत्र बनने की प्रक्रिया पर प्रभाव डालना, कीटाणुनाशी
यूरिक एसिड	विषाक्त पदार्थों को नष्ट करना, हृदय की सूजन रोकना
फॉस्फेटस	मूत्र वाहिनी से पथरी निकालना
सोडियम	रक्त शुद्ध करना
पोटेशियम	भूख बढ़ाना, वंशानुगत गठिया का उपचार करना
मैन्गानीज	जीवाणुनाशी
कार्बोलिक अम्ल	जीवाणुनाशी
केल्शियम	रक्त शुद्ध करना, हड्डियों को मजबूत करना
लवण	जीवाणुनाशी
विटामिन ए, बी,	हड्डियों को मजबूत बनाना, शरीर को स्वस्थ बनाना
सी. डी. ई.	संतानोत्पत्ति की क्षमता बढ़ाना
अन्य खनिज	रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाना
लेम्टोस	हृदय को शक्ति देना, प्यास बुझाना एवं आत्मबल बढ़ाना
एन्जाइम्स	रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाना
पानी	शरीर के ताप को नियंत्रित करना, जीवन के लिए आवश्यक
हिपयूरिक अम्ल	विषैले पदार्थों को मूत्र द्वारा निकालना
क्रिएटिनीन	जीवाणुनाशी
औरम हाइड्रोक्साइड (AuOH)	कीटाणुनाशी, अत्यधिक एन्टीबायोटिक एवं विषैले पदार्थ नष्ट करने वाला
एन्ट्रीनिओ प्लास्ट्स H-11 बीटा-आयोडोल-एसिटिक एसिड, डायरेक्टिन, 3- मिथाइल ग्लोक्सल	कैंसर प्रतिरोधी तत्त्व, यह स्वस्थ कोशिकाओं के कैंसर पैदा करने वाली कोशिकाओं के निर्माण को रोकता है तथा उनको पुनः उनके स्वरूप में ले आता है।

मटका खाद : यह उर्वरक ही नहीं वरन् कीटनाशी का भी कार्य करती है। इसको बनाने के लिए गौमूत्र 15 ली., गोबर 10 किग्रा., गुड़ 500 ग्रा., नीम, सरसों या अलसी की खली 2 किग्रा., नीम की पत्ती 5 किग्रा., बेसरमा की पत्ती 5 किग्रा., अंडे का छिलका (ऐच्छिक) 250 ग्रा., पानी 5 ली., एक मटके में डालकर हाथ से भलीभांति मिलाकर घोल बनाते हैं। मटके को ढ़क कर छाया में 21 दिन के लिए रख देते हैं। निश्चित अवधि के पश्चात् इसमें से तीक्ष्ण गंध आने लगती है। इसको छानकर 1 लीटर खाद में 5 लीटर पानी मिलाकर फसल पर छिड़काव 10 दिन के अन्तराल पर करने से लाभ मिलता है। मटका खाद के अतिरिक्त गौमूत्र से अन्य उत्पाद भी बनाए जाते हैं जिनका प्रयोग करने से नीलगाय भी खेत में भ्रमण नहीं करती है। इसके लिए गौमूत्र 21 ली., नीम की पत्ती 5 किग्रा., मदार की पत्ती 2 किग्रा., धतूरा की पत्ती या फल 2 किग्रा., लहसुन 1 किग्रा., मिर्च का पेड़, पत्ती, फल 203 किग्रा., तम्बाकू 250 ग्रा. को मिलाकर प्लास्टिक के बर्तन में ढ़क कर धूप में 40 दिन के लिए रखते हैं, उसके बाद छानकर 1 ली. रसायन में 25 ली. पानी मिलाकर 15 दिन के अंतर पर गौमूत्र से बदल कर छिड़काव करने से फसल कीटों के अतिरिक्त पशुओं से भी सुरक्षित रहती है।

नीम पत्ती का घोल :

कड़वे नीम की पत्ती 15 किग्रा., गौमूत्र 5 ली., गोबर 5 किग्रा., पानी 100 ली. लेकर एक प्लास्टिक के बर्तन में एक सप्ताह के लिए रखते हैं तथा प्रतिदिन 2-3 बार चलाते हैं। जब पत्ती का हरापन पानी में आ जाए तब इसको 7-10 दिन के अंतराल पर छिड़काव करने से फसल में कीट नहीं लगते हैं।

उपरोक्त रसायनों का छिड़काव फसल को कीट से बचाने के साथ ही साथ पर्यावरण को भी स्वच्छ रखता है। यह रासायनिक कीटनाशियों पर होने वाले व्यय को भी घटाता है।

□□□

रिहाई

ये
जितने पेड़-पौधे
हैं तुम्हारी कैद में
जिन्हें तुम रोज़
नवजात शिशुओं की तरह अपने
चम्मचों में डालकर
पानी पिलाते हो
खिलाते हो
परवरिश करते हो इतने प्यार से
तेज़ सर्दी और गर्मी से
हिफ़ाज़त करते हो जिनकी
आँधियों से और हवाओं से
बचाते हो जिन्हें
बड़े एहतियात से
कभी अंदर कभी बाहर सजाते हो
उन्हें आज़ाद कर दो
कि पांव भर मिट्टी में
छिछले गमले की
नग्न हैं जड़ें जिनकी
उन्हें दे दो
ढाँपने को नग्नता अपनी
खुला आकाश आँगन का
फैलने दो धरती में
जड़ें उनकी पाताल तलक
भीगने दो बारिश में
काँपने दो सर्द मौसम की
बर्फ़ीली हवाओं में
और तपने दो
तेज़ गर्मी में उन्हें
उनकी पत्तियों को झूमने दो
आँधियों में तेज़ उनको नृत्य करने दो
फिर देखना इक दिन
तुम्हें ही ये दुआ देंगे
बिठाएँगे सर-आँखों पर तुम्हें अपनी
फूल, फल और छाँव देंगे
तेज़ हवाओं से आँधियों से
भिड़ जाएंगे
तुम्हें बचाने को
बारिश लाएँगे
और तेज़ बारिश में
धरती को कटने से यही बचाएँगे।
ये बूढ़े बोनसाई पौधे
दुआएँ देंगे
कैद से गमलों की
आज़ाद इन्हें कर दो
और दुआएँ जीने की इनसे लो।

- सीताराम गुप्ता
ए.डी.-106-सी, पीतमपुरा,
दिल्ली-110 034

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2008) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

आज तक के चंद्र-मिशन और उनके कुछ उद्देश्य

डॉ. देवकी नंदन

2205, न्यू जयभारत सोसायटी, प्लॉट-5, सेक्टर-4, द्वारका, नयी दिल्ली - 110 075

आदिकाल से ही चाँद मनुष्य की कोतुहलता का केंद्र रहा है। विभिन्न समय पर, कई खगोलविदों ने अपने-अपने ढंग से अनुसंधान किया। प्रस्तुत लेख में, गत शतक के उत्तरार्द्ध में विश्व के विभिन्न देशों द्वारा भेजे गये चंद्र अभियानों की रोचक जानकारी दी गयी है।

रूस में 12 अप्रैल 1961 की उस सुबह मौसम खुशगवार था। यूरी गागारिन अपने वोस्तोक-1 यान में कुछ ही पलों बाद अंतरिक्ष की अनजान अनोखी सैर को निकलने वाले थे। अचानक यूरी सहयोगियों की ओर मुड़े और भावुक हो कहने लगे - "हाँ, मेरी ज़िंदगी की सारी अहमियत अगले ऐतिहासिक क्षणों में सिमट जायेगी। मैं ख़ुदा हूँ... असीम व्योम का पहला मनुष्य बन इसकी खोज-ख़बर लेना, निष्ठुर प्रकृति से दो-दो हाथ करना... क्या कोई इससे बड़ा सपना देख सकता है, नहीं न?" इतना बोल फिर 9.07 बजे पृथ्वी के गुरूत्व को ठेंगा दिखाते हुए वे उड़ चले। कुछ ही समय बाद 5 मील प्रति सेकंड की गति से वे पृथ्वी का चक्कर लगाते अंतरिक्ष की अद्‌भुत भारहीनता का मज़ा ले रहे थे। पृथ्वी के गिर्द 108 मिनट चक्कर लगा फिर वापस लौटे तो पृथ्वी से 13,000 फुट ऊपर ही यान छोड़ पैराशूट से हरे भरे खेतों में आ उतरे। हक्के-बक्के एक किसान ने उनसे पूछा - "क्या आप स्वर्ग से अवतरित हुए हैं?"

इस समय अमरीका में मगर रात थी। वहाँ किसी को पता न था कि रूसी यान अमरीकी आकाश को कई दफ़ा चीर चुका है। पर अख़बारों के ऑफिसों से टेलीफोन की घंटियां जो बजना शुरू हुई तो पूरा अमरीका जाग गया। कुछ ही समय पूर्व निर्वाचित नए राष्ट्रपति जॉन कैनेडी को जगाया गया तो उन्होंने उपराष्ट्रपति एल.बी.जॉन्सन, कुछ प्रशासनिक शीर्ष अधिकारियों तथा अपने विज्ञान सलाहकार को फ़ौरन एक आपातकालीन बैठक के लिए बुलावा भेजा...

"मूनशॉट" पुस्तक के लेखकद्वय ऐलेन शेपर्ड एवं डेक स्लेटॉन के अनुसार क्यूबा में चल रहे घटनाक्रम से परेशान युवा राष्ट्रपति काफी आक्रामक मूड में थे। लेखकद्वय के मुताबिक इस बैठक में विचारों का आदान-प्रदान कुछ-कुछ इस अंदाज में हुआः

कैनेडी : दोस्तों, सन 1957 से रूसी हमें लगातार झटके दे रहे हैं, है न? वो लोग हर बार प्रथम आ रहे हैं और हम? उनका पीछा तक नहीं कर पा रहे हैं। अब आज एक जीता जागता रूसी पृथ्वी की परिक्रमा कर आया है। इस क्षेत्र में अब हमारे लिए कुछ बचा है... सिवाय उन्हें हर बार बधाई देने के?

जोरोम विज़नर (राष्ट्रपति के सलाहकार) : मिस्टर प्रेसीडेंट, नासा ने हमें कहीं का नहीं छोड़ा। बेहतर है कि हम अंतरिक्ष अब रूसियों के हवाले कर ही दें और अपना ध्यान ऐरोनॉटिक्स, मिलिटरी सैटेलाइट्स और संचार के क्षेत्र पर लगाएँ और उनसे आगे रहें... इंडीड दे आर द विनर्स सर!

कैनेडी : जॉन्सन, ये तो सरेंडर करने जैसा होगा न?

जॉन्सन : बिल्कुल मिस्टर प्रेसीडेंट! कुछ ही महीने पहले आपने अमरीकी जनता से वादा किया है कि अंतरिक्ष के क्षेत्र में भी अमरीका को आप काफी आगे ले जाएंगे!

कैनेडी : हाँ हाँ, मगर कैसे? क्या हम अंतरिक्ष में कोई बड़ी प्रयोगशाला स्थापित करें? या कि चंद्रमा पर...

विज़नर : मिस्टर प्रेसीडेंट, उनके यानों ने चंद्रमा का रास्ता ढूँढ भी लिया है... लगता तो यही है...

कैनेडी : मगर रूसी अभी चंद्रमा पर उतरे तो नहीं न? अगर हम पहले...? जॉन्सन, आप नासा से खुल कर बात लीजिए, पता लगाइए कि क्या हम यह कर दिखा सकते हैं?

जॉन्सन : जी हाँ, हमें कुछ ज़बर्दस्त कर दिखाना होगा...

कैनेडी : हाँ, जिसका असर एकदम नाटकीय हो, विजयी हो! लोग इसको याद रखें। और हाँ, पैसे की चिंता करना अब बेकार है... क्यों?

कैनेडी के इस आक्रामक अंदाज़ को नासा ने फौरन भाँप लिया। चुनांचे, 5 मई 1961 को अमरीका के पहले अंतरिक्ष यात्री ऐलन शेपर्ड को अंतरिक्ष छुआ कर, नासा ने अपोलो कार्यक्रम की दुस्साहसी रूपरेखा शीघ्र ही राष्ट्रपति के

सामने रख दी। इसे फ़ौरन स्वीकार कर 25 मई 1961 के दिन अमरीकी कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में राष्ट्रपति ने साफ़ साफ़ घोषणा कर दी कि साठ के दशक रहते अमरीकी नागरिक को चंद्रतल पर उतार दिया जाएगा। राष्ट्रपति ने यह भी स्पष्ट किया कि पैसे तो खूब लगेंगे मगर अब सवाल सिर्फ़ आत्मसम्मान का ही नहीं, अमरीका व हर स्वतंत्रता प्रेमी देश के भविष्य का भी है। और फिर... कांग्रेस के अनुमोदन के साथ अमरीका ने चंद्रयुग की नयी शुरुआत की ऐसी दुंदुभि बजाई जिसकी गूँज सबसे पहले रूस पहुँची। रूस ने उन्नत अंतरिक्ष विज्ञान के लिए यह चुनौती किसी दुस्साहस और बचकानी ज़िद से कम न थी। पर.... इस चुनौती के बाद से रूसी अंतरिक्ष कार्यक्रम में बरसों ऐसी अफ़रातफ़री मची रही कि लगा, मानो रूस का चंद्र-अभियान पटरी से ही उतर गया। जी हाँ, यह वाकई अजब दास्ताँ है।

रूस कछुआ कैसे बन गया?

कई परेशानियों के बावजूद अमरीकी चंद्र-कार्यक्रम कुलाँचे भरने लगा। सिंगल (एकल) अंतरिक्षयात्री वाले "मर्करी" कार्यक्रम के बाद फिर द्वि (डबल) यात्री वाले दस 'जेमिनी' यानों ने पृथ्वी का परिक्रमण, स्पेस वॉक, स्पेस डॉकिंग आदि के शुरुआती व ज़रूरी काम सुरक्षा से कर दिखाए। असली चंद्र-अभियानों से पहले के ये अभ्यास, ख़ूब सफल रहे। इस बीच कई मानव-रहित यान भी चंद्रमा की ओर भेजे गए (देखिए तालिका-1)। इनमें रेंजर यानों, एक्सप्लोरर व ल्यूनर ऑर्बाइटर यानों की चंद्रान्वेषण में कुछ सफलताएं ज़रूर मिलीं। परंतु यह मानना होगा कि चंद्र-स्पर्श, चंद्र तल पर ठीक से मानव-रहित यान उतारने आदि में रूस ने पहली बाज़ी मारी। फिर भी 1966 के अंत तक मानव-रहित चंद्रमिशनों में भी अमरीकी सफलता का हक़दार रूस के मुकाबले ज्यादा रहा (देखिए तालिका -2, -3 व -4)। ऐसा क्यों हुआ?

कई विशेषज्ञ मानते हैं कि इसका मुख्य कारण है रूसी अंतरिक्ष कार्यक्रम के महानायक सर्गेई कोरीलेव का अस्वस्थ हो जाना, फिर सन् 1966 के शुरू में उनका अचानक देहावसान। जानकारों के मुताबिक इस दौरान रूस के अंदर क्या हो रहा था, किसी को ठीक से पता नहीं। पुनः मिशन को कोरोलेव का उत्तराधिकारी घोषित करने में काफ़ी विलंब हुआ, फिर मिशन के खिलाफ़ ग्लुइको तथा चेलोमाई नामक सीनियर सहयोगियों का असहयोग भी रहा। वैसे रूसियों को एक बड़ा मौका फिर मिला जब वो अमरीकियों को पीछे छोड़ सकते थे। हुआ यह था कि 27 जनवरी 1967 के दिन पहले अपोलो यान के तीनों यात्री उड़ान से पहले पृथ्वी पर ही ज़िंदा भस्म हो गए। चंद्र-मिशन के नज़रिये से अमरीका के लिए यह एक बड़ा सदमा था पर अमरीकी जल्दी संभल गए। (इसके विपरीत कोरोलेव की मौत के सदमे से उबरने के लिए रूसियों को ज़्यादा समय लगा)। इतना ही नहीं, दक्ष अमरीका ने इस घटना की ऐसी बढ़िया तहकीकात की कि अपोलो का डिज़ाइन एक मिसाल बन गया। और अब वो दिन आख़िर आ ही पहुँचा...

4 बिलियन इधर, 24 बिलियन डॉलर उधर!

20 जुलाई 1969 का दिन! अमरीका का अपोलो-11 यान नील आर्मस्ट्रॉंग, ऐडविन ऐल्ड्रिन तथा माइकेल कॉलिन्स, इन तीन यात्रियों सहित चंद्रमा की परिक्रमा कर रहा है। ह्यूस्टन कंट्रोल सेंटर के निर्देश पर अब इसका ल्यूनर मॉड्यूल 'ईगल', कमांड मोड्यूल से अलग होकर चंद्रमा पर उतरने के लिए चल पड़ा है... नील तथा ऐडविन को लेकर, जबकि माइकेल कमांड मोड्यूल को संभाले हैं। अब आगे...

ह्यूस्टन : ईगल, अब पॉवर्ड डिसेंट (ऊर्जा नियंत्रित अवतरण) शुरू कर दो।

नील : रॉजर,हां, ठीक है।

पर कुछ ही समय बाद खतरे की घंटी।

ऐडविन :ह्यूस्टन, कंप्यूटर जाम हो रहा है, शायद ट्वेल्व-ओ-टू (12-O-2) है।

ह्यूटन : दोबारा न हो तो चिंता नहीं, गो गो ! (बढ़े चलो)

चंद्र तल से फिर 3000 फुट ऊपर व तीसरी बार 2000 फुट ऊपर कंप्यूटर ने फिर इसी खतरे की घंटी दी। ढेर-ढेर आँकड़े पैदा करने में कंप्यूटर को परेशानी हो रही थी। मगर ह्यूस्टन का जवाब वही था - "गो, मेन गो!" ऐसे में नील ने नियंत्रण, खुद के हाथ में ले लिए मगर इस बीच, उतरने वाला निश्चित स्थान चार मील पीछे छूट गया। और अब मुसीबत! चारों तरफ बड़ी बड़ी चट्टानें और खड्डे, उतरे तो कहाँ? इधर अवतरण टैंक में सिर्फ एक मिनट का ईंधन बचा था। तभी नील ने एक स्थान देखा और जैसे तैसे ईगल को सुरक्षा से उतार लिया। ऐडविन ने देखा, अवतरण टैंक में सिर्फ 16 सेकंड के लिए ही ईंधन बचा था। न उतर पाते तो क्रैश... मृत्यु! पर नील की काबिलियत थी विश्वसनीय।

नील : ह्यूस्टन, यह ट्रैंक्विलिटी बेस है। ईगल हैज़ लैंडेड!

ह्यूस्टन : रॉजर, वी कॉपी यू (सुना जो आपने कहा) ! हम तो नीले पड़ गए थे, अब जान में जान आई है। धन्यवाद, धन्यवाद!

और इस प्रकार चंद्र-युग की वो दुंदुभि जो कैनेडी ने बजाई थी, उसका पहला चरण अपोलो-11 ने साकार कर दिया, साठ का दशक रहते। नासा के लिए एक ओर यह महान उपलब्धि थी, तो विश्व के करोड़ों इंसानों ने भी इस घटना का पूरा रोमांच महसूस किया और बाद में इसी रोमांच को 20वीं सदी की सबसे बड़ी और महान उपलब्धि बताया।

अपोलो-11 के बाद अपोलो-17 तक के यान अमरीकियों को चंद्रतल पर उतारने में सफल रहे। (देखिए तालिका-1) अमरीका ने चाँद की 371 किलोग्राम मिट्टी-चट्टान पृथ्वी पर इन यानों से मँगा भेजी ताकि इनमें कीमती धातुओं-तत्त्वों की जानकारी प्राप्त हो। प्राथमिक जाँच में कुछ अनमोल न पाकर अमरीका ने 1972 में अपना चंद्र-मिशन बंद कर दिया था। इसके बावजूद गणना की तो पता लगा कि चंद्र-मिशन में अमरीका ने कुल 24 बिलियन डॉलर खर्च कर डाले थे। उस वक्त के लिहाज से यह रकम बहुत बड़ी थी, रूसी चंद्र-अभियानों के खर्च से छह गुना बड़ी। जी हाँ, जब बरसों बाद रूसियों से उनके चंद्र-मिशन के बारे में पूछा गया तो वैज्ञानिक मिशिन ने कबूला कि इन्हें जो 4 बिलियन डॉलर मिला था, उसमें वे कुछेक जीव-जंतुओं को घुमा कर कुछेक ग्राम चंद्र नमूने ही ला पाए थे। क्या इतने कम पैसे में एकदम नयी सोच, नयी टेक्नोलॉजी और नया आत्मबल प्राप्त किया जा सकता था, नहीं न?

14 साल का वनवास

अपोलो कार्यक्रम ने अमरीकी गौरव को फिर प्रस्थापित किया, कई तकनीकों का मार्ग खोला, चंद्र उत्पत्ति व चंद्रमा के और कई राज़ खोले। यह भी पता लगा कि चंद्रमा पर पानी मौजूद नहीं है, यद्यपि पृथ्वी के मुकाबले कैल्शियम, एल्युमिनियम, टाइटेनियम, यूरेनियम आदि धातुएं ज्यादा हैं। पर मुख्य बात यह रही कि चंद्र नमूनों में रोमांचक कुछ भी नहीं था। (बरसों बाद इन नमूनों में He^3 की उपस्थिति खोजी गई जो कि वर्तमान में बहुत बड़ी खोज मानी जा रही है।) इसलिए अमरीका के लिए चंद्र-अभियानों के अपने बढ़ते कदमों को रोक लेना शायद स्वाभाविक ही था। कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि चंद्र-अभियानों में पिछड़ जाने पर रूस ने अपना ध्यान बदल कर मंगल ग्रह की ओर केंद्रित किया। उन्होंने यह सोचा कि मंगल पर यदि रूस पहले पहुँचे तो दुनिया शायद चंद्र विजय को भूल रूस को फिर से अंतरिक्ष-विजेता मान लें। विशेषज्ञों की इस बात में दम तो है क्योंकि 1973 तक रूस ने मंगल की ओर 15 मिशन भेजे थे, जबकि चंद्रमा पर फोकस (ध्यान) बनाए रखने के कारण अमरीका तब तक मंगल की ओर केवल छह मिशन ही भेज पाया था। संभवतः इसी कारण अपने चंद्र-अभियानों को स्थगित कर अमरीका ने मंगल के अपने वाइकिंग मिशनों पर ध्यान बढ़ा दिया। सन 1975 में कार्यान्वित इन मिशनों के बाद रूस का मंगल फोकस (कार्यक्रम) भी आश्चर्यजनक रूप से अचानक रुक गया। सन् 1988 तक रूस चुप बैठ गया। कुछ भी हो, चंद्रमा पर पहुँचने की कुछ आखिरी कोशिशों के बाद रूस ने भी अपने चंद्र-मिशन को बिल्कुल बंद कर दिया और इस तरह 1976 से 1989 के चौदह वर्षों में कोई मिशन चंद्रमा की ओर नहीं गया (देखिए तालिका-1)।

नया देश, नया मिशन, नया अंदाज, पर क्या है खास?

21 साल की चुप्पी के बाद क्लेमेंटाईन तथा ल्यूनर प्रॉस्पेक्टर मिशनों के संग अमरीका अचानक फिर से जागा (देखिए तालिका-1)। यद्यपि इन मिशनों में वह आतुरता और उग्रता नहीं थी जो कि अमरीका की पहचान है, फिर भी यह जरूर है कि अमरीका कुछ नये उद्देश्यों के संग कुछ नयी पहल कर रहा है। बाहर से तो यही लगा कि वो नये सिरे से चंद्र-मैपिंग व पानी की खोज कर रहा है, परंतु विशेषज्ञों का कहना कुछ और है। जानकार कहते हैं कि कैनेडी के अंदाज में राष्ट्रपति बुश ने सन 2004 में चंद्रमा की ओर लौटने का जो बिगुल बजाया है, उसकी आहट नासा ने पहले ही सुन ली थी। "फ्रॉम ब्लू मून्स टू ब्लैक होल्स" नामक पुस्तक की लेखिका मेलानी मेल्टन नॉके ने इस राज को इस प्रकार खोला है – "राष्ट्रपति बुश ने नासा को कैनेडी के अंदाज में एक बार फिर जगाया है, क्योंकि चंद्रमा पर वापस जाने के लिए उन्हें बिल्कुल नयी शुरूआत पुनः करनी है। आज जापान, यूरोप, चीन, भारत आदि नये देश चंद्रमा की ओर टकटकी लगाए हैं, रूस भी नयी तैयारी कर रहा है। ऐसे में चंद्र विजेता वाला गौरव अमरीका को आज भी बरकरार रखना होगा, कीमत चाहे कुछ भी हो। पर क्या अमरीका 35-40 साल पुरानी प्रौद्योगिकी से चाँद पर विजय पा सकेगा, नये उद्देश्यों को पूरा कर सकेगा? क्या 40 साल पुराने कंप्यूटर की आज कोई अहमियत है? रॉकेटों का भी यही हाल है, सबसे शक्तिशाली रॉकेट सैटर्न-5 भी आज म्यूज़ियम में रखा है। हर चीज़ को नये सिरे से डिजाईन करना होगा। फिर भी आशा है कि सन 2024 तक चंद्रमा के दक्षिणी ध्रुव में सबसे पहली बस्ती जो बसाई जाएगी, वो अमरीका की ही होगी।"

लेखिका नॉके शायद सही कह रही हैं कि अमरीका को अपना गौरव हर कीमत पर कायम रखना है, इसलिए वह

चाँद पर फिर जाना चाहता है। मगर उन्होंने हर सवाल का जवाब नहीं दिया कि इतने सारे अन्य राष्ट्र वहाँ का रूख क्यों कर रहे हैं, खास कर तब जब अमरीका को वहाँ कुछ भी तो नहीं मिला था। विस्कोंसिन विश्वविद्यालय के फ्यूजन टेक्नोलॉजी इंस्टीट्यूट के डायरेक्टर जेराल्ड कुलसिंकी के अनुसार "चाँद पर है हीलियम-थ्री (He^3) का एक अनमोल ख़जाना जो हर एक को आकर्षित कर रहा है। He^3 ही इक्कीसवीं सदी का असली ईंधन है। यह पृथ्वी पर तो है नहीं, मगर चंद्रमा पर मौजूद इसकी मात्रा इतनी है कि पृथ्वी को हजारों वर्ष की ऊर्जा दे सकता है। फ़्यूजन द्वारा ऊर्जा देने वाला He^3 एक स्वच्छ ईंधन भी है।"

इधर ह्यूस्टन विश्वविद्यालय के डैविड क्रिसवेल कहते हैं कि "पृथ्वीवासियों के लिए चाँद पर असीम संभावनाएँ हैं, मसलन चंद्रमा पर पड़ रही सूर्य-रश्मिओं की ल्यूनर सोलार पैनल्स द्वारा पकड़ माइक्रोवेव रूप में पृथ्वी की ओर भेज पर्याप्त बिजली बनाई जा सकती है। यह ऊर्जा सुरक्षित, स्वच्छ और किफ़ायती सिद्ध होगी। उपरोक्त वक्तव्यों से लगता है कि चंद्र-अभियानों के पीछे ऊर्जा-प्राप्ति के उद्देश्य भी हैं। तो क्या हम चंद्रमा को एक छोटे सूर्य में बदलने के उपायों की खोज में चंद्रमा की ओर रूख़ कर रहे हैं?

हो सकता है कि यह सब दूर की कौड़ी हो, पर नासा की इतनी योजना तो साफ-स्पष्ट है कि चंद्रमा के दक्षिणी ध्रुव में अगर अनुमानों के मुताबिक उसे बर्फ मिल जाती है तो उसके विच्छेदन से प्राप्त हाइड्रोजन व ऑक्सीजन से कई लोग वहाँ आराम से बसाये जा सकते हैं। नासा ने इन उद्देश्यों की पुष्टि करते हुए कहा कि शीघ्र ही ल्यूनर रिकनायसेंस ऑर्बाराइटर, एण्ड ल्यूनर क्रेटर ऑब्जर्वेशन एण्ड सेंसिंग सेटेलाईट (LCROSS) जैसे मिशनों से अमरीका चंद्रमा की ओर जोश से फिर लौटेगा। नासा का कहना है कि सन 2010 तक इंटरनेशनल स्पेस स्टेशन संबंधी अपनी ज़िम्मेदारियों को निभाकर, इनसे फुर्सत पाकर अमरीका सन 2014-15 तक मानव-सहित चंद्रान्वेषण फिर से शुरू कर देगा; ये अन्वेषण इस बार दीर्घकालीन होंगे। इस बीच समाचार है कि सन 2012 से रूस भी चंद्रान्वेषण की इस दौड़ में ल्यूना ग्लोब मिशन के संग शामिल हो जाएगा। उसके असली उद्देश्य बिल्कुल अस्पष्ट है।

तालिका-1 में जापान, चीन, यूरोप व भारत का नाम तो है, मगर बता दें कि शीघ्र ही इनमें इंग्लैंड व जर्मनी का नाम भी जुड़ जाने की संभावना है। जर्मनी ने तो असल में पहले ही योजना बना ली थी अपने लियो (LEO) मिशन के तहत चंद्रमा की खोजबीन की। मगर आर्थिक मंदी के कारण उसका कार्यक्रम स्थगित हो गया है। इंग्लैंड की योजना है सन 2012 से अपने मूनलाइट (MOONLITE) मिशन शुरू करने की। जहाँ तक चीन का प्रश्न है, वह 2012 में चाँद पर बग्घी उतारना चाहता है। 2017 तक चंद्र नमूने लाकर फिर 2020 तक एक चीनी नागरिक को चाँद पर उतारने का उसका मंतव्य है। इसमें वह रूस की भी मदद लेगा। एक बड़े मज़े की बात यह है कि चीन, जापान, यूरोप व भारत सभी सन 2020 तक अपने अपने नागरिकों को चंद्रतल की सैर करा देना चाहते हैं।

22 अक्तूबर के दिन जब हमारा चंद्रयान-1 आकाश को चीरता चंद्रमा की ओर बढ़ा तो कोटि कोटि भारतीय खुशी से झूम उठे। 14 नवंबर के दिन चंद्रयान चंद्रमा के ऊपर 100 किलोमीटर दूरी से चंद्रमा के चक्कर लगाने लगा था। उसी दिन इसने चंद्रतल की ओर एक इंपैक्ट प्रोब भी भेजा जिसके ज़रिये भारत का झंडा चंद्रतल पर पहुँचा। यह हमारे लिए गौरवपूर्ण क्षण था। अपने पहले और स्वदेशी मिशन में भारत ने जो कर दिखाया, वह अद्वितीय है (तालिका-1 में देखें तो पता लगता है कि इस उपलब्धि के लिए अमरीका और रूस की बरसों नाकों चने चबाने पड़े थे)। अब आशा करें कि चंद्रयान-1 अपने निश्चित कार्यक्रमानुसार दो वर्ष तक चंद्र-परिक्रमा कर चंद्रमा की बहुमूल्य जानकारियाँ इकट्ठा करता रहेगा। इस बीच चंद्रयान-2 की तैयारियाँ चल रही हैं जोकि सन 2011 में चंद्रमा पर अपनी बग्घी उतारेगा। यह बग्घी (रोवर) चंद्रमा की मिट्टी का विस्तृत विश्लेषण करेगी।

चंद्रमा के गुरुत्व, चुंबकत्व, वातावरण, ताप, मैपिंग, मिट्टी आदि के अध्ययन करना बहुत अच्छी बात है, पर मन में एक यक्ष-प्रश्न जरूर कुलबुलाता है। जी हाँ, मन पूछता है कि अचानक चंद्रमा की ओर सबकी दौड़ क्या सिर्फ ऊर्जा-प्राप्ति के लिए है, वैज्ञानिक ज्ञान के लिए ही है। यदि हाँ, तो अंटार्कटिक की तर्ज़ पर पृथ्वी के ये राष्ट्र चंद्रमा पर स्वयं पहुँच, बस्तियाँ बसा, चंद्रमा की पूरी खोज-परख इस उम्मीद में करना चाहते हैं कि वहाँ की वैज्ञानिक संपदा का मूल्यांकन स्वयं किया जा सके। इन देशों का शायद यही निष्कर्ष है कि अमरीका ने जो चंद्रान्वेषण अब तक किया, वह वस्तुतः नगण्य सा है, और करने को अभी काफी कुछ बाकी है। इस दिशा में अहम बात यह भी है कि चंद्रमा पर अपनी मौजूदगी से ये राष्ट्र भविष्य में चंद्रस्रोतों की हिस्सेदारी के कुदरती

दावेदार भी साबित हो जाएंगे। कई वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि कम गुरुत्व के कारण चंद्रमा पर सहज ही अनेकों ऐसे उत्पादों और जीव-जंतुओं की रचना की जा सकेगी जो पृथ्वी के सर्वथा नये व आकर्षक होंगे, तथा जिनसे बड़े आर्थिक लाभ होने की संभावनाओं से इन्कार नहीं किया जा सकता। उनके वैज्ञानिक मतानुसार पृथ्वी के मनुष्य का लक्ष्य तो पूरा सौरमंडल है, तब देर-सवेर चंद्रमा को एक विशाल प्रशिक्षण केंद्र के तौर पर विकसित करना ही होगा। तो बेहतर है कि समय रहते चंद्रमा पर शीघ्र पहुँचा जाए, अपना मिनी-राष्ट्र स्थापित कर सौर मंडल की ओर बढ़ा जाए। कौन जाने, किस ग्रह पर पृथ्वी के लिए राष्ट्र का आधिपत्य हो। निश्चय ही, चंद्रतल पर पहुँच कर ही इस दिशा में कुछ हासिल किया जा सकेगा, है न?

चंद्र-पर्यटन होगा रोमाँचकारी !

चंद्र-अभियानों का एक नया और अहम पहलू "ल्यूनर-टूरिज्म" है। जी हाँ, चंद्र-पर्यटन! आप सोचिए, पृथ्वी के कुछ ही मील ऊपर से लोग पृथ्वी को निहारने के लिए आज लाखों डॉलर देने को तैयार हैं। फिर चंद्रमा की सैर का आनंद पाने के लिए पर्यटक कितना कुछ न देंगे। यदि वर्तमान अंतरिक्ष पर्यटन की झलक देखनी है तो www.spaceadventures.com साईट पर जाइए, छोटी-बड़ी उड़ानों के किराये खुद देख लीजिए। स्पेस एडवेंचर्स नामक इस मार्केटिंग कंपनी ने रूसी अंतरिक्ष संस्था के सहयोग से इस पर्यटन को साकार किया है, कई पर्यटक अंतरिक्ष की सैर कर भी आए है। यह कंपनी अब अमरीकी व चीनी संस्थानों से भी गठबंधन की कोशिशों में है। पता लगा है कि स्पेस एडवेंचर्स 2009-10 से अब चंद्र-विचरण (फ्लाईबाई) के पर्यटन की योजनाएँ बनाने में तल्लीन है। इसका किराया करीब 10 करोड़ डॉलर आएगा।

चंद्र-सैर की बात चली है तो बता दें कि चंद्रमा पर प्लॉटों की बिक्री भी अमरीका में शुरू हो गई है। एक भारतीय ने भी एक प्लॉट खरीदा है। इस सबका क्या अर्थ है, इसे समझने की कोशिशों में हम भी लगे हैं।

चंद्रमा यानी अद्‌भुत शांति-निकेतन

अब नया-निकोर समाचार यह भी है कि कुछ अमरीकी कंपनियाँ दुनिया के रईस घरानों के लिए शांति के नये द्वार चंद्रमा पर खोलने की योजनाएं बनाने में व्यस्त हैं। इसका अर्थ सिर्फ इतना है कि इन घरानों के मृतक सदस्यों की कब्रें चंद्रमा पर स्थापित की जायेंगी ताकि ये मृतात्माएं दीर्घकाल तक सच्ची शांति और सुकून से कयामत के दिन की प्रतीक्षा कर सकें। हमें कोई संदेह नहीं कि 1998 में खुली स्पेस एडवेंचर्स की तर्ज़ पर ये उद्देश्य भी कामयाब होंगे। और भी कई अजीबोगरीब उद्देश्य, और चकित कर देने वाली संभावनाएं उभर कर सामने आ रही हैं, चंद्र-मिशनों को दिन-ब-दिन और अहम बना रहे हैं। शायद यही कारण है कि विश्व के 212 देशों में आज हर देश चंद्रमा की सोच रहा है। चंद्र-मिशनों में निवेश लगातार बढ़ रहा है, चंद्र-युग साकार होने की ओर बढ़ रहा है। भारत के प्रथम अंतरिक्षयात्री राकेश शर्मा ने अस्सी के दशक में कहा था - "पृथ्वी का भविष्य अंतरिक्ष में है।" आज उनके ये शब्द नया आकार, नया अर्थ आत्मसात कर रहे हैं, चंद्रयुग सचमुच साकार कर रहे हैं!!

तालिका-1 : अब तक के चंद्र-अभियानों की सूची

पाठक कृपया नोट करें कि इस विस्तृत तालिका में अब तक के छोटे-बड़े, सफल-असफल सभी चंद्र-अभियान शामिल किये गये हैं। लेख को संक्षिप्त रखने की कोशिश में सफल अभियानों की उपलब्धियों का ब्यौरा भी बहुत छोटा दिया गया है। चंद्र-मिशन के तहत फ़्लाईबाई का अर्थ है चंद्र-विचरण (सैर) यानी नज़दीक से देख आना; ऑर्बाइटर का काम है मैपिंग, विकिरण-गुरूत्व-चुंबकत्व आदि परीक्षण; इंपैक्टर का मिशन होता है चंद्र-तल की रासायनिक व जलीय रचना, घनत्व आदि का परीक्षण; तथा लैंडर का मिशन होता है चंद्र-तल की दूर तक नज़दीकी परख, वहाँ उतरने योग्य सहीं स्थलों की पहचान से जुड़े कार्य आदि। उन मिशनों को हमने "सफल" करार दिया है जिनमें उद्देश्य की पूर्ति 80-100% के बीच हो; 59-79% उद्देश्य पूर्ति वाले मिशन "आंशिक सफल" माने गये हैं। जिन मिशनों में उद्देश्य-पूर्ति 50% से कम रही है उन्हें "असफल" घोषित कर दिया गया है। यह ही स्पष्ट है कि ऑर्बाइटर परिक्रमण द्वारा चंद्रमा की जाँच करता है जबकि इंपैक्टर चंद्रमा पर उतारा या क्रैश कराया जाता है। लैंडर रोवर-युक्त होता है जो चंद्र-तल पर दूर-दूर तक सैर करता है। संक्षेप में लैंडर का मिशन हमने "अवतरण" शब्द से बताया है।

क्र.सं. (क)	प्रस्थान (ख)	संबंधित देश (ग)	यान का नाम (घ)	मानव रहित/ सहित (च)	यान का प्रकार (छ)	मुख्य मिशन (ज)	उपलब्धि-विशेष (झ)
1.	17 अगस्त 1958	अमरीका	पायोनियर-ज़ीरो	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	असफल
2.	23 सितंबर 1958	रूस	ल्यूना-1958ए	रहित	इंपैक्टर	स्पर्श	असफल
3.	11 अक्टुबर 1958	अमरीका	पायोनियर-1	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	असफल
4.	11 अक्टुबर 1958	रूस	ल्यूना-1958बी	रहित	इंपैक्टर	स्पर्श	असफल
5.	8 नवंबर 1958	अमरीका	पायोनियर-2	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	असफल
6.	4 दिसंबर 1958	रूस	ल्यूना-1958सी	रहित	इंपैक्टर	स्पर्श	असफल
7.	6 दिसंबर 1958	अमरीका	पायोनियर-3	रहित	फ़्लाईबाई	विचरण	असफल
8.	2 जनवरी 1959	रूस	ल्यूना-1	रहित	इंपैक्टर	स्पर्श	असफल
9.	3 मार्च 1959	अमरीका	पायोनियर-4	रहित	फ़्लाईबाई	विचरण	असफल
10.	18 जून 1959	रूस	ल्यूना-1959 ए	रहित	इंपैक्टर	स्पर्श	असफल
11.	12 सितंबर 1959	रूस	ल्यूना-2	रहित	इंपैक्टर	स्पर्श	सफल*
(* चंद्रमा को छू लेने वाला यह सर्वप्रथम यान था।)							
12.	4 अक्तूबर 1959	रूस	ल्यूना-3	रहित	फ़्लाईबाई तथा वापिसी	विचरण तथा वापस	सफल**
(**इस यान ने चंद्रमा के छिपे हिस्से को पृथ्वीवासियों को सबसे पहले दिखाया)							
13.	26 नवंबर 1959	अमरीका	पायोनियर-पी3	रहित	फ़्लाईबाई	विचरण	असफल
14.	15 अप्रैल 1960	रूस	ल्यूना-1960ए	रहित	फ़्लाईबाई	विचरण	असफल
15.	19 अप्रैल 1960	रूस	ल्यूना-1960बी	रहित	फ़्लाईबाई	विचरण	असफल
16.	25 सितंबर 1960	अमरीका	पायोनियर-पी30	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	असफल
17.	15 दिसंबर 1960	अमरीका	पायोनियर-पी31	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	असफल
18.	23 अगस्त 1961	अमरीका	रेंजर-1	रहित	ल्यूनर पार्किंग	पृथ्वी की परिक्रमा, चंद्र विचरण	असफल
19.	18 नवंबर 161	अमरीका	रेंजर-2	रहित	ल्यूनर पार्किंग	,,	असफल
20.	26 जनवरी 1961	अमरीका	रेंजर-3	रहित	लैंडर	अवतरण	असफल
21.	23 अप्रैल 1962	अमरीका	रेंजर-4	रहित	लैंडर	अवतरण	असफल
22.	18 अक्तूबर 1962	अमरीका	रेंजर-5	रहित	लैंडर	अवतरण	असफल
23.	11 जनवरी 1963	रूस	स्पूतनिक-25	रहित	लैंडर	अवतरण	असफल
24.	2 फरवरी 1963	रूस	ल्यूना-19638	रहित	लैंडर	अवतरण	असफल
25.	2 अप्रैल 1963	रूस	ल्यूना-4	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	असफल
26.	30 जनवरी 1964	अमरीका	रेंजर-6	रहित	इंपैक्टर	स्पर्श	असफल
27.	21 मार्च 1964	रूस	ल्यूना-1964ए	रहित	लैंडर	अवतरण	असफल
28.	20 अप्रैल 1964	रूस	ल्यूना-1964बी	रहित	लैंडर	अवतरण	असफल
29.	4 जून 1964	रूस	ज़ोंड-1964ए	रहित	फ़्लाईबाई	विचरण	असफल
30.	28 जुलाई 1964	अमरीका	रेंजर-7	रहित	इंपैक्टर	स्पर्श	आंशिक सफल
31.	17 फरवरी 1965	अमरीका	रेंजर-8	रहित	इंपैक्टर	स्पर्श	सफल***
(*** इस यान ने चंद्र-तल के 7000 से अधिक उच्च क्वॉलिटी फोटो भेजे)							
32.	12 मार्च 1965	रूस	कॉस्मॉस-60	रहित	लैंडर	अवतरण	असफल

क्र.सं. (क)	प्रस्थान (ख)	संबंधित देश (ग)	यान का नाम (घ)	मानव रहित/ सहित (च)	यान का प्रकार (छ)	मुख्य मिशन (ज)	उपलब्धि-विशेष (झ)
33.	21 मार्च 1965	अमरीका	रेंजर-9	रहित	पैक्टर	स्पर्श	आंशिक सफल
34.	10 अप्रैल 1965	रूस	ल्यूना-1965ए	रहित	लैंडर	अवतरण	असफल
35.	9 मई 1965	रूस	ल्यूना-5	रहित	लैंडर	अवतरण	आंशिक सफल
36.	8 जून 1965	रूस	ल्यूना-6	रहित	लैंडर	अवतरण	असफल
37.	18 जुलाई 1965	रूस	ज़ोंड-3	रहित	फ़्लाईबाई	विचरण	आंशिक सफल
38.	4 अक्तूबर 1965	रूस	ल्यूना-7	रहित	लैंडर	अवतरण	आंशिक सफल
39.	6 दिसंबर 1965	रूस	ल्यूना-8	रहित	लैंडर	अवतरण	आंशिक सफल
40.	31 जनवरी 1966	रूस	ल्यूना-9	रहित	लैंडर	अवतरण	सफल❁
	(❁ चंद्र-तल पर सही ढंग से सॉफ्ट-लैंड करने वाला प्रथम यान बन गया)						
41.	1 मार्च 1966	रूस	कॉस्मॉस-111	रहित	फ़्लाईबाई	विचरण	असफल
42.	31 मार्च 1966	रूस	ल्यूना-10	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	सफल✢
	(✢चंद्रमा की कक्षा में सफलता से स्थापित हो जाने वाला प्रथम यान। 460 चक्कर लगा कर इस यान ने कई वैज्ञानिक कार्यों को सफल अंजाम दिया)						
43.	30 अप्रैल 1966	रूस	ल्यूना-1966ए	रूस	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	असफल
44.	30 मई 1966	अमरीका	सर्वेयर-1	रहित	लैंडर	अवतरण	सफल
(नियंत्रित अवतरण वाला पहला अमरीकी यान जिसने चंद्र तल के 11,000 चित्र खींचे)							
45.	1 जुलाई 1966	अमरीका	एक्सप्लोरर-33	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	असफल
46.	10 अगस्त 1966	अमरीका	ल्यूनर ऑर्बाइटर-1	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	सफल
	(527 बार परिक्रमण कर चंद्रमा के दो मिलियन वर्ग मील तल का अन्वेषण कर इस यान ने अपोलो-अवतरण का मार्ग खोला)						
47.	24 अगस्त 1966	रूस	नमूना-11	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	सफल
48.	20 सितंबर 1966	अमरीका	सर्वेयर-2	रहित	लैंडर	अवतरण	असफल
49.	22 अक्तूबर 1966	रूस	ल्यूना-12	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	सफल
50.	6 नवंबर 1966	अमरीका	न्यूनर ऑर्बाइटर	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	सफल
51.	21 दिसंबर 1966	रूस	ल्यूना-13	रहित	लैंडर	अवतरण	सफल
52.	4 फरवरी 1967	अमरीका	ल्यूनर ऑर्बाइटर	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	सफल
53.	17 अप्रैल 1967	अमरीका	सर्वेयर-3	रहित	लैंडर	अवतरण	आंशिक सफल
54.	4 मई 1967	अमरीका	ल्यूनर ऑर्बाइटर-4	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	सफल
55.	14 जुलाई 1967	अमरीका	सर्वेयर-4	रहित	लैंडर	अवतरण	असफल
56.	19 जुलाई 1967	अमरीका	एक्सप्लोरर-35	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	सफल
57.	1 अगस्त 1967	अमरीका	ल्यूनर ऑर्बाइटर-5	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	सफल
58.	8 सितंबर 1967	अमरीका	सर्वेयर-5	रहित	लैंडर	अवतरण	सफल
59.	28 सितंबर 1967	रूस	ज़ोंड-1967 ए	रहित	ल्यूनर कैप्सूल	परीक्षण	असफल
60.	7 नवंबर 1967	अमरीका	सर्वेयर-6	रहित	लैंडर	अवतरण	सफल+
	(+ सफल लैंडिंग के बाद इसे लिफ़्ट करा कुछ दूर दोबारा लैंड कराया गया। लिफ़्ट ऑफ एण्ड री-लैंडिंग का यह बड़ा पहला सफल परीक्षण रहा।)						
61.	22 नवंबर 1967	रूस	ज़ोंड-19678	रहित	ल्यूनर कैप्सूल	परीक्षण	असफल

क्र.सं. (क)	प्रस्थान (ख)	संबंधित देश (ग)	यान का नाम (घ)	मानव रहित/ सहित (च)	यान का प्रकार (छ)	मुख्य मिशन (ज)	उपलब्धि-विशेष (झ)
62.	7 जनवरी 1968	अमरीका	सर्वेयर-7	रहित	लैंडर	अवतरण	सफल
63.	7 फरवरी 1968	रूस	ल्यूना-1968 ए	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	असफल
64.	7 अप्रैल 1968	रूस	ल्यूना-14	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	सफल
65.	23 अप्रैल 1968	रूस	ज़ोंड-1968 ए	रहित	ल्यूनर संकाय परीक्षण		असफल
66.	15 सितंबर 1968	रूस	ज़ोंड-5	रहित	विचरण तथा वापिसी		सफल✦
	(✦ इस यान में कछुए, कीड़े आदि भेजे गये थे। कछुए सलामत वापस आये)						
67.	10 नवंबर 1968	रूस	ज़ोंड-6	रहित	विचरण तथा वापसी		सफल
68.	21 दिसंबर 1968	अमरीका	अपोलो-8	सहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	सफल❇
	(❇पृथ्वी के गुरुत्व से लाखों किलोमीटर दूर मनुष्य को ले जाने वाला यह पहला चंद्रमा-यान था। दस चक्कर लगाकर इसके तीन यात्री सुरक्षित पृथ्वी वापस लौटे)						
69.	20 जनवरी 1969	रूस	ज़ोंड-1969 ए	रहित	विचरण तथा वापसी		असफल
70.	19 फरवरी 1969	रूस	ल्यूना-1969 ए	रहित	चंद्र रोवर परीक्षण		असफल
71.	21 फरवरी 1969	रूस	ज़ोंड-एल15-1	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	असफल
72.	15 अप्रैल 1969	रूस	ल्यूना - 1969 बी	रहित	चंद्र सैंपल लेकर वापिसी		असफल
73.	18 मई 1969	अमरीका	अपोलो-10	सहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	सफल
	(तीन यात्री चंद्र-परिक्रमण कर फिर सुरक्षित लौटे। इसमें परिक्रमण करते कमांड-मोड्यूल से ल्यूनर-मोड्यूल अलग हुआ, चंद्रमा के 10 मील करीब तक ही यात्रियों सहित होकर वापस आकर कमांड मोड्यूल से फिर जुड़ गया)						
74.	14 जून 1969	रूस	ल्यूना-1969 सी	रहित	चंद्र सैंपल लेकर वापिसी		असफल
75.	3 जुलाई 1969	रूस	ज़ोंड-एल15-2	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	असफल
76.	13 जुलाई 1969	रूस	ल्यूना-15	रहित	चंद्र सैंपल लेकर वापिसी		आंशिक सफल
77.	16 जुलाई 1969	अमरीका	अपोलो-11	सहित	मनुष्य का प्रथम चंद्र-अवतरण		सफल✪
	✪मनुष्य ने पहली बार चाँद पर कदम रखे। अब कमांड मोड्यूल को माइकिल कार्लिस संभाले रहे, ल्यूनर मोड्यूल से नील आर्मस्ट्राँग तथा एडविन अल्ड्रिन चाँद की सैर कर वापस कमांड-मोड्यूल से आ जुड़े। ये यात्री 21 किलोग्राम चंद्र सैंपल लाये।						
78.	11 अगस्त 1969	रूस	ज़ोंड-7	रहित	फ़्लाईबाई	विचरण	सफल
79.	23 सितंबर 1969	रूस	कॉस्माए-300	रहित	चंद्र सैंपल लेकर वापिसी		असफल
80.	22 अक्तूबर 1969	रूस	कॉस्मास-305	रहित	चंद्र सैंपल लेकर वापिसी		असफल
81.	14 नवंबर 1969	अमरीका	अपोलो-12	सहित	मनुष्य का दूसरा चंद्र अवतरण		सफल➚
	(➚तीन यात्री चंद्रमा से 34 किलोग्राम सैंपल लाकर पृथ्वी पर सकुशल वापस आए)						
82.	6 फरवरी 1970	रूस	ल्यूना-1970ए	रहित	चंद्र सैंपल लेकर वापिसी		असफल
83.	19 फरवरी 1970	रूस	ल्यूना-1970बी	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	असफल
84.	11 अप्रैल 1970	अमरीका	अपोलो-13	सहित	मानव अवतरण की तीसरी कोशिश		असफल
85.	12 सितंबर 1970	रूस	ल्यूना-16	रहित	चंद्र सैंपल लेकर वापिसी		सफल➢
	(➢यह पहला रोबोटिक मिशन था जो चंद्रमा से करीब 100 ग्राम सैंपल लेकर वापस आया)						
86.	20 अक्तूबर 1970	रूस	ज़ोंड-8	रहित	चंद्र विचरण तथा वापिसी		सफल
87.	10 नवंबर 1970	रूस	ल्यूनर-17	रहित	रोवर द्वारा चंद्र तल की सैर		सफल✤
	(✤इस सफल यान के ल्यूनोखोद रोवर ने चंद्रमा के साढ़े दस किलोमीटर की सैर कर करीब 20,000 फोटो भेजे।)						

क्र.सं. (क)	प्रस्थान (ख)	संबंधित देश (ग)	यान का नाम (घ)	मानव रहित/ सहित (च)	यान का प्रकार (छ)	मुख्य मिशन (ज)	उपलब्धि-विशेष (झ)
88.	31 जनवरी 1971	अमरीका	अपोलो-14	सहित	मनुष्य का तीसरा चंद्र-अवतरण		सफल❋
	(❋तीन यात्री 43 किलोग्राम चंद्र सैंपल लेकर सकुशल वापस लौटे। ऐलन शेपर्ड चंद्र तल पर गोतफ़ खेले)						
89.	26 जुलाई 1971	अमरीका	अपोलो-15	सहित	चंद्र तल पर रोवर में मनुष्य द्वारा सैर		सफल❋
	(❋चंद्रमा पर दो यात्रियों ने 17 मील की सैर की। 77 किलोग्राम चंद्र सैंपल के संग सकुशल वापसी)						
90.	2 सितंबर 1971	रूस	ल्यूना-18	रहित	लैंडर	अवतरण	आंशिक सफल
91.	28 सितंबर 1971	रूस	ल्यूना-19	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	सफल
92.	14 फरवरी 1972	रूस	ल्यूना-20	रहित	चंद्र सैंपल लेकर वापिसी		सफल
93.	16 अप्रैल 1972	अमरीका	अपोलो-16	सहित	रोवर में फिर से सैर		सफल
94.	23 नवंबर 1972	रूस	सोयूज़-13	रहित	ऑर्बाइटर तथा परीक्षण यान		असफल
95.	7 दिसंबर 1972	अमरीका	अपोलो-17	सहित	चाँद पर आखिरी बार मनुष्य के कदम		सफल✡
	(✡मानव सहित अंतिम चंद्र अभियान अपोलो कार्यक्रम समाप्त)						
96.	8 जनवरी 1973	रूस	ल्यूना-21	रहित	रोवर द्वारा चंद्र सैर		सफल
97.	10 जून 1973	अमरीका	एक्सप्लोरर-49	रहित	ऑर्बाइटर (रेडियो खगौलिकी अध्ययन, अमेरिका का अंतिम अभियान)	परिक्रमा	सफल
98.	29 मई 1974	रूस	ल्यूना-22	रहित	ऑर्बाइटर	परिक्रमण	सफल
99.	28 अक्तूबर 1974	रूस	ल्यूना-23	रहित	चंद्र सैंपल लेकर वापिसी		असफल
100.	16 अक्तूबर 1975	रूस	ल्यूना-1975ए	रहित	चंद्र सैंपल लेकर वापिसी		असफल
101.	9 अगस्त 1976	रूस	ल्यूना-24	रहित	चंद्र सैंपल लेकर वापिसी		असफल
102.	24 जनवरी 1990	जापान	हिटेन	रहित	विचरण तथा परिक्रमण		आंशिक सफल
	(इस प्रथम जापानी यान का लक्ष्य था पृथ्वी परिक्रमा, फिर चंद्र-विचरण, चंद्र-कक्षा में HAGOROMO नाम का मिनी यान छोड़ना आदि। HAGOROMO का ट्रांसमीटर फेल)						
103.	25 जनवरी 1994	अमरीका	क्लेमेंटाइन	रहित	नई टेक्नोलॉजीस का परीक्षण		आंशिक सफल*
	(*बरसों बाद अमरीका का नया अभियान। चंद्र से वापसी परंतु पृथ्वी के गिर्द असफल)						
104.	7 जनवरी 1998	अमरीका	ल्यूनर प्रॉस्पेक्टर	रहित	इस ऑर्बाइटर यान द्वारा पानी की खोज		सफल+
	(+इसने पानी की खोज के कई प्रयास किए, फिर मिशन कंट्रोल ने इसे दक्षिणी ध्रुव में क्रैश करा दिया परंतु पानी की मौजूदगी का कोई साक्ष्य नहीं)						
105.	27 सितंबर 2003	यूरोप	स्मार्ट-1	रहित	इस ऑर्बाइटर यान संग एक इंपैक्टर भी, जल की खोज		आंशिक सफल
	(सितंबर 2006 तक अध्ययनों के बाद इसे चंद्रमा के दक्षिणी ध्रुव क्षेत्र में क्रैश करा दिया गया और इंपैक्ट द्वारा जल की खोज के प्रयास किये गये)						
106.	सितंबर 2007	जापान	सेलीन	रहित	ऑर्बाइटर द्वारा विविध चंद्र अन्वेषण		आंशिक
107.	24 2007	चीन	चांगे	रहित	ऑर्बाइटर द्वारा He^3 संबंधी चंद्र अन्वेषण		आंशिक

क्र.सं. (क)	प्रस्थान (ख)	संबंधित देश (ग)	यान का नाम (घ)	मानव रहित/ सहित (च)	यान का प्रकार (छ)	मुख्य मिशन (ज)	उपलब्धि-विशेष (झ)
108.	22 अक्तूबर 2008	भारत	चंद्रयान-1	रहित	ऑर्बाइटर द्वारा 2 वर्ष तक चंद्र परिक्रमण का लक्ष्य		सफल☆
	(☆100 किलोमीटर ऊपर परिक्रमा कर रहा यह यान चंद्रमा संबंधी सूचनाएं लगातार भेज रहा है।) (इंपैक्ट प्रोब ने 14 नवंबर को चंद्र तल स्पर्शकर भारतीय ध्वज वहाँ पहुँचाया।)						

तालिका - 2 : चंद्र-अभियानों वाले देश तथा इन देशों द्वारा भेजे यानों के नाम

क्र.सं.	1	2	3	4	5	6
देश	अमरीका*	रूस*	जापान	यूरोप*	चीन	भारत
भेजे यान	(क) पायोनियर (ख) रेंजर (ग) सर्वेयर (घ) एक्सप्लोरर (च) ल्यूनर ऑर्बाइटर (छ) अपोलो (ज) क्लेमेंटाइन (झ) ल्यूनर प्रॉस्पेक्टर	(क) ल्यूना (ख) स्पूतनिक (ग) ज़ोंड (घ) कॉस्मॉस (च) सोयूज़	(क) हिटेन (ख) सेलीन	(क) स्मार्ट-1	(क) चांगे	(क) चंद्रयान-1

* अमरीका, रूस व यूरोप को क्रम से यू.एस.ए., सोवियत संघ व यूरोपियन स्पेस एजेंसी समझिए।

तालिका - 3 : अब तक के चंद्र-अभियानों की सफलता का अंश (1958-2008)

चंद्र-मिशन	देश का नाम						सभी देश मिला कर
	अमरीका	रूस	जापान	यूरोप	चीन	भारत**	
कुल कितने यान भेजे	43	60	2	1	1	1	108
सफल यानों की संख्या	21	19	-	-	-	1	41
आंशिक सफल यानों की संख्या	4	6	2	1	1	-	14
असफल यानों की संख्या	18	35	-	-	-	-	53

** इस समय चंद्रयान-1 की उद्देश्यपूर्ति का प्रतिशत 80 से 100% के बीच है। अतः इसे सफल माना जा रहा है।

तालिका - 4 : अब तक के सभी किस्म के यानों की कामयाबियों का संक्षिप्त विवरण (1958-2008)

देश	यान की किस्म	कुल संख्या	सफल यान	आंशिक सफल	असफल यान
अमरीका	पायोनियर	8	--	--	8
अमरीका	रेंजर	9	1	2	6
अमरीका	सर्वेयर	7	4	1	2
अमरीका	एक्सप्लोरर	3	2	--	1
अमरीका	ल्यूनर ऑर्बाइटर	5	5	--	--
अमरीका	अपोलो	9	8	--	1
अमरीका	क्लेमेंटाइन	1	-	1	--
अमरीका	ल्यूनर प्रॉस्पेक्टर	1	1	--	--
रूस	ल्यूना	42	15	5	22
रूस	स्पूतनिक	1	-	--	1
रूस	ज़ोंड	12	4	1	7
रूस	कॉस्मॉस	4	-	--	4
रूस	सीयूज़	1	-	--	1
जापान	हिटेन	1	-	1	--
जापान	सेलीन	1	-	1	--
यूरोप	स्मार्ट-1	1	-	1	--
चीन	चांगे	1	-	1	--
भारत	चंद्रयान-1	1	1	--	--

वैज्ञानिक के स्वामित्व का विवरण

फार्म - 4 (नियम 8 देखिए)

प्रकाशन स्थल : मुंबई-85, ***आवर्तता :*** त्रैमासिक

मुद्रक व प्रकाशक का नाम, राष्ट्रीयता, पता :

विपुल सेन, एन.आर.जी.(पी.), पी.पी., भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085.

भारतीय, हिंदी-विज्ञान साहित्य परिषद

संपादक का नाम, राष्ट्रीयता, पता :

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल, तकनीकी भौतिकी प्रभाग,

भा. प. अ. केंद्र, भारतीय, हिं, वि. सा. प.

उन व्यक्तियों के नाम व पते जो पत्रिका के स्वामी है तथा समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार हैं -

'वैज्ञानिक', हिंदी-विज्ञान साहित्य-परिषद की प्रतिनिधि पत्रिका के रूप में प्रकाशित होती है।

मैं, **श्री विपुल सेन,** एत द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य है ।

- श्री विपुल सेन (हस्ताक्षर प्रकाशक)

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2008) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

थिरैप्टैरा परजीवियों के अण्डों की बाह्य संरचना द्वारा इनकी प्रजाति की पहचान

डॉ. आदेश कुमार

सोसायटी फॉर एन्वायरॉनमेन्ट एण्ड एजुकेशन, शोभायमान, बापूग्राम,
वीरभद्र, देहरादून-249 202, उत्तराखण्ड.

थिरैप्टैरा जो सामान्यतः जुओं के नाम से जाने जाते हैं, आकार, रंग व स्वभाव में बहुत सी विभिन्नताएं रखते हैं। लेकिन बहुत सी प्रजातियां परस्पर समानताएं भी रखती हैं। पिछले कुछ वर्षों के अध्ययन के दौरान यह देखा है कि यदि घनिष्ठ संबंध रखने वाली प्रजाति के अंडे बहुत अधिक विभिन्नता दर्शाते हैं। यदि अंडों को इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से अध्ययन किया जाये तो ये विभिन्नताएं साधारण सूक्ष्मदर्शी की अपेक्षा ज्यादा स्पष्ट एवं परिभाषित होती हैं। थिरेप्टैरा के अंडों की संरचना, आकार और रंग भी विभिन्न प्रकार के होते हैं। इनके तीन मुख्य भाग होते हैं - सबसे ऊपरी भाग एक गोल ढक्कन जैसे संरचना जो ऑपरकुलम, मध्य का बड़ा भाग अंडे का कवच, पश्च भाग स्टिग्मा या हाइडोपाइल कहलाता है। ऑपरकुलम पर छिद्र जैसे संरचना, अंडद्वार, मध्य में ध्रुव-तन्तु, षठकोणीय नक्कासी तथा अन्य तन्तु पाये जाते हैं। इसी प्रकार की संरचनाए अंडे के मुख्य भाग पर भी पायी जाती है। स्टिग्मा अंडे के नीचे एक छिद्र जैसी संरचना होती हैं। अतः निकट भविष्य में अंडों की बाह्य संरचना द्वारा उनकी प्रजाति की पहचान आसान हो जाएगी। थिरैप्टैरा परजीवियों के अंडों की बाह्य संरचना का विस्तृत विवरण इस लेख में दिया गया है।

थिरैप्टैरा परजीवी पक्षी व स्तनधारियों में पाये जाने वाले बाह्य परजीवी है। ये पोषद को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से हानि तो पहुंचाते ही हैं साथ ही उसकी उत्पादन क्षमता (अंडा, मांस, ऊन, पंख, दूध इत्यादि) को भी प्रभावित करते हैं। कुछ परजीवी तो विभिन्न प्रकार के रोगों को एक पोषद से दूसरे पोषद में स्थानान्तरित कर वाहक का कार्य भी करते हैं। ये बाह्य परजीवी 0.5-5 मिमी. आकार के होने के कारण इसकी पहचान में विभिन्न समस्याएं आती हैं और कभी कभी तो दो समानताएं रखने वाली प्रजातियों की पहचान में बहुत कठिनाइयां आती है। थिरैप्टैरा परजीवी अपने अंडे पोषद पर कभी-कभी विशेष भाग के पंखों पर देते हैं जबकि कुछ तो किसी भी भाग पर दे देते हैं। किन्तु अंडे को विशेष सुरक्षा प्रदान की जाती है और कुछ विशेष संरचनाओं का विकास करती हैं। सर्वप्रथम अंडों की संरचना के बारे में रिचटर (1870) ने बताया कि मैलोफैगा के अंडों की संरचना असामान्य और बहुत सुन्दर होने के कारण सूक्ष्मदर्शी के लिए बहुत उपयुक्त वस्तु है। तब से समय-समय पर विभिन्न वैज्ञानिक फ्लैजर (1929), हाहोर्स्ट (1939), इक्लर (1954, 63) ब्लेगोवस्की (1955) बाल्टर (1968) फास्टर (1969) इकलर एवं साथी (1974) ने थिरैप्टैरा परजीवीयों के अंडों की संरचना संबंधी कुछ जानकारियाँ प्रकाशित की। इसके बाद सक्सेना एवं सहयोगियों (1993, 94) एवं कुमार एवं सहयोगी (1993) ने विभिन्न अंडों की संरचना का अध्ययन सामान्य सूक्ष्मदर्शी और इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से किया। इस अध्ययन के दौरान देखा कि थिरैप्टैरा के अंडों में बाह्य संरचना में पर्याप्त बहुरूपता होती है। कुछ संरचनाएं जो सामान्य सूक्ष्मदर्शी से पूर्ण परिभाषित नहीं होती है। उनका अध्ययन इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से बहुत उपयुक्त है। प्रस्तुत लेख में कुछ सूक्ष्मदर्शी और इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से अध्ययन किए गये अंडों की संरचना का उल्लेख किया गया है।

थिरैप्टैरा परजीवी के अंडों अथवा लीखों को पोषद के बालों अथवा पंखों से काटकर अथवा बारीक सुइयों की सहायता से अलग कर लेते हैं। इन अंडों को 70 प्रतिशत इथाइल एल्कोहॉल में संरक्षित कर लेते हैं। इन अंडों को सामान्य प्रकार माइक्रोस्कोपी हेतु इयोसिन में रंगकर, निर्जलीकरण कर, जाइलिन में चमकाकर, डी.पी.एक्स. में स्लाइड बनाकर माईक्रोस्कोपी से अध्ययन करते हैं और इनसे फोटोग्राफ या चित्रों का निर्माण किया जाता है। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी हेतु ताजा अंडों को 0.1 आण्विक सांद्रता कोकोडाइलेट बफर विलयन में स्थिर करते हैं। इसके बाद इन अंडों को ऑस्मियम टेट्रा ऑक्साइड (पीएच-7.2) ± 0.1

आण्विक सांद्रता का कोकोडायलेट बफर में 4° सेग्रे. पर 1-2 घंटे स्थिर करते हैं। इसके बाद इथेनॉल और इथेनॉल एवं आइसोइमाइल एमीटेट के विभिन्न सांद्रता में निर्जलीयकरण करके तरल कार्बन डाई ऑक्साइड से 0° सेग्रे. पर पूर्ण शुष्क करते हैं। पूर्णतः शुष्क किए अंडों को स्वच्छ एल्यूमिनीयम के खूंटे (स्टब) पर दोनों ओर गोंद लगे टेप पर स्थिर कर स्थापित कर देते हैं। इस प्रकार स्थापित अंडों को स्वर्ण-पैलनेडियम एलॉय से तह चढ़ाकर इन नमूनों को इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में अध्ययन करते हैं और चयनित भागों का विभिन्न आवर्धन पर चित्र खींचते हैं।

थिरैप्टैरा के अंडों के मुख्य तीन भाग होते हैं। सबसे ऊपरी भाग जिसमें ढक्कन जैसी संरचना ऑपरकुलम होता है। द्वितीय पश्च भाग जिसमें कभी-कभी अंडे की स्टिग्मा का हाइड्रोपाइल्स पाया जाता है। तृतीय मध्य भाग ही अंडे का मुख्य भाग होता है जिसे अंड कवच या एग कोरियन कहते हैं। अंडों के तीनों भाग विभिन्न आकृतियां, संरचना, निशान दर्शाते हैं।

ब्रुलियां प्रजाति का अंडा :

इस परजीवी के अंडे के पोषद व प्रजाति का पता नहीं है। यह अंडा, अंडाकार होता है इसके ऑपकुलम के मध्य से एक लम्बा ध्रुव तन्तु निकलता है। (चित्र-1)। जबकि पश्च भाग चिपकाने वाले पदार्थ के कारण स्पष्ट नहीं है।

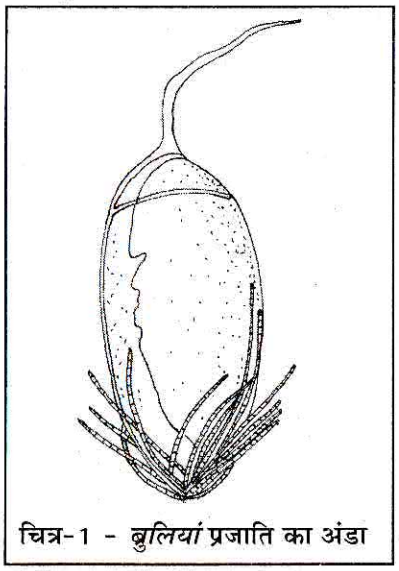

चित्र-1 - *ब्रुलियां* प्रजाति का अंडा

ऑस्ट्रेलियन मेली बर्ड पर पाये जाने वाला *केलेरीमिनापान* का अंडा :

यह दण्डाकार होता है तथा नीचे से गोलाकार होता है इसके अंड-मुख पर बहुत सारी तन्तुनुमा एपोफाइसिस जैसी संरचनाएं निकलती है जो एक गुलदस्ते जैसा रूप प्रदान करती है। इन संरचनाओं के अन्तिम छोर पर एन्कर जैसी सदृश संरचनाएं पायी जाती है। गुलदस्ते जैसी संरचना के मध्य में गुम्मद जैसा ऑपरकुलम होता है जो मध्य से एक लम्बे ध्रुव तन्तु को जन्म देता है (चित्र-2)।

एमाइरीसिडा मिनुटा का अंडा :

यह परजीवी भारतीय मोर पर पाया जाता है। इसका अंडा नीचे से गिलास के आकार का होता है तथा अंडे के मुख पर एपाफाइसिस की तीन पंक्तियां पायी जाती है। नीचे की पंक्ति अंडे के कवच की और मुड़ी होती है ये एफोफाइसिस आगे से गोल होती है, द्वितीय पंक्ति में द्विविभाजित और त्रिविभाजित हाइपोफाइसिस पाये जाते हैं जो बाहर की ओर फैले रहते हैं इनके अन्तिम छोर नुकीले होते हैं, तृतीय पंक्ति के एफोफाइसिस द्विभाजित एवं तुलना में दोनों प्रकार से सूक्ष्म होते हैं जो अन्दर की सतह पर एक घेरे (रिम) में व्यवस्थित होते हैं। ऑपरकुलम मध्य से बल्ब के आकार का, जो आगे घुमावदार एवं नुकीला होकर समाप्त होता है (चित्र-3)। अंड कवच पर षष्टाकार निशान दिखते हैं।

चित्र-2 - ऑस्ट्रेलियन मेली बर्ड पर पाये जाने वाला *केलेरीमिनापान* का अंडा

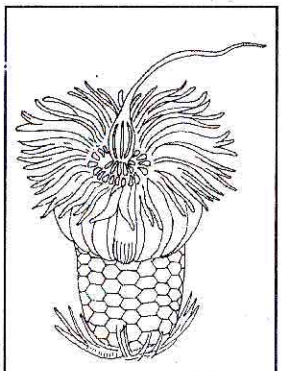

चित्र-3 - एमाइरीसिडा मिनुटा का अंडा

क्राउन्ड क्रेन पर पाये जाने वाले *ऑक्सीलाइप्यूरस प्रजाति* का अंडा :

ऑक्सीलाइप्यूरस परजीवी क्राउन्ड क्रेन पर पाया जाता है। अंडा बैंगन के आकार का होता है। इसमें लम्बाई में षष्टाकार नक्काशी पायी जाती हैं। ऑपरकुलम टोपी के आकार का होता है और उसके बीच से एक हुक जैसा ध्रुव तन्तु पाया जाता है (चित्र-4)।

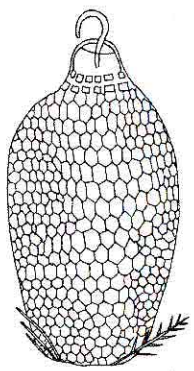

चित्र-4 - क्राउन्ड क्रेन पर पाये जाने वाले *ऑक्सीलाइप्यूरस प्रजाति* का अंडा

क्राउन्ड क्रेन पर पाये जाने वाले *इथियोप्टेरम* का अंडा :

यह परजीवी भी क्राउन्ड क्रेन पर पाया जाता है। वह आकार में बैंगन के आकार का होता है। इसमें अंड कवच पर लम्बाई में षष्टाकार नक्काशी पायी जाती है। ऑपरकुलम

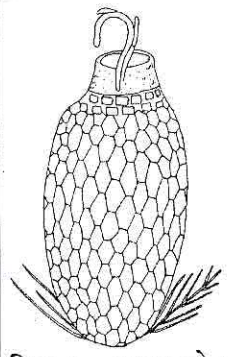

चित्र-5 - क्राउन्ड क्रेन पर पाये जाने वाले *इथियोप्टेरम* का अंडा

कालर जैसा होता है और उसके बीच से एक हुक जैसा ध्रुव-तन्तु पाया जाता है (चित्र-5)।

गोल्डन फिजैंट पर पाये जाने वाले *ऑक्सीलाइप्यूरस* प्रजाति का अंडा :

यह गोल्डन फिजैंट पर पाया जाता है। यह आकार में चौड़ा तथा नीचे से कम चौड़ा तथा इसमें नीचे की ओर की स्टिग्मा पायी जाती है। अंड-कवच पर चौकोर नक्काशी पायी जाती है। ऑपरकुलम के मध्य में सीधा ध्रुव तन्तु तथा किनारों पर अंडद्वार भी पाये जाते हैं (चित्र-6)।

चित्र-6 - गोल्डन फिजैंट पर पाये जाने वाले *ऑक्सीलाइप्यूरस* प्रजाति का अंडा

फिजैंट पर पाये जाने वाले *आक्सीलाइप्यूरस* प्रजाति का अंडा :

आक्सीलाइप्यूरस परजीवी फिजैंट पर पाया जाता है। इसका अंडा भी बैंगन के आकार का होता है। अंड कवच पर षष्टकोणीय नक्काशी पायी जाती है। गुम्मद के आकार का ऑपरकुलम पाया जाता है जिस पर बिखरे हुए अंडद्वारा पाये जाते हैं। इस पर ध्रुव तन्तु कुछ छोटा होता है (चित्र-7)।

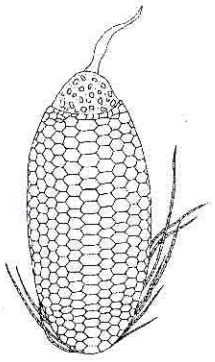

चित्र-7 - फिजैंट पर पाये जाने वाले *ऑक्सीलाइप्यूरस* प्रजाति का अंडा

ऑस्ट्रेलियन क्रेन पर पाये जाने वाले *इथियोप्टेरम* का अंडा :

यह ऑस्ट्रेलियन क्रेन का परजीवी है। यह चावल के दाने के आकार का होता है, जो ऊपरी छोर पर कप जैसी खांच के रूप में होता है। इसका ऑपरकुलम खांच में धंसा होता है। जिससे दो ध्रुव तन्तु निकलते हैं। जो एक दूसरे से लिपटे रहते हैं। अंड कवच पर मध्य में एक मोटी रंजित रस्सी जैसी दृष्टिगोचर होती है (चित्र-8)।

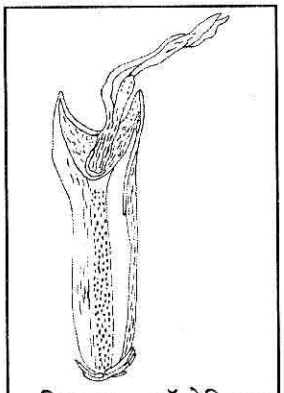

चित्र-8 - ऑस्ट्रेलियन क्रेन पर पाये जाने वाले *इथियोप्टेरम* का अंडा

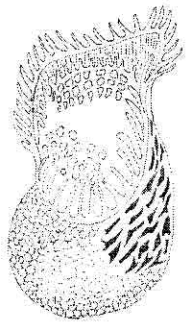

चित्र-9 - हॉर्नबिल पर पाये जाने वाले *चैपिनिया* प्रजाति का अंडा

हॉर्नबिल पर पाये जाने वाले *चैपिनिया* प्रजाति का अंडा :

- यह परजीवी हॉर्नबिल पर पायी जाती है। इसका अंडा नीचे से गोलाकार होता है। अंड कवच के ऊपरी भाग में जाली जैसी संरचनाएं पायी जाती है तथा अंडे का मुख चौकोर आकार का होता है, जिस पर समान आकार के छोटे-छोटे एपोफाइसिस पाये जाते हैं (चित्र-9)।

चित्र-10 - *बुसिरोफैगस अक्रीकेनस* का अंडा

***बुसिरोफैगस अक्रीकेनस* का अंडा :**

यह ग्राउन्ड हॉर्नबिल पर पाया जाता है। अंडे पोषद की गर्दन छाती के पंखों पर पाये जाते हैं, जो पंख के केलेमस व साफट वाले भाग से चिपकाये होते हैं। इसका अंडा नीचे से कुछ गोल तथा ऊपर से अधिक चौड़ा होता है। मुख-द्वार पर एक गोल रिम में एफोफाइसिस लगे रहते हैं तथा उसके अन्दर से एक लम्बा ऑपरकुलम निकलता है। ऑपरकुलम अंडे के मुख के अन्दर धंसा हुआ होता है, जिस पर कुछ अंडद्वार जैसे चौड़े-चौड़े छिद्र दृष्टिगोचर होते हैं। अंड कवच पर ऊपर से नीचे की ओर धारियां सी खींची दिखती हैं (चित्र-10)। इस पर बाह्य संरचना कुछ विशेष प्रकार की तथा कठोर होती है जो अंतःसंरचना को सुरक्षा प्रदान करती है। इससे इनकी सुरक्षा उच्च तापमान से होती ही है साथ ही अन्य परापरजीवियों से भी इनकी रक्षा करती है। अंडे के पश्च भाग में एक आधार या डिस्क के आकार का हाइडोपाइल पाया जाता है (चित्र-10)।

***टोमिनिक ट्रोगोपन* पर पाये जाने वाले *ऑक्सीलाइप्यूरस* प्रजाति का अंडा :**

यह *टोमिनिक ट्रोगोपन* का परजीवी है। इसका अंडा चावल के दाने जैसा होता है जिसमें लम्बी षष्टकोणीय

नक्काशी पायी जाती है। ध्रुव-तन्तु लम्बा एवं अग्र भाग पर काफी फूला होता है (चित्र-11)।

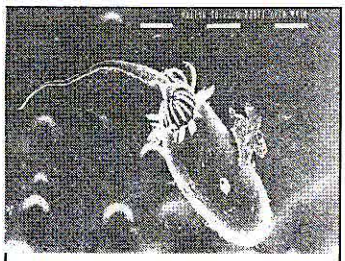

चित्र-12 - *मिनापान गैलीनी* का अंडा

चित्र-11 - *टोमिनिक ट्रोगोपन* पर पाये जाने वाले *ऑक्सीलाइप्यूरस* प्रजाति का अंडा

मिनापान गैलीनी का अंडा :

यह मुर्गी पर पाया जाने वाला परजीवी है। इसका अंडा बैंगन के आकार का होता है। इसकी लम्बाई 0.90-1.10 मिमी. तथा व्यास 0.02-0.03 मिमी. होता है। इसमें 22-25 एफोफाइसिस पाये जाते हैं जो दो गोल रिम में अंडे के मुख पर लगे रहते हैं। अन्दर वाले एफोफाइसिस आगे से द्विभाजित होता है। ये एफोफाइसिस छिद्रित तथा स्पंज जैसे होते हैं। एक बड़ा सा ध्रुव तन्तु निकलता है (चित्र-12)। अंड कवच समतल होती है।

मिनाकेन्स कारनूटस का अंडा :

यह भी मुर्गी पर पाया जाने वाला परजीवी है। इसकी लम्बाई 0.75-0.90 मिमी. तथा चौड़ाई 0.27-0.30 मिमी. है। इसमें अंडे के अग्र भाग 1/6 भाग पर 4-5 पंक्तियां तन्तु स्वरूप संरचना के रूप पायी जाती हैं, जिनका आकार अंड मुख के ओर घटता जाता है। ऑपरकुलम टोप के आकार का होता है। इन पर मोटी षष्टभुजीय आकृति पायी जाती है (चित्र-13)।

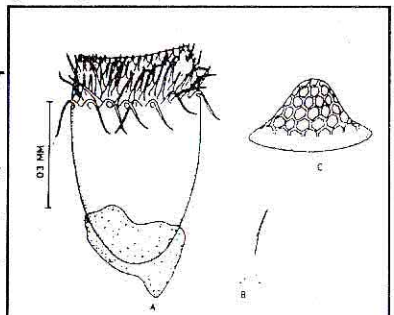

चित्र-13 - *मिनाकेन्स कारनूटस* का अंडा

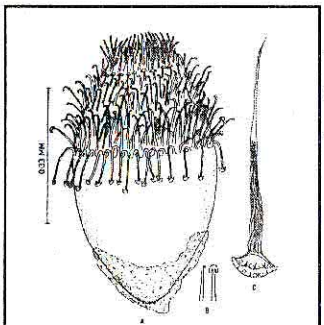

चित्र-14 - *मिनाकेन्थस स्ट्रेमिनियस* का अंडा

मिनाकेन्थस स्ट्रेमिनियस का अंडा :

यह भी मुर्गी में पाये जाने वाला परजीवी है। इसका अंडा, अंडाकार है। जो 1.10-1.30 मिमी. लम्बा व 0.35-0.40 मिमी. चौड़ा होता है। अंड कवच का आधा भाग लगभग 40 तन्तु जैसी संरचनाओं से ढ़का रहता है। सबसे नीचे पंक्तियों की संरचना का अग्रभाग एन्कर के आकार का होता है जो पश्च भाग की ओर झुकी रहती है। इन तन्तुओं का आकार भी अंडे के अग्र भाग की ओर घटता जाता है। ऑपरकुलम का ऊपरी भाग से कई तन्तुओं से एक ध्रुव-तन्तु का निर्माण होता है जो काफी लम्बा एवं आगे से नुकीला होता जाता है (चित्र-14)।

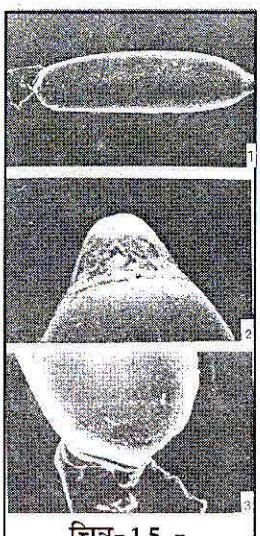

चित्र-15 - *कोलम्बीकोला कोलम्बी* का अंडा

कोलम्बीकोला कोलम्बी का अंडा :

यह कबूतर के परजीवी का अंडा है। आकार में चावल के दाने जैसा दिखता है। इसकी लम्बाई 0.68-0.78 मिमी. तथा चौड़ाई 0.17-0.27 मिमी. होती है। इसके ऑपरकुलम पर अंडद्वारा पाये जाते हैं तथा अंडे के पश्च भाग में एक पाइप जैसी संरचना हाइडोपाइल पायी जाती है जो सम्भवतः वातावरण से नमी अवशोषण का कार्य करती है तथा अंडे के सेने में मदद करता है। अंड कवच की सतह समतल पायी जाती है (चित्र-15)।

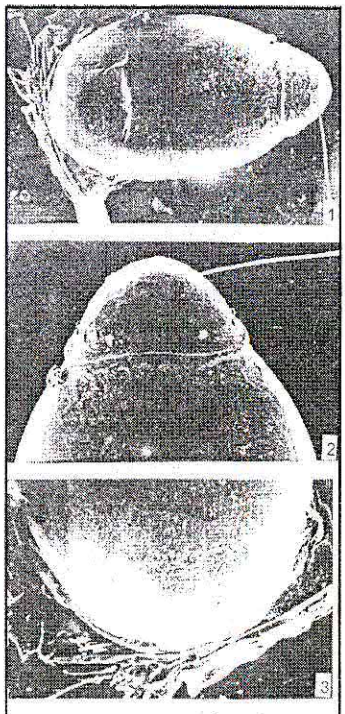

चित्र-16 - *कम्पेनुलोट्स बाइडेन्टस कम्पार* का अंडा

कम्पेनुलोट्स बाइडेन्टस कम्पार का अंडा :

यह भी कबूतर का परजीवी है। इसका अंडा रैकेट के आकार का होता है। जिसकी लम्बाई 0.04-0.41 मिमी. तथा चौड़ाई 0.24-0.26 मिमी. होती है। इसमें गुम्बद के आकार का ऑपरकुलम पाया

जाता है, जिसमें 8-10 अंडद्वार पाये जाते हैं (चित्र-16)।

कालपोसिफेलम टर्बीनेटस का अंडा :

यह भी कबूतर का परजीवी है। इसकी लम्बाई 0.49-0.66 मिमी. तथा चौड़ाई 0.20-0.23 मिमी. होती है। इसके ऑपरकुलम में लम्बवत् उभार पाये जाते हैं तथा ऑपरकुलम अग्र भाग पर न होकर चोटी से एक किनारे पर उपस्थित होता है (चित्र-17)।

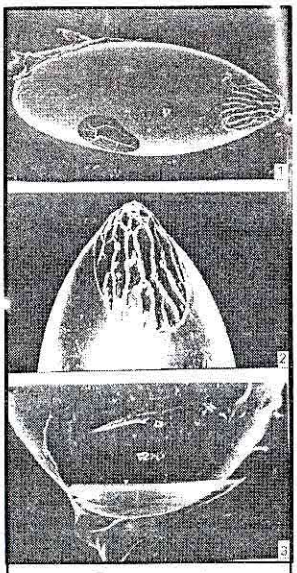

चित्र-17 - *कालपोसिफेलम टर्बीनेटस* का अंडा

होर्होस्टीला लाटा का अंडा :

यह भी कबूतर का परजीवी है। इसकी लम्बाई 0.95-1.08 मिमी. तथा चौड़ाई 0.43-0.53 मिमी. होती है। अंड कवच के अग्र 1/3 भाग पर छोटे-छोटे तन्तु सदृश्य संरचनाएं पायी जाती है। तथा इसके ऑपरकुलम पर मधुमक्खी के छत्ते जैसे निशान पाये जाये हैं। ऑपरकुलम के किनारे अंडद्वार की पंक्ति पायी जाती है (चित्र-18)।

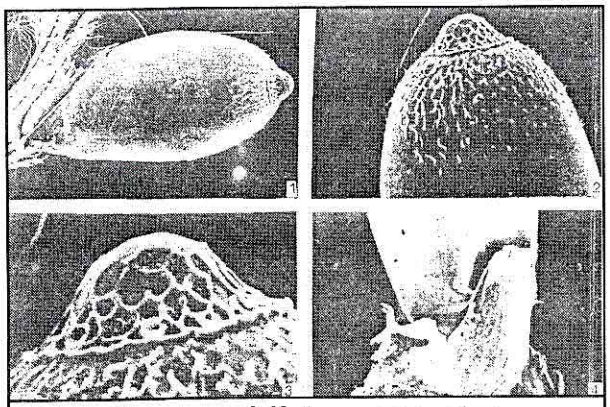

चित्र-18 - *होर्होस्टीला लाटा* का अंडा

एमारिसिडा मिगोलोसोमा का अंडा :

यह परजीवी फिजैन्ट, *फैसीनस काल्वीकस* पर स्थापित कर दिये जाते हैं। अंडे सामान्यतः आधार से 2-3 की संख्या में गर्दन के पंखों पर चिपका दिये जाते हैं। इनके आधार पर एक गाँठ जैसा उभार होता है जो सम्भवतः हाइडोपाइल का विशेष रूप होता है। इस अंडे का वर्णन बेलोवस्की ने 1955 में किया था। ऑपरकुलम के मध्य में बहुत सारी धागे जैसी संरचनाएं एक मुख्य ध्रुव तन्तु का निर्माण करती है, जो आगे एक हुक का रूप धारण कर लेता है। यह संरचना अंडे को पोषद के पंखों में सीधा रखने में भी मदद करती है। ऑपरकुलम के किनारे पर दो पंक्तियों में कीप के आकार के अंडद्वार के घेरे पाये जाते हैं। (चित्र-19) अंड कवच पर धागे जैसे ऊभार एक दूसरे को चौकोर आकृतियों में काटते हैं, जिससे इस पर चौकोर नक्काशी प्रतीत होती है (चित्र-19)।

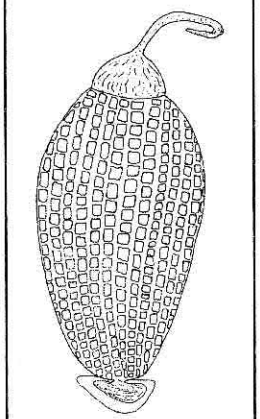

चित्र-19 - *एमारिसिडा मिगोलोसोमा* का अंडा

फीजैन्ट (*फैसीनस काल्वीकस*) पर पाये जाने वाला *फिलाप्टेरस* प्रजाति का अंडा :

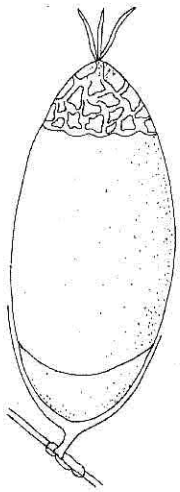

चित्र-20 - फीजैन्ट (*फैसीनस काल्वीकस*) पर पाये जाने वाला *फिलाप्टेरस* प्रजाति का अंडा

इसका अंडा आगे से नकीला होता है तथा पीछे से अंडाकार होता है। इनका आकार 0.83 और 0.35 मिमी. सबसे अधिक आयाम पर पाया जाता है। अंड कवच का 1/5 भाग चिपकाने वाले पदार्थ से ढ़का रहता है। जिसका अन्तिम छोर पर हाइडोपाइल से एक मजबूत तन्तु तथा चिपकारने वाले पदार्थ की सहायता से अंडे को मजबूती से पंखों से चिपका दिया जाता है। इसका अंड कवच समतल होता है। ऑपरकुलम ऊपर से नुकीला तथा इस पर अनियमित आकार के उभार पाये जाते हैं तथा इसके किनारे पर की तरह के छोटे-छोटे लहरनुमा बन्धों द्वारा

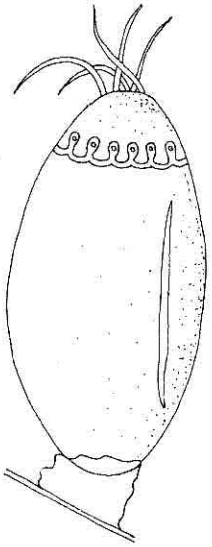

चित्र-21 - फीजैन्ट (फैसीनस काल्वीकस) पर जाने वाले मिनाकेन्थस प्रजाति का अंडा

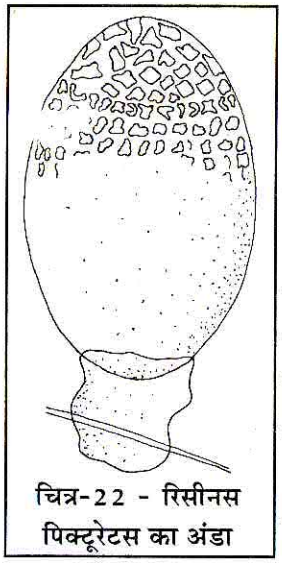

चित्र-22 - रिसीनस पिक्टूरेटस का अंडा

जुड़े रहते हैं। इसके एकदम शीर्ष पर बहुत से ध्रुव तन्तु निकलते हैं जो आकार में मध्यम् तथा समान होते हैं। ये कभी-कभी एक दूसरे से गूँथे रहते हैं (चित्र-20)।

फीजैन्ट (फैसीनस काल्वीकस) पर जाने वाले मिनाकेन्थस प्रजाति का अंडा :

यह अंडा 0.10 मिमी. चिपकाने वाले पदार्थ में धंसा रहता है अंड कवच समतल होता है। इसकी लम्बाई लगभग 0.73 मिमी. तथा चौडाई 0.33 मिमी. ऑपरकुलम गहरे भूरे रंग का होता है। इसके किनारे पर पंख की तरह छोटे-छोटे गोले जो लहरनुमा बंधों द्वारा जुड़े रहते हैं। ऑपरकुलम के किनारों से अन्दर की ओर रैकेट के आकार के गोल उभार छोटे-छोटे वायु छिद्रों के रूप में पाया जाता है। ये अण्डद्वार हैं तथा एक पंक्ति में व्यवस्थित होते हैं जिनके मध्य छिद्र स्पष्ट दिखाई देता है। ऑपरकुलम के शीर्ष पर 4-8 तन्तुनुमा ध्रुव तन्तु पाये जाते हैं (चित्र-21)।

रिसीनस पिक्टूरेटस का अंडा :

यह परजीवी फीजैन्ट फैसीनस काल्वीकस पर पाया जाता है। इसका अंडा बिल्कुल मुर्गी के अंडे के आकार का होता है जो परजीवी द्वारा श्रावित चिपकाने वाले पदार्थ से पश्च भाग 0.15-0.20 मिमी. चिपकाने वाले पदार्थ में धंसा रहता है। अंडे के कवच का 1/4 भाग पर अनिर्मित आकृति की कुछ मोटी-मोटी संरचनाएं लगी रहती है। शेष भाग समतल होता है। इसी प्रकार की आकृति ऑपरकुलम पर भी दिखाई देती है जो कुछ चौकोर सा रूप धारण करती है। ऑपरकुलम के किनारे किनारे छोटे-छोटे छिद्र या अंडद्वार पाये जाते हैं (चित्र-22), जो संभवतः शुक्राणुओं के प्रवेश में मदद करते हैं। इस अण्डे में ध्रुव-तन्तु व हाइडोपाइल नहीं पाये जाते हैं।

निष्कर्ष

थिरैप्टैरा परजीवी के अण्डों की संरचना में बहुत विभिन्नता है। इस विभिन्नता के कारण थिरैप्टैरा के अंडे इन परजीवी की पहचान में एक अहम् भूमिका निभा सकते हैं हालांकि विभिन्न गुणों के अंडों में निश्चित संरचना नहीं होती है। अतःइनके विकास का पता लगाना मुश्किल है फिर भी यह देखा गया है कि बहुत सी समानतएं रखने वाली प्रजातियों के अंडों की बाह्य संरचना सामान्य सूक्ष्मदर्शी से पूर्ण स्पष्ट नहीं होती क्योंकि अण्डा स्लाइड पर चिपक जाने से उसकी सभी संरचनाएं प्राकृतिक रूप में नहीं दिखती है। यदि यह अंडे इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से देखते है तो इनकी संरचना पर्याप्त स्पष्ट दिखती है। अतः इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी अंडों की संरचना देखने के लिए ज्यादा उपयुक्त है।

अंडों के कवच पर उपस्थित नक्काशी और कारीगरी अन्तः संरचना तन्तु के आधार के एपोफाइसिस जैसी संरचनाएं तथा ऑपरकुलम पर उपस्थित संरचनाएं एवं ध्रुव-तन्तु जैसी संरचनाएं अंडे की विभिन्नता निर्धारित करती है। इसके अलावा ऑपरकुलम पर उपस्थित अंडद्वार एवं पश्च भाग में उपस्थित अंडे का हाइड्रोपाइल भी इनकी विभिन्नता के लिए महत्वपूर्ण होता है। अंडे पर उपस्थित संरचनाएं अंडे को बालों या पंखों से अटकाकर रखती है, तथा अंडों की रक्षा अन्य परजीवी माइट्स इत्यादि से करती है। यह भी अनुमान है कि एपोफाइसिसस के स्पंजी होने से यह नमी अवशोषण करती है, जो अंडे के सेने (हेचिंग) में मदद करती है। इसके अलावा अंडे सामान्यतः पोषद के किसी विशेष भाग पर पंखों से चिपकाया जाता है। ये भाग मुख्यतः दो भाग होते हैं जहां पोषद आसानी से अपनी चोंच से इनको मार न सके। कभी-कभी अंडे पोषद अन्य सामान्य भागों में भी पाये जाते हैं किन्तु उनका अंडे देने का तरीका बहुत सुरक्षित होता है जिससे पोषद इन्हें मार नहीं पाते हैं। जिन्दा अंडों की संख्या पोषद पर उपस्थित परजीवी संख्या के बारे में सही जानकारी देते हैं। जबकि सेये हुए अंड कवच अथवा मृत अंडे उस पोषद पर किसी परजीवी की उपस्थिति उसके जीवन में दर्ज करते हैं अर्थात हम पता लगा सकते हैं कि यह पोषद कभी किसी विशेष परजीवी द्वारा संक्रमित था। थिरैप्टैरा परजीवी के उन्मूलन हेतु अंडों का अध्ययन एक विशेष भूमिका निभा सकता है क्योंकि अंडे जुओं की तुलना में आसानी से किसी रसायन से नहीं मरते हैं। अंडों को मारना या नियंत्रण करना जुओं से ज्यादा महत्वपूर्ण है। निष्कर्ष यह कि थिरैप्टैरा के अंडों का यदि पूर्ण अध्ययन किया जाए तो ये थिरैप्टैरा परजीवी की पहचान को बहुत आसान बना सकते हैं एवं जुओं के पारिस्थिकीय, जीवन चक्र व नियंत्रण महत्व के पहलुओं के अध्ययन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

* * *

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2008) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

फ्लोराइड विषाक्तता : फ्लोरोसिस

डॉ. शान्ति लाल चौबीसा

वरिष्ठ प्रवक्ता एवं विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर प्राणीशास्त्र विभाग, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर-313001, (राज.)

प्राकृतिक अथवा अप्राकृतिक रूप में पीने के पानी में फ्लोराइड रसायन की मात्रा 1-1.5 पी.पी.एम. से अधिक होने पर यह विषैला होकर मनुष्यों एवं पालतू पशुओं (गाय, भैंस इत्यादि) में कई तरह की शारीरिक विकृतियाँ (फ्लोरोसिस) एक के बाद एक धीरे-धीरे जनित करने लगता है जो कालांतर में स्थायी एवं अति पीड़ादायक होती हैं। यह उन अंगों को पहले एवं सर्वाधिक दुष्प्रभावित करता है जिनमें कैल्शियम की मात्रा अधिक पायी जाती हो। दांत व अस्थियां सबसे पहले व सर्वाधिक दुष्प्रभावित होती हैं। दांतों में पनपी विकृतियों को दंतीय-फ्लोरोसिस तथा अस्थियों में आयी विभिन्न विकृतियों को कंकालिय या हड्डी-जोड़ फ्लोरोसिस कहते हैं। फ्लोराइड विषाक्तता का असर शरीर की पेशियों, अंतःस्त्रावी ग्रंथियों, वृक्क, यकृत, जनन ग्रन्थियों, तंत्रिकाओं, रुधिर की लाल रक्त कणिकाओं इत्यादि में भी देखा गया है। इसकी तीव्रता से गर्भस्थ शिशु में भी शारीरिक विकृतियां पनप जाती है। फलस्वरूप गर्भस्थ शिशु की मृत्यु या फिर गर्भपात हो जाता है। कैल्शियम एवं विटामिन-सी युक्त भोज्य पदार्थों के नियमित सेवन से फ्लोराइड के दुष्प्रभाव कम होने लगते हैं। फ्लोराइड ''जन स्वास्थ्य–समस्या'' तो है ही, परन्तु अब ''सामाजिक-समस्या'' के रूप में यह अधिक भयावह एवं चिंताजनक है। इससे फ्लोराइड युक्त क्षेत्रों में लिंगानुपात विषम होने लगा है। इस लेख में फ्लोराइड विषाक्तता एवं इससे जनित फ्लोरोसिस बीमारी पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ तथ्यात्मक जानकारी प्रस्तुत की गई है।

पीने के पानी एवं भोज्य पदार्थों में प्राकृतिक अथवा अप्राकृतिक रूप में कई प्रकार के रसायन घुल-मिल जाते हैं। इनके निरन्तर सेवन करने से धीरे-धीरे इनकी सांद्रता शरीर के विभिन्न अंगों में बढ़ने लगती है। एक निश्चित सीमा के उपरान्त ये शरीर में रसायन विष की तरह काम करने लगते हैं तथा शरीर की जैविक क्रियाओं तथा विभिन्न अंगों की आंतरिक संरचनाओं में क्षति पहुँचा कर अनेक प्रकार की शारीरिक विकृतियां अथवा रोग पैदा करते हैं। यद्यपि फ्लोराइड (F) की अल्प मात्रा मनुष्यों एवं पशुओं के दांतों व अस्थियों के निर्माण में आवश्यक एवं लाभदायक होती है तथा इनके कैल्शियम में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जनन, रुधिर संश्लेषण व कई तरह की जैविक क्रियाओं (उपापचय) में इसकी उपस्थिति अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों को संपादित करती है। लेकिन जब पीने के पानी में इसकी मात्रा (सांद्रता) 1.5 पी.पी.एम. से अधिक हो जोती है तो यह शरीर के लिए विषैला एवं अति हानिकारक हो जाता है। इसकी (F) विषाक्तता अथवा विषैलेपन से शरीर में एक के बाद एक कई तरह की शारीरिक विकृतियां पैदा होने लगती है, जो किसी औषधियों द्वारा अक्सर ठीक नहीं होती है।

फ्लोराइड अथवा फ्लोरीन (F) :

फ्लोराइड वे रसायनिक पदार्थ हैं जो फ्लोरीन तत्त्व (F) से रासायनिक अभिक्रिया द्वारा निर्मित होते हैं। फ्लोरीन हल्के पीले रंग की तीखी गंध वाली जलन युक्त गैस है। प्रकृति में यह स्वतंत्र अवस्था में नहीं मिलती हैं। क्योंकि इसका बाह्य इलेक्ट्रॉनिक विन्यास ($2s^2p^5$) इस प्रकार से संगठित है जिसके कारण वह सर्वाधिक ऋणात्मक आवेश युक्त आयन के रूप में अत्यधिक क्रियाशील है। कैल्शियम के साथ यह शीघ्र ही आयनी बंध बनाकर कैल्शियम फ्लोराइड (CaF_2) योगिक बनाती है, जो पानी में अघुलनशील एवं मणिभ के रूप में कठोर होता है। इन दोनों रसायनों के मध्य आयनी बंध का शीघ्र बन जाना केवल इन दोनों के बाह्यिक इलेक्ट्रॉनिक विन्यास के कारण है।

फ्लोराइड के स्त्रोत :

समुद्री जल, जीव – जंतुओं व वनस्पतियों में फ्लोराइड प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। दुनिया के लगभग हर भौगोलिक क्षेत्र में फ्लोराइड खनिज के रूप में उपलब्ध है। भारत में टोपाज, फ्लोराइट, एपेटाइट एवं रॉकफॉस्फेट, फॉस्फेटिक नोड्यूल्स, फॉस्फोराइट इत्यादि खनिज प्रचुर मात्रा में जमीन में फैला हुआ है। इन खनिजों में फ्लोराइड की बाहुल्यता होती है जो क्षरण द्वारा भूमिगत जल में धीरे-धीरे घुलता-मिलता रहता है।

चाय, तुलसी, शराब, एल्कोहॉलिक पेय पदार्थ, सेंधा, काला नमक, सुपारी, फ्लोराइड युक्त जल से सिंचित उत्पन्न खाद्यान्नों, फलों एवं सब्जियों में अपेक्षित फ्लोराइड विष की मात्रा पायी जाती है। इनके निरंतर सेवन से फूड – बोर्न फ्लोरोसिस होने की संभावना अधिक रहती है।

फ्लोराइड का अवशोषण :

इसका अवशोषण विसरण द्वारा मुख एवं आहार नाल में शीघ्र हो जाता है, जो रक्त परिसंचरण द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में कुछ ही घंटों में पहुँच जाता है। अवशोषण क्रिया भोज्य पदार्थों में उपस्थित रसायनों से प्रभावित होती है। मोलिब्लेडनम (Mo), फॉस्फेट (P), सल्फेट (SO_4) इत्यादि रसायनों से फ्लोराइड अवशोषण प्रक्रिया तेज होती है। सामान्यतयाः अवशोषित फ्लोराइड का 10% हिस्सा मल द्वारा बाहर विसर्जित हो जाता है। कुल अवशोषित फ्लोराइड का 35-50% भाग शरीर में रहता है, शेष मल–मूत्र व पसीने द्वारा उत्सर्जित हो जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (1984) के अनुसार अवशोषित फ्लोराइड का 99% हिस्सा केवल दांत एवं अस्थियों में ही एकत्रित हो जाता है एवं 1% भाग रुधिर एवं अन्य नरम उत्तकों (Soft tissues) में रहता है।

फ्लोराइड रक्त के माध्यम से प्लेसेन्टा (अपरा) से अभिगमन करके गर्भस्थ शिशु के शरीर में भी आसानी से प्रवेश कर जाता है।

फ्लोराइड विषाक्तता (फ्लोरोसिस) :

पीने के पानी में फ्लोराइड की मात्रा 1–1.5 पी.पी.एम. से अधिक होने पर यह दांतों व हड्डियों में "कैल्शियम फ्लोरो एपेटाइट क्रिस्टल" के रूप में एकत्रित होने लगता है। परिणामस्वरूप इनका घनत्व एवं द्रव्यमान दोनों धीरे-धीरे बढ़ने लगते हैं, जिससे शरीर के विभिन्न भागों की हड्डियां भारी किन्तु खोखली (ऑस्टियोपोरोसिस) हो जाती है। थोड़े से दबाव में यह हड्डियां तुरन्त टूट एवं चटक जाती हैं।

फ्लोराइड विषाक्तता के कारण दांत बदरंग व कमजोर होकर गिरने टूटने लगते हैं तथा इनकी बाह्य सतह (एनेमल) पर हल्की–गहरी काली–पीली आड़ी धारियाँ (चित्र - 1 व - 2) या धब्बे पड़ जाते हैं। इन विकृतियों को दंतीय-फ्लोरोसिस कहते हैं। फ्लोराइड विषाक्तता की भयावह एवं

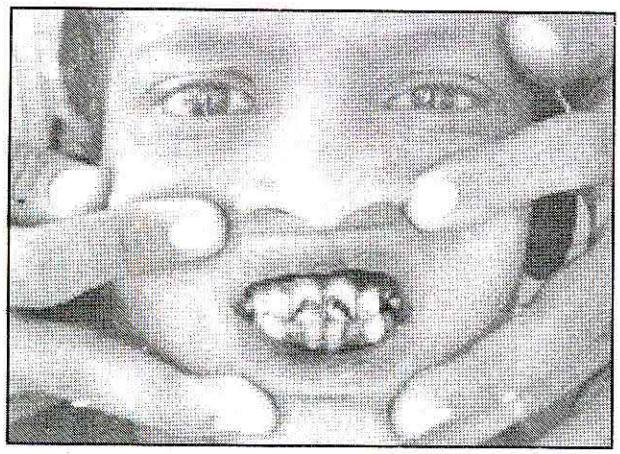

चित्र - 1

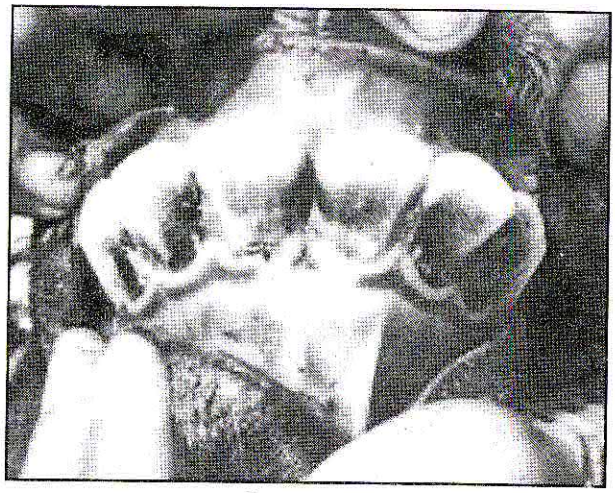

चित्र - 2

खतरनाक स्थिति कंकालीय या हड्डी - जोड़ फ्लोरोसिस में देखने को मिलती है। इसके कारण विभिन्न भागों की हड्डियों, जोड़ व इनसे जुड़ी मांसपेशियां सख्त व कठोर हो जाती हैं। गर्दन, कमर व घुटनों को थोड़ी सी गति कराने पर असहनीय तीव्र पीड़ा होती है। व्यक्ति व पशु लंगडा कर चलने लगते हैं तथा इनके हाथ पैर टेड़े-मेड़े (Genu Varum or Valgum) हो जाते हैं (चित्र - 3 व 4)। कशेरूक-दंड अथवा इसकी कशेरूकों का घनत्व एवं द्रव्यमान दोनों का बढ़ जाने से तंत्रिका-रज्जु व इससे निकली–जुड़ी विभिन्न तंत्रिकाओं तथा रुधिर वाहिनियों पर धीरे–धीरे दबाव बढ़ने से इनकी कार्य

चित्र - 3

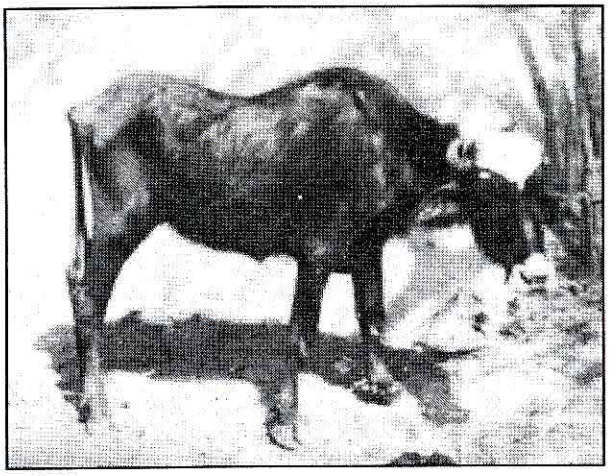

चित्र - 4

प्रणाली लगभग बंद अथवा धीमे हो जाती है। इस कारण इनके आस पास के अंगों में ऑक्सीजन की आपूर्ति कम होने तथा संवेदना समाप्त हो जाने से इससे पीड़ित व्यक्ति का नीचे का भाग या चारों हाथ–पैर निष्क्रिय हो जाने से लकवा जैसी खतरनाक बीमारी विकसित हो जाती है। यह रुग्ण अवस्था उन क्षेत्रों के 50 वर्ष से अधिक आयु के लोगों में प्रायः देखने को मिल जाती है जहां पानी में फ्लोराइड की मात्रा 3 पी.पी.एम. से अधिक पायी जाती हो।

रुधिर की लाल रक्त कणिकाओं की प्लाज्मा कला में कैल्शियम आयन पर्याप्त मात्रा में मौजूद होते हैं। इनसे फ्लोराइड जल्दी अभिक्रिया करके प्लाज्मा कला को अमीबा जन्तु के कुटपाद (सुडोपोडिया) के रूप में परिवर्तित कर देता है। इसलिए इन रुधिर कणिकाओं की आकृति "एकाईनोसाइट्स" के रूप विकसित हो जाती है। इन कणिकाओं की आयु सामान्य लाल रक्त कणिकाओं से कम होती है तथा भक्षण क्रिया (Phagocytosis) द्वारा ये जल्दी नष्ट हो जाती है। या फिर रक्त परिसंचरण से अलग हो जाती है। परिणाम स्वरूप फ्लोरोसिस से पीड़ित व्यक्ति में हीमोग्लोबिन (Hb) की मात्रा कम हो जाने से रक्ताल्पता (एनीमिया) एक और बीमारी विकसित हो जाती है। इसके अतिरिक्त फ्लोराइड के दुष्प्रभाव अक्टु (थायरॉइड) व अधिवृक्क (एड्रिनल) अंतः-स्रावी ग्रन्थियों, जनन-ग्रन्थियों, यकृत, वृक्क इत्यादि अंगों पर भी पड़ते हैं। इनकी संरचना व कार्य प्रणाली में परिवर्तन आता है, लेकिन विश्वसनीय शोध परिणामों के अभाव में तथ्यात्मक वैज्ञानिकीय जानकारियां अभी भी अधूरी एवं विवादास्पद है। फ्लोराइड विषाक्तता की प्रारंभिक अवस्था में भूख कम लगना, गैस बनना, बार बार प्यास लगना, थोड़े–थोड़े अंतराल में मल–मूत्र त्यागना, अवसाद इत्यादि विकार प्रायः देखने को मिलते हैं।

फ्लोराइड विषाक्तता के कारण गर्भस्थ शिशु की मृत्यु या फिर गर्भपात की संभावनाएँ अधिक रहती है। शोध

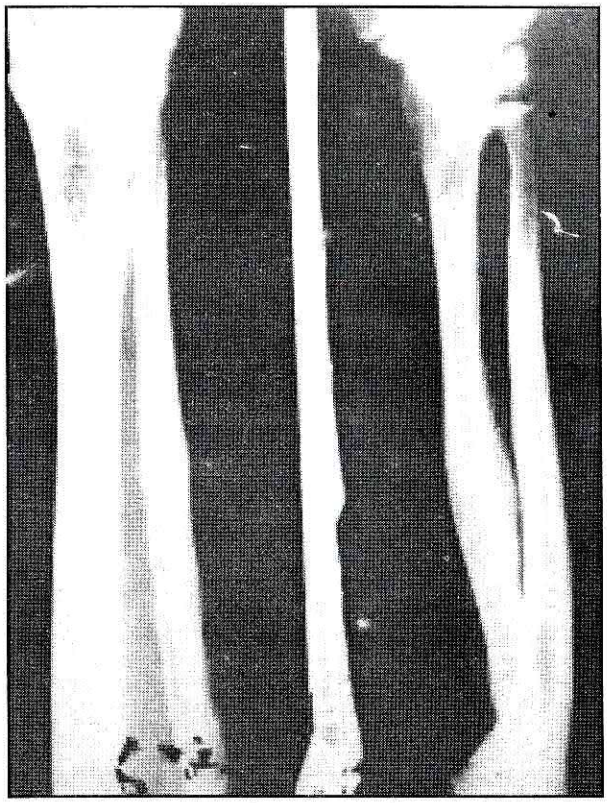

चित्र - 5

अध्ययनों के अनुसार फ्लोराइड विषाक्तता के कारण प्रजनन क्षमता पर विपरीत प्रभाव भी पड़ते हैं।

हाथ, पांव, गर्दन, कशेरूक–दंड, इत्यादि की हड्डियों का एक्स–रे (किरण) करने पर फ्लोराइड विषाक्तता स्पष्ट दिखाई दे पड़ती है। एक्स–रे फिल्म में ये अस्थियां अधिक श्वेत तथा इनकी सतह पर फ्लोराइड का जमाव अथवा अस्थियों की वृद्धि (ऑस्टियोफाइटोसिस व एक्सोस्टोसिस) साफ दिखाई देती है। इन अस्थियों से जुड़ी पेशियों में कैल्शिकरण (कैल्शिफिकेशन) के दुष्प्रभाव भी आसानी से देखने को मिल जाते हैं (चित्र - 5 एवं - 6)।

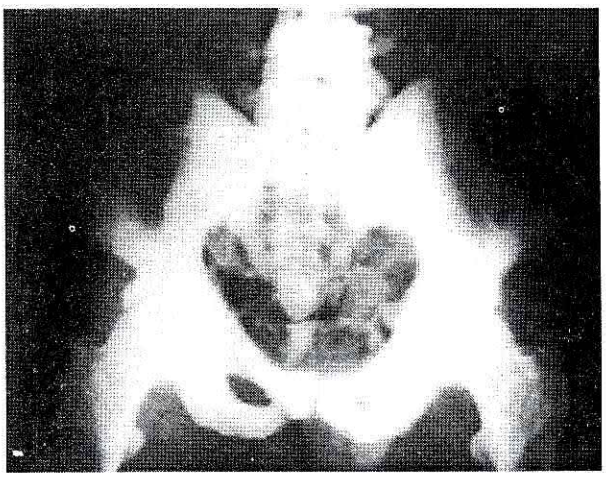

चित्र - 6

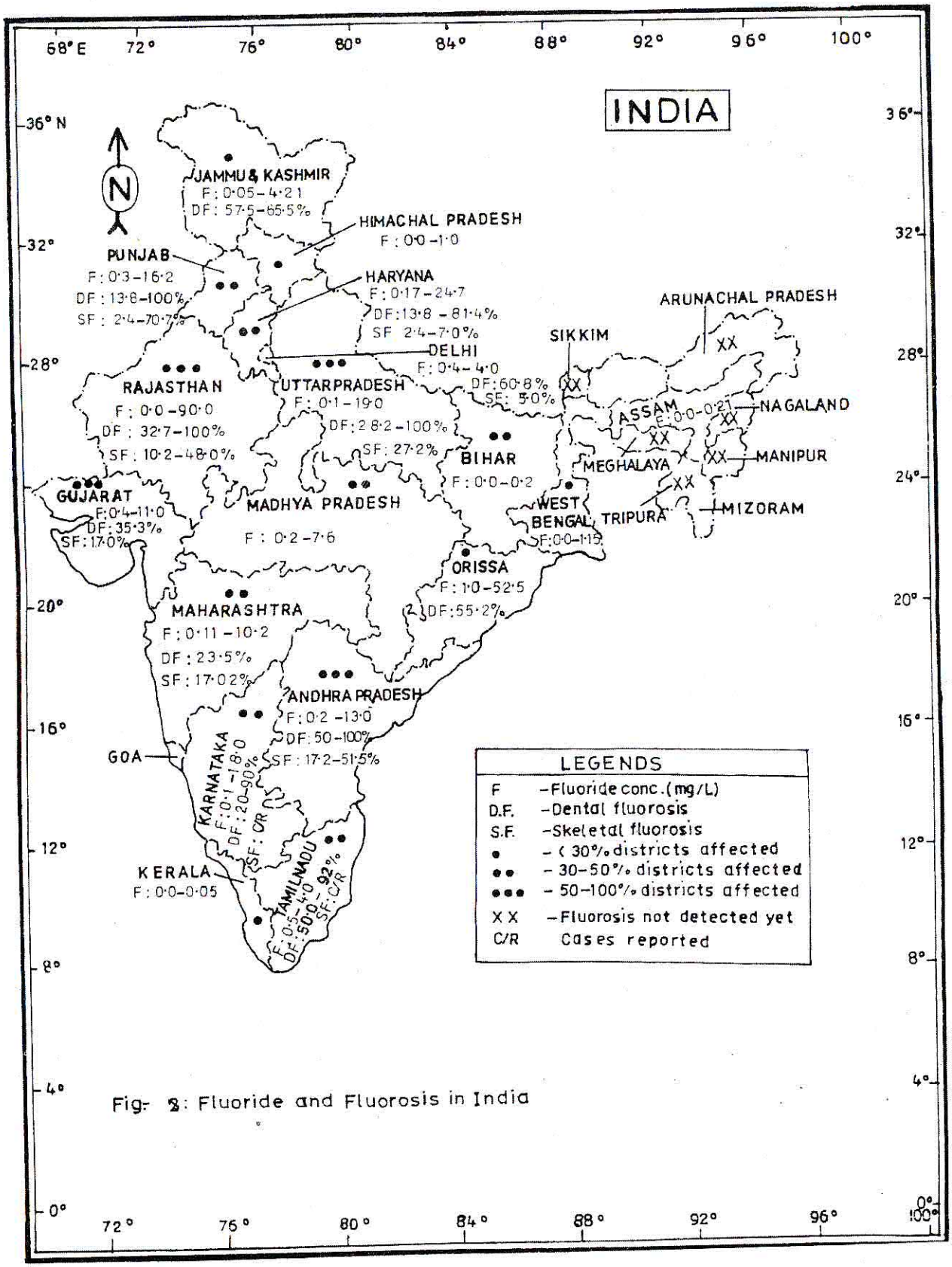

Fig- 8: Fluoride and Fluorosis in India

चित्र - 7 : भारत में फ्लोराइड एवं फ्लोरिसिस की व्यापकता

फ्लोराइड विषाक्तता के दुष्प्रभाव पशुओं में भी मनुष्यों की तरह ही पाये जाते हैं।

फ्लोरोसिस की व्यापकता :

यह बीमारी उन सभी क्षेत्रों में व्याप्त है जहां के पीने के पानी में फ्लोराइड विष पाया जाता है। शोध सर्वेक्षणों के अनुसार भारत में फ्लोरोसिस का प्रकोप लगभग सभी राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक रूप में विद्यमान है। लेकिन राजस्थान, उत्तर प्रदेश, गुजरात, आंध्र प्रदेश व तमिलनाडु में इसका प्रकोप सर्वाधिक है। राजस्थान में न केवल मनुष्यों में बल्कि पालतू पशुओं में फ्लोरोसिस के बारे में विस्तृत शोध अध्ययन हुआ है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों (राज्यों) के जल में उपस्थित फ्लोराइड की मात्रा एवं फ्लोरोसिस का प्रतिशत चित्र - 7 में दर्शाया गया है।

फ्लोरोसिस तीव्रता के कारक :

प्राप्त शोध आंकड़ों के अनुसार फ्लोराइड की सांद्रता के अतिरिक्त पीने के जल में कैल्शियम एवं अल्केलिटी भी फ्लोरोसिस की तीव्रता को प्रभावित करते हैं। पानी में कैल्शियम की मात्रा कम होने तथा एस्केलिटी का स्तर अधिक होने पर फ्लोराइड विषाक्तता की तीव्रता और बढ़ जाती है। सामान्यतयाः इसकी तीव्रता बढ़ती आयु के साथ और बढ़ती है, वहीं पुरूष ज्यादा दुष्प्रभावित होते हैं। परन्तु 13–20 वर्ष की आयु के स्त्री–पुरुषों मे दंतीय–फ्लोरोसिस की तीव्रता सबसे अधिक होती है। पुरुषों में इसकी तीव्रता इसलिए कम है कि ये कठोर श्रम ज्यादा करते हैं तथा पानी पीने की आवृत्ति स्त्रियों की तुलना में अधिक होती हैं। फ्लोराइड विषाक्तता को फ्लोराइड युक्त पानी के पीने की आवृत्ति एवं अवधि, व्यक्तिगत सुग्राहिता एवं जैविक प्रतिक्रिया, आनुवांशिकी, श्रम, भोज्य पदार्थ, शराब, चाय, तम्बाकू, गुटखा, पान-मसाला व सुपारी खाने-पीने की बुरी आदतें, क्षेत्रीय पारिस्थितिकी इत्यादि कारक फ्लोरोसिस की तीव्रता को कम-ज्यादा करते हैं। भोजन में विटामिन-ए, सी व डी की कमी होने पर फ्लोरोसिस की तीव्रता और बढ़ती है।

फ्लोरोसिस के प्रतिरोधक :

भोजन में कैल्शियम (Ca^{++}) की पर्याप्त मात्रा होने पर यह फ्लोराइड से रसायनिक अभिक्रिया करके अघुलनशील यौगिक (CaF_2) बनाता है, जो आकार में बड़ा होने से सामान्यतयाः यह मुंह व आहार नाल में अवशोषित नहीं होकर मल द्वारा शरीर से बाहर विसर्जित हो जाता है। दूध, दही, पनीर, हरी पत्तिदार सब्जियाँ इत्यादि में कैल्शियम की भरपूर मात्रा होती है। इनका नियमित सेवन करने से फ्लोराइड विषाक्तता कम होती है।

विटामेन–सी (एस्कोर्बिक अम्ल) भी फ्लोरोसिस का आदर्श प्रतिरोधक हैं। शोध अनुसार यह सह–एंजाइम के रूप में हड्डियों व दांतों के निर्माण में आवश्यक कॉलेजन प्रोटीन का अति महत्त्वपूर्ण प्रोलिन एमिनो अम्ल का हाइड्रोऑक्सीलेशन करता है, जिसके कारण अस्थियों व दांतों का कैल्शिकरण सामान्य एवं मजबूती से होता है। आँवला विटामिन-सी का सबसे अच्छा स्रोत है। इसके प्रतिदिन सेवन से फ्लोरोसिस से बचा जा सकता है। नींबू वर्ग के फलों (संतरा, मौसमी इत्यादि) व अमरूद में भी विटामिन–सी की पर्याप्त मात्रा होती है। इनके नियमित सेवन से भी फ्लोराइड विषाक्तता कम होती है।

फ्लोरोसिस बनी सामाजिक समस्या :

भारत में फ्लोराइड विषाक्तता "जन स्वास्थ्य समस्या" के साथ–साथ अब "सामाजिक समस्या" के रूप में भी विकसित हुई है। दंतीय–फ्लोरोसिस वैवाहिक संबंध में बाधक होने लगी है, वहीं फ्लोराइड युक्त क्षेत्रों में अविवाहित युवकों की संख्या में अभिवृद्धि होने के लिंगानुपात असंतुलित होने की संभावना अधिक प्रबल होने लगी है। युवतियाँ अक्सर ऐसे क्षेत्रों के युवकों से विवाह करना कम पसंद करती है वहीं युवक ऐसी युवतियों को ना पसंद करने लगे हैं, जिनके दंतीय-फ्लोरोसिस विकृति हो।

फ्लोरोसिस का नियंत्रण एवं बचाव :

यद्यपि फ्लोरोसिस का कोई भी प्रभावी उपचार अभी तक उपलब्ध नहीं है। फिर भी निम्न उपायों को अपनाने से इसके दुष्प्रभावों से बचा जा सकता है :-

- जहां तक संभव हो 1–1.5 पी.पी.एम. से अधिक फ्लोराइड युक्त पानी का सेवन नहीं करना चाहिए। फ्लोराइड मुक्त जल स्रोत न होने की स्थिति में न्यूनतम फ्लोराइड वाले जल स्रोत का पानी काम लेना उपयुक्त है।
- फ्लोराइड युक्त उत्पादकों जैसे सुपारी, तम्बाकू, काला व लाल नमक, औषधियां, टूथपेस्ट, शराब, चाय इत्यादि का सेवन कम करना चाहिये।
- विटामीन–सी व कैल्शियम युक्त भोज्य पदार्थों का नियमित सेवन व संतुलित आहार लेना चाहिए।
- गर्भवती एवं दुग्धपान कराती महिलाएं फ्लोरोसिस की अधिक सुग्राही होती है। इन्हें फ्लोराइड युक्त जल नहीं पीना चाहिये।
- फ्लोराइड मुक्त जल के लिए सामुदायिक स्तर पर "नालगोंडा" तकनीक व घरेलू स्तर पर "एक्टीवेटेड एल्युमिना" विधि अधिक उपयुक्त व कारगार साबित हुई है।

✧✧✧

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (2008) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त (अहिंदी)

भारतीय क्षेत्रीय नौसंचालन उपग्रह प्रणाली - आईआरएनएसएस

जितेन्द्र खर्डे

अंतरिक्ष उपयोग केंद्र, अहमदाबाद - 380 015

भारत अपने देश की नौसंचालनीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उपग्रह आधारित स्वतंत्र एवं संपूर्ण आत्मनिर्भर नौसंचालन प्रणाली स्थापित करने जा रहा है, जो भारतीय उपमहाद्वीप क्षेत्र में विभिन्न उपयोगकर्ताओं को 20 मीटर तक की यथार्थता (लक्ष्यांक < 10 मीटर) से स्थिति (पोजिशन अक्षांश-रेखांश), स्वतंत्र नौसंचालन (भूमि, समुद्र एवं वायु विस्तार में), सटीक समय (< 10 नैनो सेकंड की यथार्थता से) एवं ऊंचाई (एलटीट्यूड) आदि उपयुक्त सुविधाएं प्रदान करेगी। प्रस्तुत लेख में इस प्रणाली के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

उपग्रह नौसंचालन प्रौद्योगिकी ने नौसंचालन के क्षेत्र में दुनिया में एक अभूतपूर्व क्रांति ला दी है। जहाँ सटीक स्थिति निर्धारण एवं परिशुद्ध समय की सूचना मूलभूत आवश्यकताएं हैं उन सभी क्षेत्रों में इस प्रौद्योगिकी ने अपनी उपयोगिता की अनिवार्यता सिद्ध कर दी है और दिन-प्रतिदिन अनेक नये-नये क्षेत्र इस प्रणाली से लाभान्वित हो रहे हैं।

अंतरिक्ष आधारित नौसंचालन प्रणालियां जो वर्तमान में प्रचलित है उनमें प्रमुख हैं, अमरीका की वैश्विक स्थिति निर्धारण प्रणाली जो 'जीपीएस' के संक्षिप्त नाम से प्रचलित है। अन्य प्रणालियों में रूस की ग्लोनास, यूरोप की गेलीलिओ एवं अन्य वैश्विक नौसंचालन प्रणालियां (जीएनएसएस) हैं। उपरोक्त सभी प्रणालियों में जीपीएस ही प्रमुख है जिसका सारे विश्व में महत्तम उपयोग हो रहा है। जीपीएस की सेवाएं भारतीय भू-क्षेत्र में भी सरलता से उपलब्ध हैं लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि आपातकाल में या युद्ध के दौरान यह सुविधा हमें उपलब्ध न हो या फिर इस प्रणाली द्वारा प्राप्त आंकड़ों में कुछ त्रुटि निर्मित की जा सकती है। क्योंकि यह प्रणाली संपूर्णतः अमरीका के रक्षा विभाग

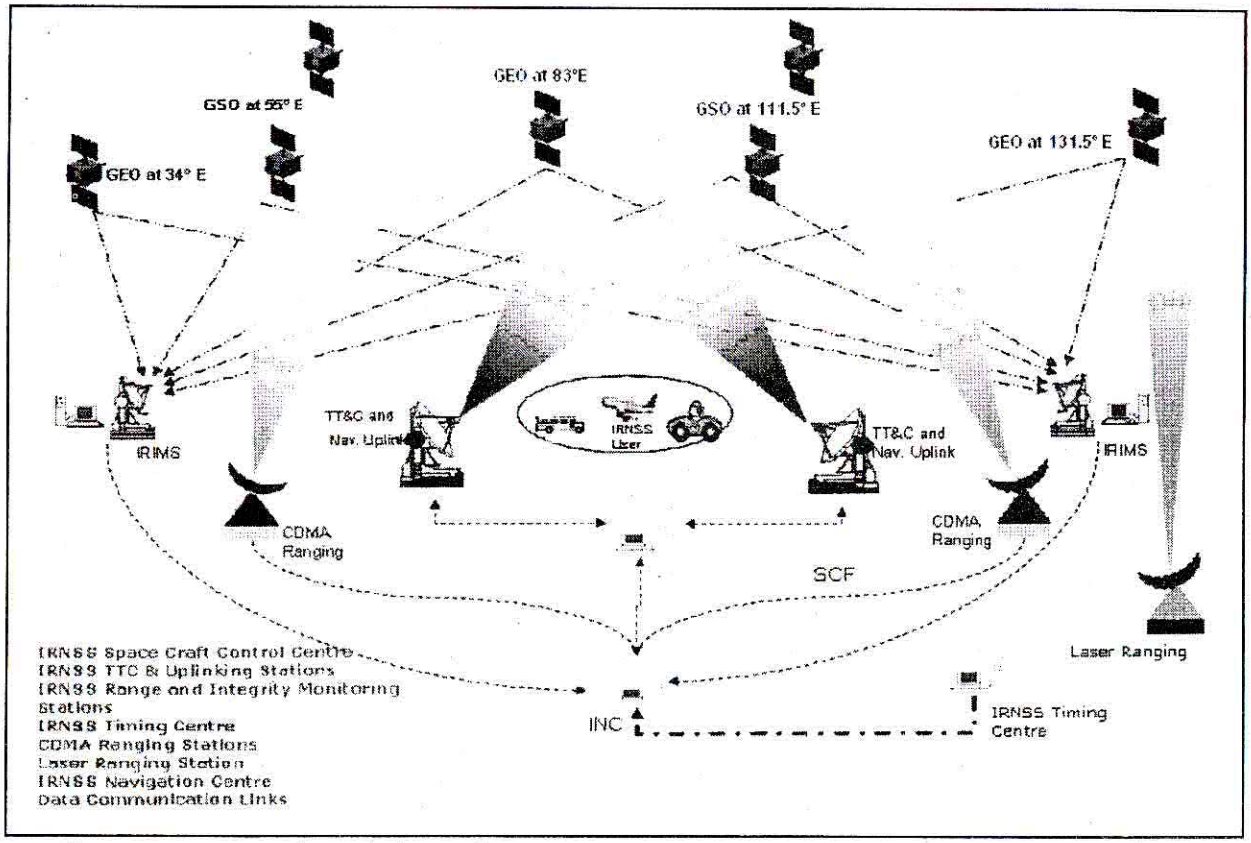

चित्र - 1 : भारतीय क्षेत्रीय नौसंचालन उपग्रह प्रणाली का सामान्य खंड आलेख

द्वारा नियंत्रित है। संक्षिप्त में कहा जाये तो आपातकाल में जीपीएस की सुविधाएं संदेहास्पद हैं।

उपग्रह आधारित नौसंचालन प्रणाली की बहुहेतुक विशिष्टताओं को देखते हुए वर्तमान समय में इस प्रणाली का कोई विकल्प नहीं है। उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए अंतरिक्ष विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी क्षेत्र में कार्यरत अनेक विकासशील देश अपनी स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर उपग्रह आधारित नौसंचालन प्रणाली विकसित करने जा रही है। जिसमें चीन (स्नोस, बीयडो), जापान (एमसास, क्युझेडएसएस), यूरोप (इग्नोस, गेलीलिओ) एवं भारत की गगन परियोजना प्रमुख है। भारत की गगन वर्तमान में प्रचलित जीपीएस का विस्तारित रूप ही है। इसलिए भारत भी अपने देश की नौसंचालनीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उपग्रह आधारित क्षेत्रीय नौसंचालन प्रणाली स्थापित करने जा रहा है जो भारतीय उपमहाद्वीप क्षेत्र में विभिन्न उपभोगकर्ताओं को <20 मीटर तक की यथार्थता (लक्ष्यांक <10 मीटर) से स्थिति (पोज़िशन), परिशुद्ध समय (10 नेनोसेकंड की यथार्थता से), ऊँचाई, वेग आदि उपयुक्त सुविधाएं प्रदान करेगी। अतिरिक्त अंतरिक्ष घटकों को शामिल करने की विस्तृत सामर्थ्यता से इसे क्रमशः विस्तारित भी किया जा सकता है जिससे पड़ोसी देशों को लाभान्वित किया जा सकता है। इस प्रस्तावित क्षेत्रीय नौसंचालन प्रणाली के मुख्य निष्पादन उद्देश्य हैं :

- ❑ देश की नौसंचालनीय जरूरतों को पूरा करने के लिए पूर्णतः स्वतंत्र एवं स्वनियंत्रित उपग्रह आधारित नौसंचालन तंत्र का अभिकल्पन, विकास एवं कार्यन्वयन।
- ❑ विभिन्न उपयोगकर्ताओं को निम्नलिखित विनिर्देशित स्थिति निर्धारण, नौसंचालन एवं समय की जानकारी उपलब्ध कराना।
- ❑ उच्च यथार्थता से वास्तविक काल में स्थिति निर्धारण सेवा <20 मीटर यथार्थता से (लक्ष्यांक <10 मीटर)
- ❑ <20 सेकेंड यथार्थता से समय की जानकारी (लक्ष्यांक <10 नैनो सेकंड)
- ❑ प्राधिकृत उपयोगकर्ताओं को समय के साथ वेग की भी जानकारी उपलब्ध
- ❑ आयन मंडलीय संशोधन के साथ सभी ऋतु में प्रचालन
- ❑ उच्चतम उपलब्धता (24 × 7) 99.9%
- ❑ भारतीय भू-क्षेत्र उपरांत 1500 किमी. आस-पास के क्षेत्रों में भी नौसंचालनीय सेवा उपरोक्त यथार्थता से उपलब्ध
- ❑ बाद में इस सेवा क्षेत्र को भी अतिरिक्त अंतरिक्ष घटकों को शामिल करने की क्षमता से विस्तारित किया जा सकता है।

इस प्रस्तावित क्षेत्रीय नौसंचालन प्रणाली के मुख्य तीन भाग है;

1. अंतरिक्ष खंड (स्पेश सेगमेंट)
2. भूमि खंड (ग्राउंड सेगमेंट)
3. उपयोगकर्ता खंड (यूजर सेगमेंट)

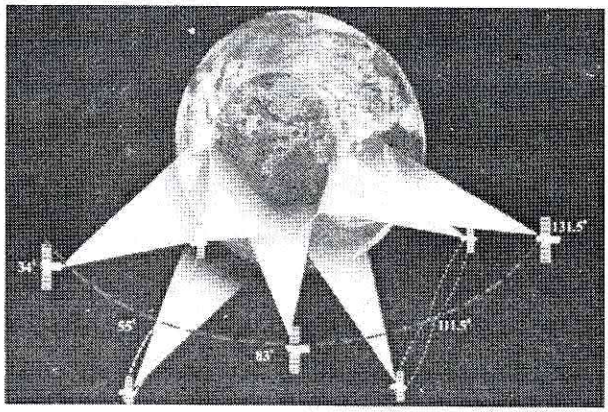

चित्र -2 : आई आर एन एस एस प्रणाली का अंतरिक्ष खंड (स्पेस सेगमेंट)

1) अंतरिक्ष खंड :- किसी भी अंतरिक्ष आधारित नौसंचालन प्रणाली में उपयोगकर्ता को स्थिति निर्धारण प्रक्रिया हेतु न्यूनतम चार उपग्रहों की निरंतर दृष्यंता अत्यावश्यक है। इसलिए अनेक विभिन्न उपग्रहीय तारमंडलों का अध्ययन किया गया। अनेक विकल्प सोचे गये, उनका कंप्यूटर सिम्युलेशन भी किया गया। कम लागत, सरल प्रचालन, उपयोगकर्ता को पायी जाने वाली यथार्थता एवं सेवा क्षेत्र को ध्यान में रखने हेतु गहन अध्ययन के पश्चात इस प्रस्तावित नौसंचालन प्रणाली के लिए सात उपग्रहों का तारामंडल निश्चित किया गया, जिसमें तीन उपग्रह भू-स्थिर भ्रमणकक्षा (GEO) में क्रमशः 34°, 83°, 132° रेखांश पर स्थापित किये जाएंगे। शेष चार उपग्रह में दो उपग्रह भू-तुल्यकाली भ्रमण कक्षा (GSO) में 55° अक्षांश पर और अन्य दो 111° अक्षांश पर 29° झुकाव के साथ स्थापित किये जाएंगे। इस प्रकार की ज्यामितीय संरचना से चार उपग्रह निरंतर भारतीय भू-क्षेत्र (सेवा क्षेत्र) में उपयोगकर्ताओं को स्थिति निर्धारण प्रक्रिया हेतु हमेशा दृष्टमान रहेंगे। इस तारामंडलीय संरचना से 3.0 से बेहतर की जीडीओपी (GEOMETRICAL DILUTION OF PRECISION) प्राप्ति भी सुनिश्चित की गयी है। इन सभी उपग्रहों को भारतीय ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण यान (पीएसएलवी) द्वारा सतीश धवन उपग्रह केंद्र (श्रीहरिकोटा) से अंतरिक्ष भू-स्थानांतरण भ्रमणकक्षा में प्रक्षेपित किया जाएगा।

उपग्रह संरूपण :- इस प्रणाली के सभी सात उपग्रहों की संरचना एक समान होगी। प्रदायभार एवं अन्य सभी उपकरण इसरो के कल्पना बस (11kbus) में विशेष नौसंचालन अभियान हेतु आवश्यक परिवर्तन करके समन्वित किया गया है। उपग्रह का उत्थापन भार (LIFTOFF MASS) 1425 किग्रा. के साथ-साथ शुष्क भार (DRY MASS 616 किग्रा. होगा। सौर पैनल का क्षेत्र 2.15 मी. × 1.8 मी. रखा गया है जो 1268 वॉट पावर ऊर्जा देगा। ग्रहण के दौरान ऊर्जा पूर्ति के लिए 64 Ah Li-ion बैटरी भी रखी गई है। इन सभी उपग्रहों को भूमि-खंड स्थित सेवा क्षेत्र में वितरित नियंत्रण केंद्रों द्वारा निरंतर मॉनीटर किया जाएगा।

2) भूमि खंड : भूमि खंड मुख्यतः अंतरिक्ष में उपग्रह तारामंडल का नियंत्रण, संचालन एवं नौसंचालन आंकड़े निर्माण करने के लिए अविरत कार्य करेगा। इस भूमि खंड में निम्नलिखित आवश्यक सुविधाएं होगीं।

1. उपग्रह नियंत्रण केंद्र
2. नौसंचालन नियंत्रण केंद्र
3. परासन केंद्र (सीडीएमए एवं लेसर परासन)
4. समय एवं आंकड़ा उर्ध्व-कड़ी स्टेशन
5. आंकड़ा संचार जाल

उपग्रहों की अंतरिक्ष में सही स्थिति, उनकी कक्षा संबंधी ताजा-सूचनाएं प्राप्ति के लिए, दूरमिति-दूरादेश एवं आयनमंडलीय मॉडलिंग /संशोधन प्रक्रिया के लिए 20 परास एवं इंटिग्रीटी मॉनीटरिंग स्टेशन (IRIMS) संपूर्ण सेवा क्षेत्र में वितरित किये जाएंगे, जिनमें 6 सीडीएमए परासन, 1 लेसर परासन केंद्र एवं 1 परमाण्विक घड़ी से सज्जित नेटवर्क टाईमिंग सेंटर भी शामिल हैं।

नौसंचालन नियंत्रण केंद्र का मुख्य कार्य तंत्र के आंकड़ा संचार जाल द्वारा प्राप्त सूचनाओं को संसाधित करके एक परिभाषित नौसंचालन संदेश (1500bps) का निर्माण करना जिसमें उपग्रह की अंतरिक्ष में कक्षीय स्थिति (ALMANAC), समय, आयनमंडलीय त्रुटि-संशोधन एवं अन्य संशोधित सूचनाएं होती है, को तंत्र के अप-लिंक स्टेशन को भेजना है।

3) उपयोगकर्ता खंड : उपयोगकर्ता खंड में उपभोक्ता अपने नौसंचालन अभिग्राही (रिसीवर) के द्वारा भारतीय भू-क्षेत्र (भूमि, वायु एवं समुद्र) में सही स्थिति निर्धारण सेवा एवं सटीक समय की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रणाली द्वारा वैश्विक स्थिति निर्धारण प्रणाली (जीपीएस) के समान दो प्रकार की सेवाएं उपलब्ध करायी जाएगी। जिसमें (1) सामान्य स्थिति निर्धारण सेवा जो सभी प्रकार के उपभोक्तओं को सरलता से उपलब्ध होगी जिसमें <20मी. तक की यथार्थता अपेक्षित है, और (2) सूक्ष्म स्थिति निर्धारण सेवा जो सीमित प्राधिकृत उपभोक्ताओं को ही उपलब्ध करायी जाएगी। सूक्ष्म स्थिति निर्धारण सेवा की यथार्थता सामान्य स्थिति निर्धारण सेवा की यथार्थता से कई गुना बेहतर होगी। इस सेवा में स्थान (पोजिशन) के अतिरिक्त सटीक समय, वेग, ऊंचाई की सूचना भी शामिल है और ये सभी संकेत गुप्तलिखित (एन्क्रिटिड) स्थिति में होंगे। इस सेवा को प्राप्त करने के लिए उपयोगकर्ता को द्वि-आवृत्ति अभिग्राही का उपयोग करना होगा।

4) उपयोग :

* आईआरएनएसएस प्रणाली का संभावित अनुप्रयोग
* स्वतंत्र, स्वनियंत्रित एवं स्व निर्भर क्षेत्रीय नौसंचालन प्रणाली
* उच्च यथार्थता से स्थिति निर्धारण सेवा
* अति सटीक समय की जानकारी
* आयनमंडलीय संशोधन के साथ सभी ऋतु में प्रचालन
* अधिकतम उपलब्धता (24 × 7) 99.9%
* सैनिकी सेवा के लिए संकेत गुप्त लेखन की भी सुविधा
* संबाधन एवं व्यक्तिकरण रोधी अभिग्रहण
* भारतीय भूमि क्षेत्र अतिरिक्त 1500 किमी. तक के क्षेत्र में सेवा उपलब्ध

उपग्रह आधारित नौसंचालन प्रणालियां जो वर्तमान में प्रचलित है उनमें जीपीएस ही मुख्य है जिसका अधिकतम उपयोग हो रहा है। यह प्रणाली संपूर्णतः अमरीकी सेना द्वारा नियंत्रित है। इस प्रणाली के विकल्प स्वरूप एक क्षेत्रीय नौसंचालन प्रणाली विकसित करना अत्यावश्यक हो गया है जो संपूर्णतः हमारे नियंत्रण में हो और देश के सैनिकी एवं निजी उपयोगकर्ताओं को उचित यथार्थता से स्थिति-निर्धारण एवं नौसंचालन सुविधाएं प्रदान कर सके। उपरोक्त प्रस्तावित भारतीय क्षेत्रीय नौसंचालन उपग्रह प्रणाली (आईआरएनएसएस) परियोजना भारतीय अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण अभियान है। नौसंचालन सेवा के क्षेत्र में भारत का यह प्रथम प्रयास है जो देश के विभिन्न उपभोक्ताओं को उचित यथार्थता से स्थिति निर्धारण, नौसंचालन एवं अन्य उपयुक्त सेवाएं प्रदान करेगा। उपग्रह आधारित नौसंचालन सेवा की विस्तृत उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए इस प्रणाली को जल्द ही स्थापित किया जाएगा। बाद में इस प्रणाली के सेवा क्षेत्र को धीरे-धीरे विस्तृत भी किया जा सकता है जिससे पड़ोसी क्षेत्रों को नौसंचालन सेवा उपलब्ध हो सके।

❑❑❑

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेखन प्रतियोगिता (2008) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त (अहिंदी वर्ग)

नैनो तकनीकी के दो आधार स्तंभ : क्रमवीक्षण संसूचक तकनीक तथा परमाणु बल संसूचक तकनीक

डॉ. यशवंत नाईक

उत्पाद विकास प्रभाग, रेडियो रसायनिकी एवं समस्थानिक वर्ग, भा. प. अ. केंद्र, मुंबई- 400 085.

आज हम देखते हैं कि नित्य कंप्यूटरों की क्षमता बढ़ती जा रही है किन्तु उनका आकार कम होता जा रहा है। नैनो तकनीकी के विकास के कारण यह संभव हो पाया है । इस तकनीक के बारे में तो सब जानते हैं किन्तु इसके अध्ययन के लिए आवश्यक उपकरणों के बारे में हमें कम ही ज्ञान प्राप्त है। किसी पदार्थ को परमाणु स्तर की विभेदन क्षमता पर देख पायें तभी नैनो तकनीक की प्रामाणिकता सिद्ध की जा सकती है। इस कार्य के लिए आज दो प्रमुख उपकरण उपलब्ध हैं, जिनकी विवेचना इस लेख में दी गई है। साथ ही उनकी कार्यप्रणाली तथा उनके सैद्धांतिक आधार को जानने का प्रयास भी किया गया है।

क्रमवीक्षण संसूचक तकनीक (यथा स्कैनिंग टनलिंग माइक्रोस्कोप) अनुसंधान के लिए एक महत्त्वपूर्ण खोज है। इस तकनीक के उपयोग से किसी भी पदार्थ का अभिलक्षण परमाणु स्तर की विभेदन क्षमता से संभव है। आज कई प्रकार के क्रमवीक्षण संसूचक यंत्रों का विकास किया जा चुका है जिनके उपयोग से किसी भी प्रकार के पदार्थों के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी उच्च स्तर पर प्राप्त की जा सकती है। जैसे, पदार्थ की बनावट आवर्तीय है या नहीं, स्थिर विद्युतीय है या नहीं इत्यादि के बारे में जानकारी चुम्बकीय या उसकी स्थलाकृत आकृतियाँ, प्रकाशिकी तथा अन्य गुणधर्मों के आधार पर प्राप्त की जा सकती है।

इस तकनीक का उपयोग चालक तथा कुचालक दोनों प्रकार के पदार्थों के लिए किया जा सकता है। प्रकीर्णन तकनीकों का उपयोग इस प्रकार के अध्ययनों में बहुतायत से होता है। इस तकनीक के उपयोग से विभिन्न पदार्थों की सतहों के गुणवत्ता के चित्र लिए जा सकते हैं। कई ऐसे पदार्थ भी होते हैं जिनकी सतह से प्रकीर्णन संभव नहीं होता, अतः ऐसे पदार्थों के अध्ययन के लिए क्रमवीक्षण तकनीक ही एकमात्र तकनीक रह जाती है जिसे अनुपूरक तकनीक के रूप में भी अपनाया जाता है।

प्रकीर्णन संसूचक सूक्ष्मदर्शी का सिद्धांत

प्रकीर्णन सूक्ष्मदर्शी का सिद्धांत एकदम सरल है। जैसे कि चित्र-1 में विदित है, इस तकनीक में एक सूक्ष्म संसूचक छड़ (या पट्टिका) का उपयोग किया जाता है, जिसका आकार नैनो मीटर से कम होता है। इसी के उपयोग से पदार्थ की सतह का सूक्ष्म निरीक्षण किया जाता है इस संसूचक छड़-को सतह पर x - y दिशा में नैनो मीटर से कम के अंतराल में चलाया जाता है। संगणकों के उपयोग से इस प्रकार संपूर्ण सतह की जानकारी प्राप्त कर ली जाती है तथा गणितीय पुनर्निर्माण (कॉपियर) के उपयोग से संपूर्ण चित्र तैयार कर लिया जाता है। इस प्रकार परमाणु स्तर की विभेदन की क्षमता से पदार्थ की जानकारी प्राप्त की जाती है जो कि पदार्थ के अणुओं तथा संसूचक पट्टिका की टिप के परमाणुओं के बीच हो रही अन्योन्य क्रिया के आधार पर होती है। अतः सूक्ष्म संसूचक की गुणवत्ता उत्तम होने पर इस प्रकार के सतही अभिलक्षण परमाणु से भी अधिक विभेदन क्षमता से प्राप्त किये जा सकते हैं। इस संसूचक की नोक का आकार .01-0.1 नैनो मीटर के बराबर आकार होने के कारण ही यह विभेदन क्षमता संभव है।

क्रमवीक्षण तकनीक का इतिहास :

क्रमवीक्षण तकनीक का विकास 1981 में सर्वप्रथम बने क्रमवीक्षण सुरंगीय सूक्ष्मदर्शी के निर्माण के साथ प्रारंभ हुआ था। यह तकनीक आज भी, अन्य क्रमवीक्षण तकनीकों की तुलना में उच्च विभेदन क्षमता से पदार्थ की सतह की जानकारी देती है। इस तकनीक का उपयोग आज अर्धचालक उद्योग, धातु की विज्ञान, जैव विज्ञान इत्यादि में हो रहा है। आज के संगणकीय संसार में नैनो चिप के कारण संगणकों की गुणवत्ता में निखार तो आया ही है साथ ही संगणक का आकार तक सिकुड़ गया है तथा यह समय के साथ साथ सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता जा रहा है व गुणवत्ता में और भी निखर रहा है। इस प्रकार के प्रारंभिक क्रमवीक्षण सुरंगीय सूक्ष्मदर्शी में एक धातु की सतह जो कि विद्युत चालक हो, का चित्र एक

अत्यंत सूक्ष्म छड़ के आकार के संसूचक तथा जाँचे गये चालक के बीच प्रवाहित हो रहे सुरंगीय विद्युत धारा का मापन करके प्राप्त किया जाता है। अतः इस विधि के उपयोग से अति विभेदन क्षमता के साथ चित्र प्राप्त किया जा सकता है। चूंकि इस विधि से परमाणु के आकार से भी कम चौड़ाई की विभेदन क्षमता प्राप्त की जा सकती है, अतः इस तकनीक का उपयोग कर क्रिस्टल में बिन्दु दोष स्थानों का पता लगाया जा सकता है। इस प्रकार की जानकारी के आधार पर उत्तम किस्म के अर्धचालक व अकार्बनिक क्रिस्टल उद्योग में नयी गुणवत्ता के आधार निर्धारित किये गये हैं।

लगभग सभी क्रमवीक्षण सूक्ष्मदर्शी तकनीकों की कार्यप्रणाली में तीन महत्त्वपूर्ण अवयव होते हैं।

1) लगभग सभी क्रमवीक्षण संसूचक तकनीकों में एक अत्यंत सूक्ष्म संसूचक होता है जो कि जाँचे जा रहे पदार्थ की सतह के अत्यंत (यानि लगभग 0.01 नैनो मीटर) समीप से घुमाया जाता है।

2) एक मापन उपकरण के द्वारा इस संसूचक तथा सतह के बीच हो रही अन्योन्य क्रिया के आधार पर पदार्थ की सतह की बनावट तथा उसके विभिन्न भौतिक गुणधर्मों की जानकारी प्राप्त की जाती है। इस अन्योन्य क्रिया के कारण उत्पन्न संसूचना की तीव्रता में संसूचक छड़ चलते-फिरते समय हो रहे परिवर्तनों के आधार पर सतह की स्थलाकृति तथा अन्य गुणधर्मों की जानकारी नैनो मी. से भी कम विभेदन के साथ प्राप्त किये जा सकते हैं।

लगभग बीस या पच्चीस प्रकार के विभिन्न क्रमवीक्षण संसूचक सूक्ष्मदर्शी आज बाजार में उपलब्ध हैं। किन्तु अनुसंधान कार्यों में आज भी क्रमवीक्षण सुरंगीय सूक्ष्मदर्शी तथा परमाणुवीय बल सूक्ष्मदर्शी अत्यंत उपयोगी उपकरण माने जा रहे हैं जिनके उपयोग से डी.एन.ए. की संरचना जानने में, उसमें विकिरण के प्रभाव से हो रहे परिवर्तनों के बारे में, अत्यंत लाभकारी जानकारी प्राप्त हुई है। आज अधिकतर प्रयोगशालाओं में क्रमवीक्षण संसूचक तकनीक का उपयोग परमाणुवीय बल सूक्ष्मदर्शी की तुलना में कम हो रहा है क्योंकि परमाणुवीय बल सूक्ष्मदर्शी के उपयोग से कई प्रकार के पदार्थों के सूक्ष्म चित्र अधिक विभेदन क्षमता के साथ प्राप्त किये जा सकते हैं। इस विधि में चित्र प्राप्त करने के लिए संसूचक छड़ के अणु तथा जाँची जा रही सतह के अणुओं के बीच कार्यरत विभिन्न बल जैसे वांडर-वाल या स्थिर विद्युत अथवा चुंबकीय आकर्षण-विकर्षण बल हो सकते हैं। इन दो पूर्ववर्ती उपकरणों के साथ ही आज कई नयी क्रमवीक्षण तकनीकों का विकास हो रहा है, जिसमें नैनो संसूचक तथा सतह के बीच विभिन्न प्रकार की अन्योन्य क्रियाओं के आधार पर सतह पर तापमान का सामान्य वितरण, कंपन इत्यादि की जानकारी प्राप्त की जाती है। किन्तु इन सभी में इन दोनों के साथ निकटस्थ प्रकाशिकी सूक्ष्मदर्शी ही इन दोनों की तुलना में कुछ सफल हो सके। क्योंकि आज लेजर विकिरण के उपयोग से अत्यंत सूक्ष्म अंतराल की जानकारी नैनो स्तर की विभेदन क्षमता के साथ प्राप्त किये जा रहे हैं। चूंकि प्रमुख प्रयोगशालाओं में आज भी क्रमवीक्षण संसूचक तकनीक तथा परमाणुवीय बल सूक्ष्मदर्शी तकनीकों का प्रयोग ही ज्यादा प्रचलित है, अतः इस लेख में इन्हीं दोनों विधियों की कार्यप्रणाली को समझने का प्रयास किया गया है।

क्रमवीक्षण सुरंगीय सूक्ष्मदर्शी प्रणाली :

जैसा कि चित्र-2 से स्पष्ट होता है, इस विधि में एक अत्यंत सूक्ष्म, धातु की बनी पट्टी को जाँचे जा रहे पदार्थ की सतह के अत्यंत करीब पहुँचाया जाता है। यह अंतर इतना कम होता है कि अगर पदार्थ तथा इस पट्टी (जिसे संसूचक कहते हैं) के बीच विभव परास होने पर विद्युत धारा बहने लगती है जबकि सतह तथा पट्टी एक दूसरे से जुड़े नहीं होते हैं। इस विद्युत धारा को सुरंगीय-विद्युत धारा कहते हैं। सतह तथा संसूचक के बीच अंतर होने के बावजूद यह विद्युत धारा क्वांटम यांत्रिक प्रभाव के कारण प्रवाहित होती है। एक बार संसूचक तथा

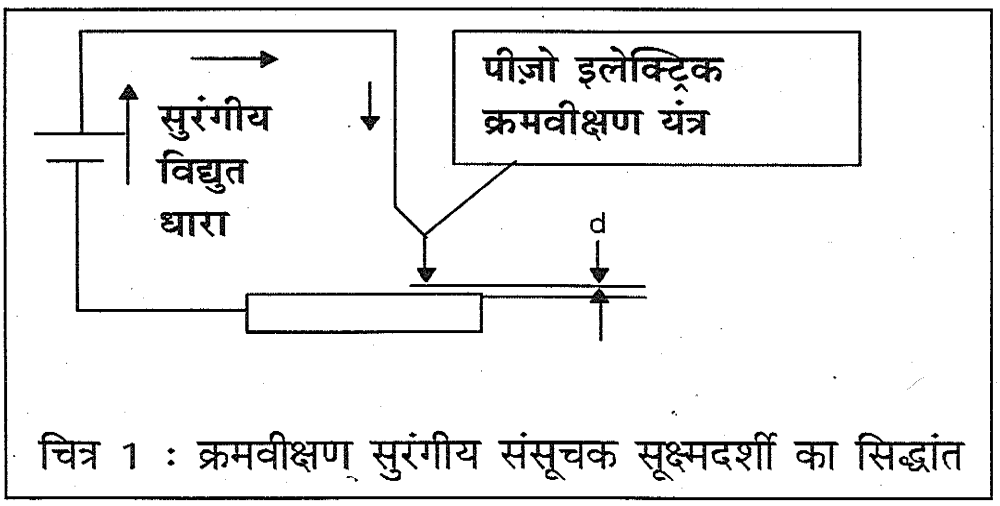

चित्र 1 : क्रमवीक्षण सुरंगीय संसूचक सूक्ष्मदर्शी का सिद्धांत

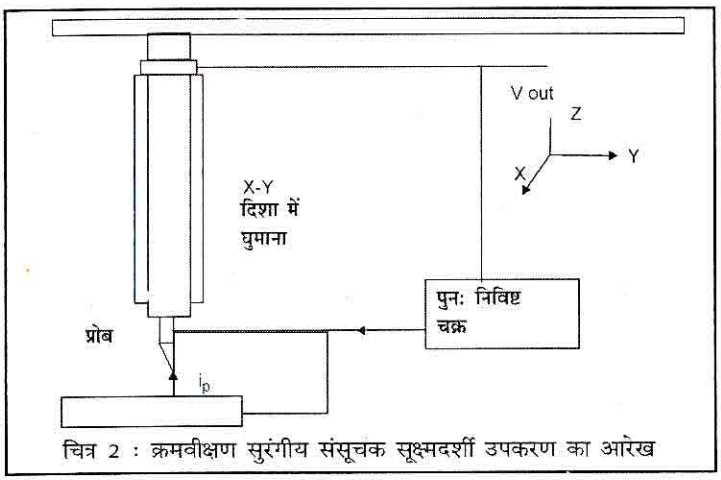

चित्र 2 : क्रमवीक्षण सुरंगीय संसूचक सूक्ष्मदर्शी उपकरण का आरेख

सतह के बीच सुरंगीय विद्युत धारा बहना प्रारंभ हो जाने के बाद संसूचक को सतह पर X-Y दिशा में अत्यंत सूक्ष्म अंतराल से चलाकर संपूर्ण सतह का सूक्ष्म चित्रण किया जाता है। सुरंगीय विद्युत धारा में हो रहे परिवर्तनों के आधार पर सतह की बनावट के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर संगणक के उपयोग से सतह के विभिन्न गुणधर्मो की जानकारी प्राप्त की जाती है।

चूंकि इस विधि में विद्युत धारा का बहना आवश्यक है अतः यह विधि केवल विद्युत चालक पदार्थों के अध्ययन के लिए ही उपयोगी होती है जो कि इस विधि के लिए एक सीमा बंधन है। क्रमवीक्षण का अंतराल हम इस विधि से कुछ नैनो मीटर से कम से लेकर कुछ माइक्रोमीटर तक स्थापित कर सकते हैं। इस विधि के कार्य का आधार पदार्थ तथा संसूचक पट्टी के बीच बहने वाले सुरंगीय विद्युत धारा में होने वाले बदलाव हैं, इसलिए इस विधि का नाम क्रमवीक्षण सुरंगीय संसूचक सूक्ष्मदर्शी पड़ा।

संक्षेप में कहे तो इस विधि की कार्यप्रणाली निम्नानुसार है :

1) एक धातु की बनी सूक्ष्म (0.01 नैनो मीटर) पट्टी का संसूचक पदार्थ के अत्यंत समीप स्थिर किया जाता है। सतह व संसूचक के बीच का अंतर 0.1 नैनो मीटर से भी कम रखा जाता है।

2) पदार्थ तथा संसूचक के बीच विभव परास देने पर दोनों के बीच सुरंगीय विद्युत धारा बहने लगती है।

3) संसूचक पट्टी की सतह पर X-Y दिशा में सूक्ष्म अंतराल से चलाने-फिराने पर सुरंगीय विद्युत धारा में सतह पर स्थित परमाणु तथा इलेक्टॉनों के आधार पर परिवर्तन होते हैं जिन्हें नापा जाता है।

4) संगणक के उपयोग से सतह का चित्र बनाया जाता है।

अतः यह स्पष्ट है कि सुरंगीय विद्युत धारा प्रवाह के मापन से किसी भी विद्युत चालक पदार्थ के सतह पर स्थित परमाणुओं तथा उनके आसपास इलेक्ट्रॉन की संरचना का पता लगाया जा सकता है। नैनो संसूचक तथा सतह के बीच इतना कम अंतर होने के कारण ही दोनों के तरंग फलन एक दूसरे पर अतिव्यापित होते हैं। इसी कारण इलेक्ट्रॉन के लिए इस संसूचक तथा सतह के बीच रोधक को पार करने की संभावना बढ़ जाती है। सामान्यतः संसूचक को शून्य विभव पर रखा जाता है तथा जाँचे जा रहे चालक पदार्थ को संसूचक के सापेक्ष में कुछ मिलीवोल्ट बायस दिया जाता है जिसके कारण दोनों के बीच सुरंगीय विद्युत धारा स्थापित हो जाती है। सामान्यतः दो चालक पदार्थों के बीच विद्युत धारा तभी प्रवाहित होती है जब वे एक दुसरे से जुड़े हों किन्तु यहाँ पर उनके बीच अंतर होने के बावजूद एक विद्युत धारा बहती है। इस विद्युत धारा को सुरंगीय विद्युत धारा कहते हैं।

क्वांटम बल विज्ञान के आधार पर यह समझना आसान है कि दोनों सतहों के बीच का अंतर विद्युत धारा के प्रवाह के लिए एक रोधक का कार्य करता है। सुरंग फ़लन प्रतिव्याप्त होने के कारण इस रोधक को पार करने के लिए आवश्यक गतिज तथा विभव ऊर्जा न होने पर भी इलेक्ट्रॉनों को इसे पार करने के लिए परिमित प्रायिकता होती है। माना कि इलेक्ट्रॉन इस रोधक को प्रत्यास्थिक रूप से पार करते हैं यानि इस दौरान इलेक्ट्रॉन की ऊर्जा न तो घटती है न बढ़ती है। यदि एक इलेक्ट्रॉन जिसकी ऊर्जा E है तथा मात्रा 'm' एवं इस दिशा में कार्यरत रोधक विभव क्षेत्र Vo है तो (जैसा कि चित्र-3 में दर्शाया गया है) इलेक्ट्रॉन इसको पार करने का प्रयास करता है। इस प्रकार यह इलेक्ट्रॉन रोधक से टकराकर वापस लौट सकता है अथवा वह भाग दो में प्रविष्ट हो सकता है, या रोधक के प्रभाव क्षेत्र-2, को पार कर भाग-3 में आ सकता है। अतः श्रोडिंजर के समय आधारित समीकरण के आधार पर इलेक्ट्रॉन के भाग-1 के लिए समीकरण –

$$\frac{\hbar^2}{2m}\frac{d^2\Psi}{dx^2} = E\Psi_1 \quad \text{.....(1)}$$

$$\Psi_1 = e^{ik_1x} + A\,e^{-ik_1x} \quad \text{.....(2)}$$

यहाँ पर तरंग सदिश $k = \left[\frac{2mE}{h^2}\right]^{1/2}$ तथा

$\hbar = \frac{h}{2\pi}$; = h प्लैंक स्थिरांक

इसी प्रकार हम भाग दो के लिए समीकरण

निम्नानुसार लिख सकते हैं।

$$\frac{\hbar^2}{2m}\frac{d^2\Psi_2}{dx^2} + V_o = E\Psi_2 - \quad \text{.....(3)}$$

हल करने पर $\Psi_2 = B^1 e^{+ik_2x} + C^1 e^{-ikx}$

$= Be^{-i\xi x} + C e^{-i\xi x}$ .....(4)

यहाँ पर $\xi = [-ik_2^2]^{1/2} = [2m(V_0 - E)\hbar^2]^{1/2}$

तथा भाग-3 के लिए $\frac{\hbar^2}{2m}\frac{d^2\Psi_3}{dx^2} = E\Psi_3$

$\Psi_3 = De^{ikx}$ .....(5)

अगर रोधक से बहनें वाली विद्युत धारा का घनत्व J हो तथा पारगत विद्युत धारा का घनत्व J_1 हो तो

$$J = \frac{-i\hbar}{m}\left(\Psi_3^*(x)\frac{d\Psi_3}{dx} - \Psi_3(x)\frac{d\Psi_3^*}{dx}\right)$$

तथा

$$J_1 = \frac{i\hbar}{m}[D]^2 = \frac{\hbar k}{m} \quad \text{.....(6)}$$

अगर हम रोधक की सतहों पर (जहाँ x = 0 तथा x = 5) तथा उसके प्रथम व्युत्पन्न (derivative) को जोड़ें तो हमें पारगत स्थिरांक 'T' मिलता है जो कि विद्युत ऊर्जाओं J, (पारगत) तथा J (आपतित) का सरल अनुपात है, मिलता है। यानि

$$T = \frac{J1}{J} = [D]^2$$

$$= \frac{1}{1 + \frac{(k^2 + \xi^2)^2}{(4K^2 - \xi^2)\sinh^2(6x)}} \quad \text{.....(7)}$$

$$= \frac{16K^2\xi^2}{(K^2 + \xi^2)}\exp(-2\xi S)$$

यहाँ पर $= 2m(Vo - E)^{1/2} / \hbar$

अतः जिसे क्षय गति कहा जाता है। सुरंगीय विद्युत धारा रोधक की क्षमता यानि रोधक की ऊँचाई $\Psi = Vo - E$, रोधक की चौड़ाई (S) पर निर्भर करते हैं। उदाहरण के लिए अगर हम किसी सुरंगीय सूक्ष्मदर्शी जिसमें प्रयुक्त नैनो संसूचक पट्टिका तथा सतह के बीच का अंतर 0.1 नैनोमीटर हो, के बीच अत्यंत कम मात्रा का विभव देने पर उत्पन्न सुरंगीय विद्युत धारा की मात्रा (J) अधिक होगी। इस विद्युतधारा को हम निम्न समीकरण के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

$$I = C e_s e_p \exp(s\Phi^{1/2}) \quad \text{.....(8)}$$

यहाँ e_s तथा e_p जाँची सतह तथा संसूचक पट्टी में इलेक्ट्रॉन घनत्व हैं तथा C एक स्थिरांक है। संसूचक पट्टिका जाँची गई सतह का निरीक्षण एक पीजो इलेक्ट्रिक क्रिस्टल के उपयोग से करता है। इस क्रिस्टल का आयतन, विभवांतर के साथ घटता बढ़ता है। जब संसूचक पट्टिका सतह पर X - अथवा Y - दिशा में जाती है तो उसमें से प्रवाहित होने वाली विद्युत धारा में बदलाव आता है। यह समीकरण (8) के द्वारा दिया गया है। इसके मापन से संपूर्ण सतह का चित्र तैयार कर लिया जाता है। जब यह क्रिस्टल परमाणु के ऊपर होता है तो मान कम होता है क्योंकि इस दशा में अंतर कम होता है। किन्तु जब यह दो अणुओं के बीच होता है तो मान ज्यादा होता है। अतः विभिन्न परमाणुओं के कारण उत्पन्न स्थिर विद्युत क्षय के कारण जब यह प्रोब X - या Y - दिशा में जाती है तो बनावट के साथ विभव क्षय में हो रहे परिवर्तन के कारण सुरंगीय विद्युत धारा में भी परिवर्तन होता है जो कि संसूचक तथा सतह के बीच की ऊंचाई में हो रहे परिवर्तनों के कारण होता है। उदाहरण के लिए अगर Φ = 5 eV हो तथा S में .1 से 1 नैनोमीटर का बदलाव होने पर सुरंगीय विद्युत धारा में 7.5 गुना से भी अधिक की गिरावट होगी।

इस प्रकार के सुरंगीय संसूचक के उपयोग से सतह के चित्र दो प्रकार से प्राप्त किये जा सकते हैं। जैसा कि चित्र-4अ में बताया गया है, संसूचक पट्टी की टिप तथा जाँची जा रही सतह के बीच का अंतर समान रखा जाता है। अतः इस अवस्था में प्रोब संसूचना जोकि सुरंगीय विद्युत धारा के रूप में प्राप्त होता है, सतह पर हो रहे इलेक्ट्रॉन घनत्व में परिवर्तनों के साथ घटती बढ़ती है। समीकरण (8) के उपयोग से यह जानना सरल है कि इस अवस्था में (सुरंगीय विद्युत धारा) संसूचक टिप तथा सतह के बीच के अंतर (S) के प्रति अत्यंत सुग्राही होता है। क्योंकि संसूचना के रूप में प्राप्त सुरंगीय विद्युत धारा S के साथ

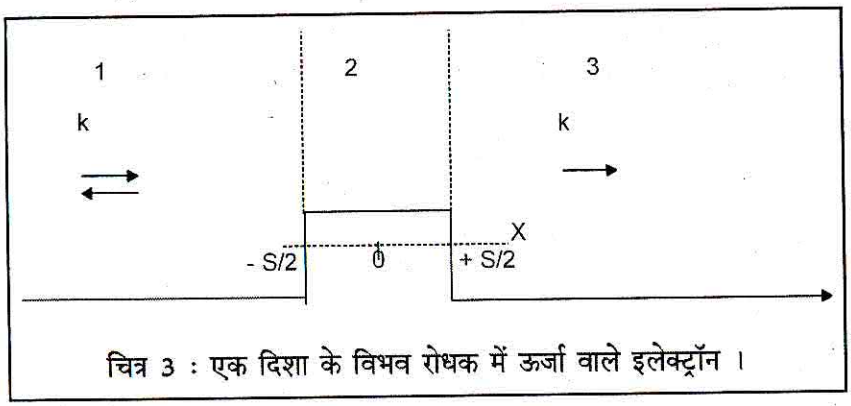

चित्र 3 : एक दिशा के विभव रोधक में ऊर्जा वाले इलेक्ट्रॉन ।

चरानुपात में घटती या बढ़ती है। किन्तु सामान्यतः यह उचित होता है कि S के साथ यह बदलाव रेखीय अनुपात में हो। इसे प्राप्त करने के लिए एक पुनः निविष्ट लूप का उपयोग किया जाता है ताकि सतह तथा संसूचक टिप के बीच समान अंतर बनाये रखा जा सके जैसा कि चित्र-4ब में दर्शाया गया है। यहाँ पर संसूचक की सतह से ऊँचाई पिज़ो-विद्युत क्रिस्टल के उपयोग से (जिसका आयतन विभव के साथ रेखीय अनुपात में घटता या बढ़ता है) स्थिर रखा जाता है। यह क्रिस्टल जब प्रसारित होता है तो संसूचक सतह के करीब आता है। समान दूरी बनाये रखने के लिए आवश्यक वोल्टता जो कि क्रिस्टल पर दी जाती है, वह सतह पर परमाणु के आकार के साथ रेखीय अनुपात में घटती या बढ़ती है। अतः पुनः निविष्ट वोल्टता का मापन कर हम टिप के विस्थापन को आसानी से नाप सकते हैं। इस प्रकार के मापन निर्वात में किये जाते हैं। क्रमवीक्षण सुरंगीय संसूचक सूक्ष्मदर्शी के उपयोग से पदार्थों की सूक्ष्म बनावट तथा जीव विज्ञान में महत्त्वपूर्ण उपयोग हो रहे हैं, जिसमें डी.एन.ए. की संरचना व उसमें विकिरण के प्रभाव से हो रहे बदलाव का अध्ययन महत्त्वपूर्ण कड़ी है। जिसका अध्ययन करना एक चुनौती से घटकर अब संभावना बन गयी है।

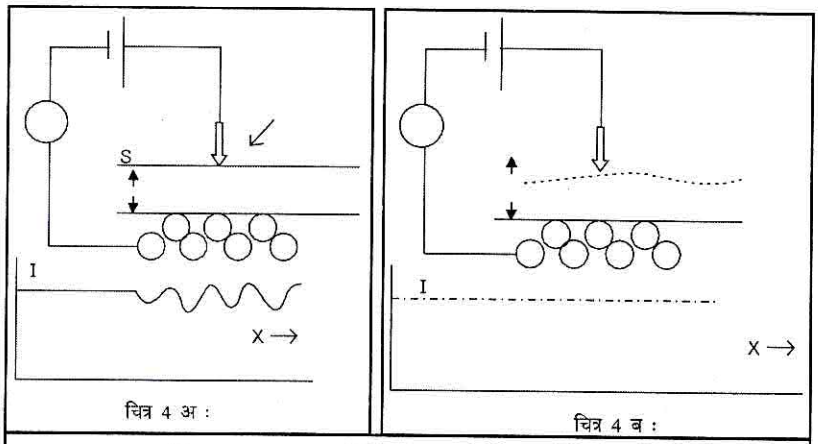

चित्र 4 अ :
चित्र 4 ब :

चित्र 4 : प्रकाशीय परमाणु बल सूक्ष्मदर्शी

क्रमवीक्षण बल सूक्ष्मदर्शी या परमाणु बल सूक्ष्मदर्शी :

इस की कार्य प्रणाली भी सुरंगीय विद्युत धारा संसूचक प्रणाली के समान ही है। इस उपकरण के मुख्य अवयव सुरंगीय संसूचक सूक्ष्मदर्शी के समान ही हैं। इस विधि में भी संसूचक की नोक को जाँचे जा रहे नमूने की सतह के समीप रखा जाता है तथा सतह से इस नोक की ऊँचाई पुनः पिज़ो विद्युत क्रिस्टल के उपयोग से निर्धारित की जाती है। संसूचक टिप (नोक) को सतह पर x - y दिशा में भ्रमण करा कर उपयुक्त चित्र प्राप्त कर लिए जाते हैं, जो कि संगणकों व पुननिर्माण नकलर के उपयोग से संगणक के स्क्रीन पर देखे जा सकते हैं। पुरानी परमाणु बल मशीनों में संसूचक टिप तथा सतह के बीच का अंतर पिज़ो विद्युत क्रिस्टल के प्रयोग से हो रहे परिवर्तनों को प्रोब के साथ लगे स्प्रिंग में हो रहे बदलाव के द्वारा नापा जाता था। आजकल स्प्रिंग की जगह लेजर आधारित प्रकाशिकी उपकरणों के प्रयोग से यह विधि और भी सुग्राही होती जा रही है। लेजर के उपयोग से अब परमाणु स्तर की विभेदन क्षमता के साथ सतही सूचना प्राप्त की जा सकती है। इस विधि का आधार संसूचक पट्टी की टिप तथा सतह के बीच कार्यरत वानडर वाल बल हैं। अतः इस विधि का उपयोग न केवल चालक पदार्थों किन्तु अचालक पदार्थों के अध्ययन के लिए भी किया जा सकता है। अतः सतह पर विद्युत, चुम्बकीय या अन्य स्थिर विद्युतीय परिवर्तन न होने पर भी इस विधि द्वारा चित्र प्राप्त किये जा सकते हैं।

परमाणु बल सूक्ष्मदर्शी की कार्यप्रणाली तथा सिद्धांत

जैसा कि हम जानते हैं जब संसूचक पट्टी की टिप पर्दाथ के करीब आती है, तो दोनों के परमाणुओं के बीच वानडर-वाल बल कार्यरत होता है। जैसा कि चित्र-5 में दर्शाया गया है। इस आकर्षण बल विभव की मात्रा दोनों के बीच अंतर के साथ बदलती है। यह बल पदार्थ तथा टिप के अणुओं में स्थित द्विध्रुव आघूर्ण में हो रहे बदलाव के कारण होता है। क्रमवीक्षण के दौरान यह बल घटता बढ़ता है जिससे दूरी भी बदलती है। यह बदलाव दोनों के बीच के अंतर 'd' के $d^{(-6)}$ के अनुपात में घटती बढ़ती है। अगर अंतर कम हो तो दोनों के बीच लेनार्ड-जोन्स विभव कार्यरत होता है। यदि दोनों के बीच अंतर ज्यादा हो तो यह आकर्षण बल अत्यंत तीव्र गति से घटता है। जैसा कि हम जानते हैं दो परमाणुओं के बीच उत्पन्न आकर्षण बल समीकरण (9) से प्राप्त किया जा सकता है ;

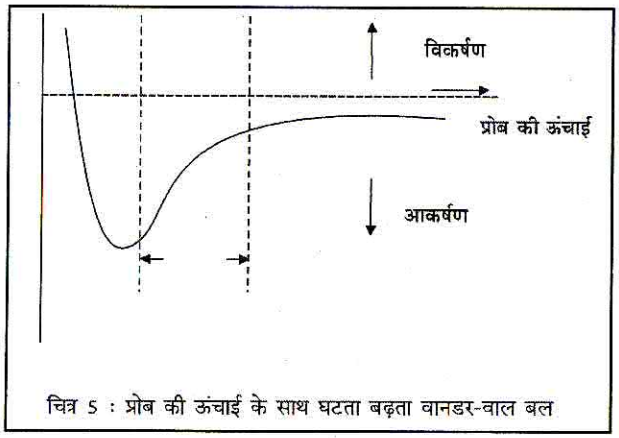

चित्र 5 : प्रोब की ऊंचाई के साथ घटता बढ़ता वानडर-वाल बल

$$W = \frac{c \pi e}{6} \times \frac{1}{d^3} \quad .....(9)$$

यहाँ, c = अन्योन्यक्रिया स्थिरांक है, e = पदार्थ का घनत्व

अगर हम परमाणु को गोलाकार मानें जिनका अर्द्धव्यास R_1 तथा R_2 हो तथा उनके बीच अंतर 'd' हो यह आकर्षण बल

$$W = \frac{A R_1 + R_2}{6 R_1 + R_2} \times \frac{1}{d} \quad .....(10)$$

के बराबर होगा।

अगर $R_1 = R_2 = R$ हो तो

$$W = \frac{A R}{12} \times \frac{1}{d} \quad .....(11)$$

चूँकि वानडर-वाल बल एक कमजोर बल है तथा अंतर के साथ इसमें होने वाली कमी भी अत्यंत कम होने के कारण यह विधि सुरंगीय विद्युत संसूचक तकनीक की तुलना में कम सुग्राही है।

इस विधि में प्रयुक्त उपकरण के मुख्य अवयव लगभग क्रमवीक्षण सुरंगीय संसूचक सूक्ष्मदर्शी के समान ही है। हालांकि इस विधि में जिस आधार पर सतह की स्थल आकृतियाँ प्राप्त की जाती हैं, उसमें अंतर है। आज बाजारों में उपलब्ध उपकरणों में संसूचक के रूप में एक प्रकाशिय केंटिलीवर झुकता है व इस कारण उस पर से विक्षेपित होने वाली लेजर प्रकाश किरणों की दिशा बदलती है (उसी अनुपात में) जिसे सूक्ष्मता से नापा जाता है, जैसा कि चित्र-5 में दर्शाया गया है। इस प्रकार सतह पर कैन्टीलीवर को X - तथा Y - दिशा में ले जाकर संपूर्ण सतह का चित्र प्राप्त कर लिया जाता है। इस विधि के उपयोग से नैनों मीटर से कम की सूक्ष्म फिल्म की चौड़ाई नापी जा सकती है। उसी प्रकार किसी अणु की बनावट व उसमें प्रयुक्त विभिन्न परमाणुओं की संरचना का चित्र भी प्राप्त किया जा सकता है।

अतः हम देखते हैं कि सुरंगीय विद्युत संसूचक सूक्ष्मदर्शी तथा परमाणु बल सूक्ष्मदर्शी उपकरणों में नैनो तकनीकी को नये आयाम प्रदान किये हैं। नैनो तकनीकों का विकास पिछले दशक में अत्यंत तीव्र गति से हुआ है जो कि मुख्य इन दोनों उपकरणों की उपलब्धता के कारण संभव हो सका है।

लेखकों से निवेदन

''वैज्ञानिक'' हेतु लेख भेजते समय कृपया निम्न बातें ध्यान में रखें :

- लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ाये।
- लेख मौलिक और पठनीय हो, भाषा सरल और बोधगम्य।
- कृपया अनुवादित लेख न भेजें।
- लेख टंकित किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में दोनों ओर पर्याप्त हाशिया छोड़ कर काग़ज के एक ओर ही लिखें।
- विषय वस्तु समझाने के लिए यदि चित्र आवश्यक हों तो उन्हें अलग से सफेद काग़ज पर काली रोशनाई से खींच कर लेख के अंत में संलग्न कर दें।
- अस्वीकृत रचनाएं डाक-टिकट लगा लिफाफा संलग्न होने पर ही वापस की जायेगी।

- संपादक

टिप्पणी

1. साईबर कानून एवं अपराध

आधुनिक युग में सूचना क्रान्ति के विस्तार के साथ ही कंप्यूटर एवं सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नये-नये आविष्कार हुए हैं। इन तकनीकों के द्वारा आज-कल कई प्रकार के लाभकारी तौर तरीकों का विकास तो हुआ परन्तु इसके साथ ही अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय एवं सामाजिक कार्यों से संबंधित अपराधों में वृद्धि हुई है जिसे "साईबर अपराध" कहा जाता है। इस प्रकार के अपराधों की कोई सीमा नहीं होती तथा वे संपूर्ण विश्व में फैले हुए है। साधारणतः साईबर अपराध वह अपराध है जो कंप्यूटर एवं सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा कंप्यूटर तंत्र के कार्यों को प्रभावित करने अथवा इसके सॉफ्टवेयर द्वारा सामाजिक अथवा अन्य प्रकार के अपराधों को बढ़ावा देने के उद्देश्य के किया जाता है। एक अनुमान के अनुसार पूरे विश्व में करीब 50 करोड़ लोग इन्टरनेट का प्रयोग करते हैं।

साईबर अपराध एक बहुत गम्भीर समस्या जो अपराध कानूनविदों तथा सरकारी कानून तंत्र के सामने एक चुनौती बन गया है। साईबर अपराध साधारणतः किसी प्रकार की हिंसा नहीं फैलाते परन्तु लोभ-लालच, सम्मान तथा किसी व्यक्ति के चरित्र के कमजोर पहलू के साथ खेल कर विभिन्न अपराधों को जन्म देते हैं। साईबर अपराधों के संदर्भ में वास्तविक अपराधी को पकड़ पाना कभी कभी बहुत दुष्कर होता है क्योंकि नेट सर्फिंग कोई भी व्यक्ति विश्व के किसी भी भाग से कर सकता है तथा इसका उपयोग गलत कार्यों एवं साईबर अपराधों के लिए कर सकता है। साईबर अपराधों की प्रकृति एवं प्रकार के कारण ही इसे सफेदपोश अपराधियों का अपराध कहा जाता है।

साईबर अपराधों में परंपरगात आपराधिक गतिविधियों यथा चोरी, धोखा, गबन, धोखाधड़ी तथा अपमान करना आदि भी सम्मिलित हो सकते हैं तथा ये सभी भारतीय दण्ड संहिता (I.P.C.) की विभिन्न धाराओं के तहत दंडनीय अपराध है। इस प्रकार साईबर अपराध वे गैरकानूनी कार्य है जिसमें कंप्यूटर एक यंत्र या लक्ष्य अथवा दोनों के रूप में प्रयुक्त होता है तथा सूचना तकनीकी एवं अपराधिक गतिविधियों को अपने में सम्मिलित किये हो सकता है। इस प्रकार सूचना प्रौद्योगिकी के नये-नये आयाम जहां एक ओर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के व्यापार में बहुत प्रभावशाली भूमिका निभा रहे हैं वहीं वे विश्व भर में एक सुसंगठित साईबर अपराधों के नेटवर्क के विकास में भी सहायक सिद्ध हो रहे हैं। विभिन्न प्रकार के साईबर अपराधों को निम्न प्रकार से बाँटा जा सकता है –

व्यक्तिगत अपराध यानी किसी व्यक्ति या उसकी निजी संपति आदि के विरुद्ध हो सकते हैं। ये इलेक्ट्रॉनिक मेल, साईबर स्टोकिंग, अश्लील/आपत्तिजनक सामग्री के इन्टरनेट द्वारा प्रसार से हैकिंग/क्रेकिंग या किसी अन्य अपराधों में कंप्यूटर तंत्र को प्रमाणित करना, वाइरस का फैलाव करना, इन्टरनेट साइटों पर अतिक्रमण तथा बिना स्वीकृति के किसी व्यक्ति के कंप्यूटर पर गलत/अपराधिक तरीके से कब्जा करना आदि सभी सम्मिलित है।

किसी संस्था के विरुद्ध अपराध सामान्यतः किसी सरकार, निजी संस्था, कंपनी या किसी समूह के खिलाफ हो सकते हैं। ये अपराध भी हैकिंग, क्रैकिंग द्वारा अथवा गैरकानूनी ढंग से सूचनाओं को प्राप्त करने एवं उसका इस्तेमाल किसी संस्था/सरकार के विरुद्ध किये जाते हैं। पाइरेटेड सॉफ्टवेयर का वितरण एवं अन्य प्रकार के गैरकानूनी कंप्यूटर संबंधी कार्यों से संबंधित अपराध इसी श्रेणी में आते हैं।

संपूर्ण समाज के विरुद्ध अपराधों का संबंध किसी व्यक्ति या संस्था के विरुद्ध ही सीमित न रहकर संपूर्ण समाज पर पड़ता है। इस प्रकार के अपराधों में पोर्नोग्राफी (विशेषकर बच्चों की पोर्नोग्राफी) तथा युवाओं को अश्लील सामग्री या ट्रेफिकिंग (Traficking) द्वारा दूषित करने के अपराध शामिल हैं।

विभिन्न प्रकार के साईबर अपराधों का विवरण इस प्रकार है :-

हैकिंग सबसे ज्यादा प्रचलित प्रकार का साईबर अपराध है। सूचना प्रौद्योगिकी एक्ट–2000 में इस प्रकार के अपराधों को बताते हुए कहा गया है – "जो कोई भी जानबूझकर या बिना जाने हुए किसी गलत कार्य द्वारा पब्लिक या व्यक्ति को हानि पहुंचाता है अथवा पहुंचाने का प्रयास करता है हैकिंग कहते हैं। इस प्रकार के अपराधों में कंप्यूटर पर दी सूचनाओं को गैरकानूनी ढंग से अधिग्रहित कर नुकसान पहुंचाने का कार्य किया जाता है।

सूचना प्रौद्योगिकी एक्ट-2000 के तहत हैकिंग अथवा इसके समकक्ष अपराधों के लिए 3 वर्ष के कारावास या 2 लाख तक का जुर्माना अथवा दोनों हो सकते हैं। वास्तव में हैकर वह व्यक्ति होता है जो किसी के कंप्यूटर तंत्र पर गैरकानूनी ढंग से अतिक्रमण करता है। ये हैकर कई प्रकार के

हो सकते हैं यथा–कोड हैकर, क्रेकर या साईबर पंक्स से फीक्स तक। कुछ हैकर सिर्फ मजे के लिए किसी कंप्यूटर का तंत्र नष्ट करते हैं परन्तु वे भी साईबर अपराधी की श्रेणी में आते हैं। विभिन्न आतंकवादी संगठन विश्व भर में कई बार किसी देश की अधिकृत वेबसाइट पर हैकिंग कर चुके हैं।

सुरक्षा व्यवस्था से संबंधित अपराध में निजी गुप्त सूचनाओं को आम जन तक प्रचारित प्रसारित करना है। यह कार्य नेटवर्क पॉकेट स्निकर द्वारा किया जा सकता है जो संपूर्ण सूचनाओं को छोटे छोटे टुकडों में बाँटकर उसका पुनः वितरण एवं प्रचार प्रसार करते हैं। ये नेटवर्क पॉकेट स्निकर एक सॉफ्टवेयर तकनीक को विकसित करते हैं तथा उपभोगकर्ता को उपयोगी सूचनाओं के ग्रहण करने हेतु खाता संख्या एवं पासवर्ड आदि उपलब्ध करवाते हैं। इस प्रकार गैरकानूनी ढंग से वह अनाधिकृत व्यक्ति उस कंप्यूटर/सूचना तंत्र का उपभोगकर्ता बन जाता है तथा सुरक्षा व्यवस्था को इससे गंभीर खतरा उत्पन्न हो जाता है।

इंटरनेट पर धोखाधड़ी यह एक विशेष प्रकार का सफेदपोश अपराध है। इंटरनेट कंपनियों तथा व्यक्तिगत तौर तरीकों से इंटरनेट पर अपने उत्पादों की मार्केटिंग करने का अच्छा अवसर मिलता है। इंटरनेट द्वारा इस प्रकार के प्रचार-प्रसार में गलत एवं दोषपूर्ण सूचनाओं को भी इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है कि वह वास्तविक लगे। इस प्रकार के कई भ्रामक एवं धोखाधड़ी वाली स्कीमों को ऑनलाइन द्वारा इंटरनेट समाचार पत्र, बुलेटिन बोर्ड आदि द्वारा प्रस्तुत कर गबन करने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। इस प्रकार की धोखाधड़ी जंक मेल (वह मेल जिसमें अनुपयोगी सामग्री हो) के द्वारा भी फैलाई जा सकती है तथा इस प्रकार कंपनी के बारे में गलत सूचनाओं एवं दोषपूर्ण इनवेस्टमेंट स्कीमों का प्रसार किया जाता है।

क्रेडिट कार्ड धोखाधड़ी में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के द्वारा मुद्रा का स्थानान्तरण एवं लेनदेन करना बहुत आसान हो गया है। इस तकनीकी ने कई प्रकार के साईबर अपराध (आर्थिक) को जन्म भी दिया है। अमरीका के सर्वाधिक अपराधिक मामलों में क्रेडिट कार्ड धोखाधड़ी के अपराध मुख्य अपराधों की श्रेणी में आते हैं। इस प्रकार के अपराधों में किसी वैधधारक के कूट डिजिटल हस्ताक्षर बनाकर एवं उसके कूट नम्बरों (कोड) की चोरी की जाती है। भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी एक्ट-2000 की धारा 73 के अनुसार इस प्रकार के अपराधों के लिए 2 वर्ष तक की जेल या एंक लाख रुपये का हर्जाना या दोनों हो सकते हैं। गैरकानूनी कार्यों के लिए किसी व्यक्ति के डिजिटल हस्ताक्षर अन्य व्यक्ति/व्यक्तियों को उपलब्ध कराना भी इस एक्ट की धारा 74 के तहत अपराध है जिसके लिए दो वर्ष तक के कारावास या दो लाख रुपये हर्जाना अथवा दोनों का दंड है।

डिजिटल हस्ताक्षरों का परिवर्तन / नष्ट करना सबसे बड़ा खतरा बन गया है। जिस प्रकार कंप्यूयर वाइरस कंप्यूटर में एक बार जाने के बाद सभी डाटा फाईल को नष्ट कर कंप्यूटर तंत्र की कार्यप्रणाली को प्रभावित करता है वैसे ही इस प्रकार के कार्यों से निजी व्यक्ति का समूचा खाता / रिकार्ड अनाधिकृत व्यक्ति के हाथ पड़कर पूर्णतः गड़बड़ा जाता है। कंप्यूटर वाइरस की तरह वह व्यक्ति को प्रभावित कर सकता है।

पोर्नोग्राफी के अंतर्गत इंटरनेट द्वारा अश्लील फिल्मों, दृश्यों को दिखाना आता है। पूर्व में अश्लील पुस्तकों/फिल्मों के लिए व्यक्ति के कई तरह के यत्न/प्रयास करने पड़ते थे तथा इसमें पैसा एवं समय के व्यय के बाद भी इस उद्देश्य की प्राप्ति सुनिश्चित न होने के कारण लोगों का ध्यान कम ही जाता था।

आधुनिक युग में तकनीकी ज्ञान के साथ ही पोर्नोग्राफी सामग्री आसानी से प्राप्त हो सकते हैं। आधुनिक मोबाइल/सेलफोनों की तकनीकों में विकास के कारण इन्हें भी कानून की भाषा में कंप्यूटर के समकक्ष माना गया है तथा इससे भी किसी अश्लील सामग्री की सजीव रिकार्डिंग, संग्रहण एवं उसका आदान–प्रदान बहुत आसान हो गया है। आज कल की तकनीकी मात्र पुरातन फोटोग्राफी, विडियोग्राफी की रिकार्डिंग का सुधरा रूप न होकर उससे कहीं अधिक विकसित हो चुकी है। आजकल किसी भी फिल्म को तुरंत रिकार्ड कर एम.एम.एस. अथवा अन्य तरीकों से कुछ ही समय में ही संपूर्ण विश्व में प्रसारित कर सकते हैं। इसी प्रकार इन दृश्यों में छेड़छाड़ अथवा जोड़-तोड़ कर अश्लील सामग्री की संपूर्ण फिल्म तक बनाई जा सकती है।

इन्टरनेट एवं अन्य तकनीकों की इस प्रगति का एक और दुष्प्रभाव इसके द्वारा अश्लील दृश्यों/फिल्मों का बच्चों तक आसानी एवं सहजता से पहुँचना है। बच्चों में कंप्यूटर के बढ़ते प्रभाव के कारण वे घर या साईबर कैफै से इस प्रकार की अश्लील सामग्री तक सहजता से पहुँच जाते हैं तथा

इसका फायदा उठा कर समाज एवं कानून के दुश्मन इनके मस्तिष्क में यौन विकृतियों को विकसित करने में सभी हद पार कर लेतें हैं। इस प्रकार के अपराधियों को पकड़ना भी कानूनी दांवपेंचों के न होने एवं इस समस्या के विश्वव्यापी होने से लगभग असंभव सा होता है तथा इस प्रकार आने वाली पीढ़ी दिग्भ्रमित हो रही है।

सूचना प्रौद्योगिकी एक्ट-2000 एवं पोर्नोग्राफी के तहत् अश्लील दृश्यों का प्रकाशन एवं संप्रेषण/विस्तार एक दंडनीय साईबर अपराध है। इस एक्ट के अनुसार "जो कोई भी व्यक्ति/संस्था/समूह किसी भी प्रकार की अश्लील सामग्री को प्रकाशित/प्रसारित/अथवा किसी न किसी रूप में फैलाने का प्रयाग करेगा जिससे कि किसी व्यक्ति को पढ़ने/सुनने/देखने हेतु प्रेरित किया जा सके अथवा उसके मस्तिष्क में किसी प्रकार की विकृति उत्पन्न कर सके, को इस एक्ट की तहत् ऐसे प्रथम प्रयास के लिए धारा 67 द्वारा 5 वर्ष की कैद या एक लाख रूपये तक जुर्माना अथवा दोनों की सजा का प्रावधान है। ऐसा प्रयास पुनः करने पर 10 वर्ष के कारावास या दस लाख रूपये जुर्माना अथवा दोनों की सजा का प्रावधान भी किया गया है।

इस नये कानून का प्रभाव उन सभी व्यक्तियों पर पड़ सकता है जहां पर उनका नेटवर्क कार्यरत हो। इस प्रकार कोई भी व्यक्ति चाहे वह भारत में अथवा विदेशों से इस प्रकार की साईबर पोर्नोग्राफी गतिविधियों में कार्यरत हो अथवा इस प्रकार के व्यापार में प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप में संलग्न हो, पर यह कानून लागू हो सकता है। धारा 67 के अंतर्गत इस प्रकार न केवल राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय इन्टरनेट सर्विस प्रदाता व साईबर कैफै मालिको, कंपनियों, विशेष संस्थाओं, सभी पर इन अश्लील सामग्री से संबंधित कार्यों में किसी भी प्रकार से संलग्न होने पर यह कानून लागू होगा। यद्यपि इस कानून को बनाने के बाद व्यक्ति की स्वतंत्रता बनाये रखने एवं सामाजिक संगठन को स्वस्थ बनाये रखने विशेषकर बच्चों के मस्तिष्क में विकृतियां उत्पन्न करने वाली खामियों के चलते यह कानून आज उतना प्रभावशाली नहीं बन सका है।

क्रिप्टोग्राफी वास्तव में कूट शब्दों का प्रयोग कर संदेशों को इस प्रकार प्रसारित किया जाता है कि मात्र प्रेषक एवं वैध ग्रहणकर्ता ही उसे समझ सके।

आधुनिक युग में इस प्रकार के कार्यों में भी कूट शब्दों की चोरी करने एवं उन संदेशों को गैरकानूनी ढंग से अनाधिकृत व्यक्तियों/कंपनियों तक पहुंचने से व्यवसायिक संगठनों को ही नहीं वरन् देश की सुरक्षा एजेन्सियों के गुप्त कार्यों का भी पता दुश्मनों को चल जाता है तथा इस प्रकार राष्ट्रीय सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है।

सूचना प्रौद्योगिकी एक्ट–2000 की धारा 72 के तहत् जब कोई व्यक्ति किसी भी इलेक्ट्रॉनिक रिकार्ड, पत्राचार, सूचनाओं, प्रपत्रों को गैरकानूनी/अनाधिकृत ढंग से पढ़ेगा/संचारित करेगा अथवा उन्हें किसी अन्य व्यक्ति को देगा उसे 2 वर्ष तक की सजा या एक लाख रूपये का जुर्माना अथवा दोनों हो सके है।

एनक्रिप्शन का अर्थ है कि सूचनाओं से संग्रहित इलेक्ट्रॉनिक डाक को दूसरे व्यक्ति को लिफाफे पर एक कूट कोड़ लगा कर भेजना जिसका ज्ञान मात्र प्राप्त करने वाले व्यक्ति को ही हो। इस प्रकार पूर्ण प्राइवेसी के साथ मुक्त इन्टरनेट व्यवस्था में भी दूसरे व्यक्ति के पास सफलतापूर्वक भेजा जा सकता है। एनक्रिप्शन में पत्र के गुप्त कोड एवं सिफरर्स आदि द्वारा इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से सूचनाएं एक दूसरे के पास पहुंचाई जा सकती है।

भारत में सूचना प्रौद्योगिकी एक्ट-2000 द्वारा संदेशों के आदान-प्रदान हेतु कुछ प्रावधानों के द्वारा नियंत्रण किया गया है।

यह एक कटु सत्य है कि कंप्यूटर एवं मोबाइल में नवीनतम तकनीकी से बढ़ते साईबर अपराधों में बेतहासा वृद्धि हुई है। आधुनिक युग में इन अपराधों के तेजी से बढ़ने के कारण कानूनविदों को इस समस्या के प्रति अधिक ध्यान देने एवं नयी तकनीकों के अनुसार वर्तमान साईबर कानूनों में संशोधन की आवश्यकता है। वर्तमान साईबर कानून आज के परिपेक्ष्य में प्रभावी नहीं हैं तथा विश्वव्यापी साईबर कानून के निर्माण एवं प्रबंधन से ही सामाजिक स्तर के तेजी से गिरने को रोका जा सकता है।

- डॉ. एन. के. बोहरा

2. श्वसन संस्थान के संक्रमण

बच्चों के श्वसन संस्थान के रोग बहुत ही सामान्य हैं लेकिन यदि ध्यान न दिया जाए तो न्यूमोनिया जैसे संक्रमण से बच्चे या शिशु की शीघ्र मृत्यु हो सकती है। पूरे विश्व में इस तरह के रोगों से प्रति वर्ष 39 लाख मृत्यु होती हैं और इनमें से 90% मृत्यु केवल न्यूमोनिया से होती हैं।

भारत में शिशुओं की बढ़ी हुई मृत्यु दर में न्यूमोनिया जैसे रोगों की प्रमुख भूमिका है। यहाँ के अस्पतालों में 13% शिशुओं की मृत्यु श्वसन संबंधी रोगों से हो जाती है। जबकि बहुत से शिशु अस्पताल आने के पूर्व चल बसते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार पूरे विश्व में 987000 मृत्यु प्रति वर्ष इस तरह की बीमारियों से होती हैं। इन आंकड़ों के अध्ययन से श्वसन रोगों की गंभीरता प्रकट होती है। अतः छोटे बच्चों में न्यूमोनिया जैसे रोग मृत्यु के लिए घातक बने इसके पूर्व ही उनका इलाज जरूरी हो जाता है। इसलिए आम लोगों में भी इन खतरनाक रोगों की सम्यक जानकारी होना जरूरी है।

रोग कई तरह के जीवाणुओं और विषाणुओं द्वारा फैलता है। इनमें प्रमुख हैं स्ट्रेप्टो कॉकस-न्यूमोनी जो न्यूमोनिया रोग का कारण बनता है। इसी तरह बारडेटेला परट्यूसिस कुकर खांसी उत्पन्न करता है। इसी तरह कार्नी बेक्टीरियम डिफ्थीरी भी है जो गलघोटूं नामक खतरनाक बीमारी का कारण बनता है। कई वाइरस भी श्वसन संस्थान के रोग उत्पन्न करते हैं। जैसे कि एडीनो वाइरस फेफड़ों का संक्रमण और गले की सूजन उत्पन्न करता है। मीसल्स वाइरस छोटे बच्चों में शरीर में फुंसियों के साथ श्वसन संबंधी तकलीफें पैदा करता है। सिन साइटियल नामक रोगाणु शिशुओं और छोटे बच्चों में फेफड़ों की श्वसन नलिकाओं में सूजन और गंभीर किस्म का न्यूमोनिया उत्पन्न करता है। यदि इलाज न किया जाए तो न्यूमोनिया अक्सर बच्चों में जानलेवा साबित होता है। इन सभी रोगों में श्वसन क्रिया की दर बढ़ जाती है और श्वसन में रुकावटें उत्पन्न होती हैं। इस कारण रोगी की जान जाने का खतरा उत्पन्न हो जाता है।

संक्रमण कम उम्र के शिशुओं में अधिक होते हैं। कुपोषित एवं सामान्य से कम वजन के बच्चों या शिशुओं में भी संक्रमण अधिक होता है। अक्सर तीन वर्ष से कम उम्र के बच्चे इन रोगों के ज्यादा शिकार बनते हैं।

श्वसन रोगों को बढ़ावा देने वाले कुछ कारक और भी होते हैं - जैसे भीड़ भरे गंदे स्थानों में रहना, संतुलित और पौष्टिक भोजन का अभाव, नवजात शिशु का वजन कम होना, प्रदूषित वातावरण के अलावा माँ यदि सिगरेट का सेवन करती है तो बच्चे को संक्रमण होने की संभावना बढ़ जाती है। शहरी बच्चों में ये संक्रमण गाँव-देहात के बच्चों की अपेक्षा अधिक होते हैं। इसका कारण प्रदूषण होता है। और यह प्रदूषण उत्पन्न होता है पेट्रोल-डीजल के धुएं एवं विभिन्न कारखानों की चिमनिओं से निकले गंदे धुएं के कारण। ज्यादा ठंडे स्थानों में बच्चों को रखने से भी ऐसे संक्रमणों को बढ़ावा मिलता है। नयी खोजों के अनुसार वातानुकूलित (एअरकंडीशन्ड) कक्षों में अधिक समय रहने से भी श्वसन संबंधी रोगों की संभावना बढ़ती है। यहाँ यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि विकसित राष्ट्रों में भी श्वसन संबंधी रोगों पर प्रभावी नियंत्रण नहीं हो सका है इस कारण वहाँ भी बच्चों में इन रोगों की दर विकासशील देशों की तुलना में थोडी ही कम है।

संक्रमण खांसने, छीकने या सांस लेने, छोड़ने के दौरान रोग के जीवाणु या विषाणु हवा में पहुँच कर एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में प्रवेश करते हैं। फेफड़ों के संक्रमण मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं – एक उर्ध्व श्वसन संस्थान के रोग, इनमें साधारण सर्दी तथा फेरिंजाइटिस तथा ओटिस मीडिया शामिल है।

दूसरे तरह के संक्रमण होते हैं – श्वसन संस्थान के निचले हिस्से के संक्रमण। ये संक्रमण अधिक गंभीर होते हैं। इनमें न्यूमोनिया प्रमुख है। इस रोग में नाक बहना, खांसी, गले में खराश, श्वास लेने में कठिनाई व कानों में दर्द भी हो सकता है। कुछ बच्चों में सामान्य सर्दी के लक्षणों के पश्चात् ये संक्रमण गंभीर रूप ले सकते हैं। संक्रमण फेफड़ों तक पहुंचकर न्यूमोनिया उत्पन्न कर सकता है, जिसका यदि इलाज न किया जाए तो रोगी की मृत्यु तक हो सकती है। हमारे जैसे विकासशील देशों के बच्चों में श्वास नलिकाओं के संक्रमण जैसे–खसरा (मीजल्स) और कुकर खांसी भी होते हैं। इनका कारण यह है कि कई बार लोग अपने बच्चों का उचित टीकाकरण नहीं कराते हैं।

रोग की गंभीरता को पहचानने के लिए ; (1) श्वसन क्रिया का निरीक्षण - एक मिनट में श्वास की संख्या को घड़ी की मदद से गिनते हैं। दो महीने के शिशु में यदि श्वसन क्रिया की दर 60 या इससे अधिक है उसे सामान्य से ज्यादा अथवा तीव्र माना जाएगा। दो माह से 12 महीने के शिशु में यदि श्वसन दर 50 या इससे अधिक है तो उसे तीव्र समझा जाता है। 1 से 5 वर्ष के बच्चे में यदि श्वसन क्रिया की दर 40 या अधिक है तो उसे तीव्र मानेंगे। (2) बच्चे की छाती यदि श्वांस अंदर लेने के दौरान भीतर खिंचती दिखे तो यह न्यूमोनिया का लक्षण है। (3) जब बच्चा श्वांस छोड़ता है तो

श्वांस में रुकावट के कारण व्हीज या सीटी की आवाज आती है। (4) देखें कि बच्चे का शरीर ज्यादा गर्म तो नहीं है अर्थात् उसे बुखार तो नहीं है।

उक्त लक्षणों वाले शिशु या बच्चे को तुरंत चिकित्सक को दिखाकर इलाज लेना चाहिए क्योंकि शिशुओं में विशेषकर दो माह से कम के शिशु में न्यूमोनिया अत्यन्त खतरनाक हो सकता है।

रोग के इलाज के लिए रोग प्रतिरोधक दवाएं जैसे सल्फा मेथाक्सेजॉल (100मिग्रा.) और ट्राइमेथोप्रिम (20 मिग्रा.) की गोलियां अथवा सीरप (पीने की दवा) देते हैं। इसे स्वास्थ्य कर्मचारी की सलाह पर तुरंत शुरू कर सकते हैं। मात्रा निम्नानुसार है –

उम्र/वजन	गोली की प्रतिदिन की मात्रा	शिशुओं के सीरप की मात्रा (1चम्मच=5 मिली.)
दो माह	एक गोली	आधा चम्मच
3.5 किग्रा.	दो बार	दो बार
2से12 महीने	दो-दो गोलियां	एक-एक चम्मच
3.5 किग्रा.	दो बार	दो बार
1 से 5 वर्ष	3 गोलियां	डेढ़चम्मच(7.5मिली.)
3.5 किग्रा.	प्रतिदिन दो बार	दिन में दो बार

कई चिकित्सक एंपीसिलिन या एमॉक्सीसिलिन भी उपयोग करते हैं। लेकिन कोट्राइयोक्सॉल दवा ज्यादा उपयोग की जाती है। इसे 5 दिनों तक देना चाहिए। एक-दो दिन में स्थिति नहीं सुधरती तो बच्चे को अस्पताल में भर्ती करना ठीक रहता है। दो महीने से छोटे शिशुओं को कोट्राइयेक्सॉल की जगह बेजिल पेनिसिलिन या एंपीसिलिन दी जाती है।

बच्चे में अधिक गंभीर दशा के खतरनाक लक्षणों में - माँ का दूध न पी सकना अथवा अन्य द्रव न पी सकना; झटके आना, श्वांस में रुकावट और चेहरा नीला पड़ना आता है। ऐसे शिशु या बच्चे को तुरंत अस्पताल में भरती करना चाहिए।

रोगों से बचाव या सुरक्षा के लिए (1) बच्चों को स्वच्छ वातावरण में रखना जहाँ प्रदूषित हवा, धूल या धुंआ न हो। (2) पर्याप्त संतुलित आहार देना क्योंकि कुपोषण भी ऐसे रोगों की जड़ है। (3) बच्चों को समय से डी.पी.टी. और मीजल्स (खसरा) के टीके लगवाना भी बचाव का प्रमुख जरिया है।

भारत सरकार सन् 1992-93 से श्वसन रोगों पर नियंत्रण के लिए एक कार्यक्रम भी चला रही है। यहाँ यह बात भी समझ लेना जरूरी है कि 1 वर्ष तक की उम्र के बच्चे को शिशु कहते हैं और एक वर्ष से ऊपर के बच्चे को बच्चा कहा जाता है। और दो माह से कम के शिशु को छोटा शिशु माना जाता है। जैसा बताया गया है, दो माह से कम के शिशु को कोट्राइयेक्साल दवा न देकर बेजिल पेनिसिलिन देते हैं।

- डॉ. प्रेमचंद स्वर्णकार, एम.डी.
गायत्री नगर, दमोह (म.प्र.) - 470 661

3. फैक्टरी कर्मियों को हो सकते हैं खतरनाक रोग

बड़े शहरों में हजारों की संख्या में मिल-कारखाने या उद्योग होते हैं। एक तो पेट्रॉल-डीजल का धुआं, ऊपर से मिलों का कचरा और प्रदूषण उगलती चिमनियां शहर के वायुमंडल को प्रदूषित करती हैं। यह प्रदूषण सभी शहर वासियों के लिए तो नुकसानदेह होता ही है लेकिन इन कल-कारखानों में कार्य करने वाले व्यक्तियों पर और भी अधिक घातक प्रभाव डालता है।

कारखानों में प्रयुक्त होने वाले रासायनिक पदार्थ, ऊष्मा, ठंडक और उत्पन्न होने वाला शोरगुल, कंपन, धुआं, धूल इत्यादि वहां कार्य करने वालों के शरीर पर गलत प्रभाव डालकर कई तरह की बीमारियां, जैसे कैंसर, टी.बी., श्वास-नलिकाओं में सूजन, बहरापन, अपंगता इत्यादि उत्पन्न कर सकते हैं।

व्यावसायिक कारणों से कल-कारखानों के कर्मचारियों को होने वाले रोगों का संक्षिप्त विवरण निम्न है।

3 माइक्रॉन आकार की धूल स्वास्थ्य के लिए खतरनाक होती है। यह धूल जो बीमारियां उत्पन्न करती है उसे न्यूमोकोनियोसिस कहते हैं। यह बीमारी धीरे-धीरे मनुष्य की कार्यक्षमता कम करती है क्योंकि इससे फेफड़ों में 'फाइब्रोसिस' हो जाता है जिससे फेफड़ों में जाने वाली वायु का आयतन कम हो जाता है। धूल द्वारा खतरा कई अन्य बातों पर भी निर्भर करता है। जैसे - धूल का प्रकार, फेफड़ों में रोज जाने वाली मात्रा, धूल का आकार इत्यादि। अलग-अलग धूल से अलग-अलग तरह की बीमारियां होती हैं। यहां पाठकों की जानकारी के लिए संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है -

सिलिकोसिस में सभी तरह के न्यूमोकोनियोसिस में यह प्रमुख बीमारी है जो स्थायी अपंगता और कर्मचारियों की मृत्यु के लिए जिम्मेदार होती है। यह सिलिका युक्त धूल में सांस लेने के कारण होती है। रोग कोयला खदानों, अभ्रक की खदानों के अलावा स्वर्ण, रजत, मैंगनीज इत्यादि की खदानों में काम करने वाले कर्मचारियों में अधिक होता है। बिहार में अभ्रक (माइका) की खदानों में काम करने वाले 329 मजदूरों में 34 प्रतिशत मजदूरों में यह रोग पाया गया है। इसी तरह चीनी, सीमेंट, मिट्टी, रेत, चूना, मकान इत्यादि का काम करने वालों में भी यह रोग पाया जाता है। यदि छः वर्ष तक लगातार व्यक्ति ऐसी धूल के संपर्क में रहे तो यह पाया गया है कि उसे सिलिकोसिस रोग हो जाता है।

इस रोग के लक्षण हैं - खांसी, सांस लेने में दिक्कत, सीने में दर्द, एक्स-रे जांच में मरीज को क्षय रोग का भी अकसर पता चलता है। इसे सिलिको-ट्यूबरकुलोसिस कहते हैं।

एन्थ्रोकोसिस रोग कोयला खदान में काम करने वाले कर्मियों को होता है और न्यूमोकोनियोसिस का ही एक प्रकार है। बीमारी की दो अवस्थाएं होती हैं –अ) पहली अवस्था में काम करने के लगभग 2 वर्ष पश्चात् कोयला खदान में काम करने वाले कर्मियों को सांस की थोड़ी सी दिक्कत होती है। ब) दूसरी अवस्था में फेफड़ों में फाईब्रोसिस होने के कारण श्वसन तंत्र गंभीर रूप से प्रभावित हो जाता है। श्वास लेने में तकलीफ बढ़ जाती है। फेफड़ों में पहुंचने वाली हवा का आयतन पूर्वापेक्षा कम हो जाता है। इस रोग से मरीज की मृत्यु तक हो सकती है। भारतीय खान कानून, 1952 के अनुसार एन्थ्रोसिस एक अधिसूचित (नोटिफिएबल) बीमारी है। इस रोग से ग्रसित रोगी व्यक्ति को हर्जाना देने का भी प्रावधान है।

बायसिनोसिस रोग सांस द्वारा रुई (कॉटन) के रेशे और कपड़ा मिल की धूल को लंबे समय तक खींचते रहने से होता है। इसके लक्षण हैं, लंबे समय से खांसी, सांस लेने में कष्ट, फिर बाद में श्वास नलिकाओं में सूजन आ जाती है। काम करने वाले 7 से 8 प्रतिशत कर्मियों में यह रोग पाया जाता है।

बेगासोसिस रोग शक्कर के कारखानों में उड़ने वाली रेशे मिश्रित धूर से होता है। भारत में सबसे पहले बीमारी की पहचान सन् 1955 में चिकित्सा वैज्ञानिक पॉल एवं गाँगुली ने की। केन शक्कर के रेशे जो कागज और कार्ड बोर्ड इत्यादि में उपयोग किये जाते हैं, यह बीमारी उत्पन्न करते हैं।

इस बीमारी के लक्षण हैं - सांस लेने में कफ, खांसी के साथ बलगम में खून आना और थोड़ा-थोड़ा बुखार रहना। इसके साथ श्वास नलिकाओं में सूजन आ जाती है। बाद में फेफड़ों की कार्यक्षमता भी घट जाती है।

बचाव के लिए - (1) रोग के बचाव के लिये फैक्टरी में धूल पर नियंत्रण रखना चाहिए। (2) कर्मियों को मास्क पहनकर कार्य करना चाहिये। (3) बेगेसी पर नियंत्रण - इस रोग के फंगस 2 प्रतिशत प्रोपिओनिक अम्ल से नष्ट हो जाते हैं अतः मिल मालिकों को इसका प्रयोग करना चाहिए।

एस्बेस्टोसिस में एस्बेस्टॉस का उपयोग सीमेंट चादरें बनाने तथा अग्निरोधी कपड़ों के बनाने में किया जाता है एवं कई अन्य तरह की वस्तुएं भी इससे बनाई जाती हैं। एस्बेस्टोस के छोटे-छोटे रेशे (फायबर) होते हैं जो फैक्टरी में कार्य करने वालों के सांस द्वारा फेफड़ों में जाकर बीमारी उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। भारत में एस्बेस्टॉस आंध्र, बिहार, कर्नाटक और राजस्थान की खदानों से निकाला जाता है। एस्बेस्टॉस युक्त धूल फेफड़ों में जाकर बारीक श्वास नलिकाओं में जम जाती है और फेफड़ों में फाइब्रोसिस हो जाता है। इस कारण फेफड़ों में पर्याप्त हवा नहीं पहुंच पाती। इससे रोगी की मृत्यु तक हो जाती है। एस्बेस्टॉस, श्वास नलिका का कैंसर और यहां तक कि पाचन अंगों में कैंसर भी उत्पन्न करता है।

बीमारी के प्रमुख लक्षण हैं – सांस लेने में तकलीफ होना। कई मामलों में रोगियों की हाथ की उंगलियां मुग्दर के समान हो जाती हैं। रोगी के खंखार में भी 'एस्बेस्टॉस' के अंश मिलते हैं।

रोग से बचाव के लिए - (1) अपेक्षाकृत सुरक्षित प्रकार के एस्बेस्टॉस का उपयोग होना चाहिये। (2) इसमें अन्य पदार्थ, जैसे कांच के तंतु, कैल्शियम सिलिकेट, प्लास्टिक फोम इत्यादि मिलाने से भी एस्बेस्टॉस के रेशे सांस के साथ जाने का खतरा कम रहता है। (3) एस्बेस्टॉस के कारखानों के व्यवस्थापकों को धूल पर नियंत्रण के उपाय अपनाना चाहिये। (4) इन कारखानों में काम करने वालों को मास्क का उपयोग करना चाहिये। (5) समय-समय पर उक्त कारखानों में कार्य करने वाले मजदूरों एवं अन्य कर्मचारियों का स्वास्थ्य परीक्षण जिसमें सीने की एक्स-रे जांच भी शामिल हो, करवाना चाहिये। (6) किसानों के फेफड़ों की बीमारी भूसा एवं अनाज मिश्रित धूल में काम करने वाले किसानों को भी एक विशेष

तरह की बीमारी, जिसे फारमर्स लंग कहते हैं, हो जाती है। इस तरह की धूल में रोग के जीवाणी और फंगस होते हैं जो नमी मिलने पर संख्या में वृद्धि करके रोग उत्पन्न करते हैं। रोग करे लक्षणों में सांस में तकलीफ होना है। इस रोग में फेफड़े क्षतिग्रस्त भी हो जाते हैं।

शीशा और उससे बने यौगिक मानव के लिए घातक होते हैं। बहुत से उद्योगों में शीशे का उपयोग किया जाता है। इसके यौगिकों, जैसे लेड ऑक्साइड, लेड कार्बोनेट इत्यादि का प्रयोग भी बहुतायत से होता है। लगभग 200 से अधिक उद्योगों में शीशे का उपयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ - बैटरी उद्योग, कांच उद्योग, छपाई का काम, पानी के जहाज के निर्माण इत्यादि में यह धातु प्रयुक्त होती है।

मोटर कार एवं दुपहियां वाहनों एवं पेट्रोल-डीजल चलित अन्य वाहनों और इंजनों से निकली गैस में भी विषैली धातु उपस्थित रहती है। प्रतिवर्ष हजारों टन शीशा वायु मंडल में इन वाहनों द्वारा उत्सर्जित कर दिया जाता है जो मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त खतरनाक है। शीशा विषाक्तता निम्न तरीकों से हो सकती है।

1) लेड मिश्रित गैसें तथा शीशा युक्त सांस द्वारा शरीर के अंदर चली जाती हैं। शीशा शरीर के अंदर पहुंच जाता है। इस तरीके से शीशा विषाक्तता होती है। रंगीन खिलौनों के मुंह में रखने से भी बच्चों में शीशे की मात्रा पहुंच सकती है।

2) कुछ मात्रा में शीशे के विभिन्न यौगिक त्वचा द्वारा भी शरीर के भीतर जा सकते हैं।

पेट में दर्द, कब्ज, भूख की कमी, मसूढ़ों पर नीली रेखा, रक्त की कमी, नींद न आना, सिर दर्द, मति भ्रम इत्यादि शीशा विषाक्तता के लक्षण होते हैं।

रोग के इतिहास अर्थात् शीशा युक्त गैंसें, धूल, यौगिकों इत्यादि से संपर्क की जानकारी तथा उपर्युक्त लक्षणों के अलावा प्रयोगशाला में सी.पी.यू. जांच तथा रक्त एवं पेशाब में उपस्थित शीशे की मात्रा के आधार पर रोग का निदान करते हैं।

बचाव के लिए -

1) शीशा के यौगिकों की जगह अन्य काम विषैले पदार्थों का इस्तेमाल किया जाना चाहिये।

2) जहाँ शीशी के धूल फैलती है उस जगह को बंद करके रखा जाना चाहिये। ऐसे जगह मानव प्रवेश की भी अनुमति नहीं दी जानी चाहिये।

3) कर्मचारियों को रेस्पिरेटर्स यंत्र द्वारा सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिये।

4) कर्मचारियों की समय-समय पर जांच की जानी चाहिये जिसमें उनके रक्त एवं पेशाब में शीशे की मात्रा का पता किया जा सके। बोसोफिल नामक रक्त कोशिकाओं के असामान्य आकार के भी शीशा विषाक्तता का पता चलता है।

5) स्वास्थ्य शिक्षा - कर्मचारियों को शीशा विषाक्तता के खतरों के प्रति सावधान करके उन्हें बचाव के तरीके भी बताने चाहिये।

औद्योगिक क्षेत्रों में विभिन्न उद्योगों द्वारा उत्पन्न होने वाले कैंसर एक महत्वपूर्ण समस्या हैं। इस तरह के कैंसर में प्रमुख रूप से त्वचा, फेफड़ों, मूंत्राशय तथा रक्त कैंसर प्रमुख हैं।

कोलतार, कुछ तरह के तेल, रंगीन डाइ इत्यादि के संपर्क से शरीर एवं पोते की त्वचा में कैंसर होने के प्रमाण मिले हैं। कल-कारखानों द्वारा होने वाले कुल कैंसर का 75 प्रतिशत केवल त्वचा कैंसर का होता है। गैस, कोक और तेल - शोधक संयंत्रों में काम करने वालों तथा कोलतार से रास्ते बनाने वालों में इस तरह के कैंसर हो सकते हैं।

एस्बेस्टॉस उद्योग, गैस उद्योग, क्रोमियम, निकल एवं आर्सेनिक उद्योगों में कार्य करने वाले कर्मियों को फेफड़ों का कैंसर का खतरा रहता है।

एनिलीन डाई वाले उद्योगों में कार्य करने वालों में सन् 1985 में इस तरह के कैंसर का पता लता था। अभी हाल में रबड़ उद्योग कर्मियों में भी मूत्राशय कैंसर का पता चला है। कई तरह की एनिलरन डाई इस रोग के लिए जिम्मेदार होती है।

औद्योगिक क्षेत्रों में विभिन्न उद्योगों द्वारा उत्पन्न होने वाले कैंसर एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। इस तरह के कैंसर में प्रमुख रूप से त्वचा, फेफड़ों, मूत्राशय तथा रक्त कैंसर प्रमुख हैं।

रेडियो सक्रिय पदार्थ और राँजन किरणों से रक्त कैंसर हो सकते हैं। बेंजोल नामक पदार्थ भी इस मामले में खतरनाक साबित हुआहै। ये कैंसर उत्पन्न होने में 10 से 25 वर्ष तक लग जाते हैं।

त्वचा की सूजन, गर्मी, नर्मी, ठंकड, रगड़, दबाव, विकिरण किरणों इत्यादि से हो सकती है। बहुत से रासायनिक पदार्थ, जैसे - अम्ल, क्षार, रंग, घोल कोलतार इत्यादि भी त्वचा की सूजन उत्पन्न करते हैं। जैविक कारकों में विषाणु, जीवाणु, फंगस इत्यादि भी यी रोगी उत्पन्न करने में सक्षम होते हैं। कुछ खाद्या, जैसे सब्जियां, फल इत्यादि के अधिक संपर्क से भी सूजन उत्पन्न हा सकती है।

निम्न उपायों को दृष्टिगत रखते हुए त्वचा की सूजन से बचा जा सकता है।

1) कर्मचारियों को काम पर लिए जाने से पूर्व डरमेटाइसिस की संभावना का पता किया जाना चाहिये।

1) कर्मियों को सुरक्षात्मक साधन, जैसे - दस्ताने, जूते और एप्रन इत्यादि उपलब्ध करवाए जाने चाहिये।

3) व्यक्तिगत साफ-सफाई, जैसे - काम के पश्चात साबुन से हाथ-पैर धोना और साफ टॉवेल से उन्हें पोंछना इत्यादि उपायों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। काम के पश्चात पहनने के कपड़े भी बदले जाने चाहिये।

4) समय-समय पर प्रत्येक कर्मी के स्वास्थ्य की जांच की जानी चाहिये। ताकि डरमेटाटिस जैसे रोगों का भी पता चल सके।

कृषक पशुओं के निकट संपर्क में प्रायः हमेशा रहते हैं। इससे उन्हें बसेलोसिस, एन्थ्रेक्स, टिटनेस, क्षयरोग (बोवीन) क्यू बुखार इत्यादि रोग होने का खतरा रहता है। कृषि कार्य में विभिन्न रसायनों, जैसे रासायनिक खाद, कीटनाशकों इत्यादि का प्रयोग अकसर होता है। सावधानियों के अभाव में कृषक इनकी विषाक्तता के शिकार हो जाते हैं। अनाज की धूल और बारीक भूसा या रेशों के कण, श्वसन द्वारा फेफड़ों में जाने से पूर्व वर्णित बीमारियां, जैसे - बाइसिनोसिस, बंगोसोसिस, फारमर्स लंग, दमा इत्यादि हो जाते हैं। कृषकों को विपरीत मौसम, जैसे अधिक गर्मी, ठंड, वर्षा में रहना पड़ता है। इस कारण भी वे कई स्वास्थ्य समस्याओं से ग्रसित हो जाते हैं। दुर्घटनाओं के शिकार तो प्रायः सभी उद्योगकर्मी भी हो सकते हैं। लेकिन विकासशील देशों में कृषि कार्य करने वाले लोग भी अकसर दुर्घटनाओं के शिकार हो जाते हैं। उदाहरणार्थ - सर्पदंश, बिच्छु इत्यादि द्वारा काटना, इसके अतिरिक्त कृषि कार्य में प्रयुक्त मशीनें, जैसे - थ्रेशर, हार्वेस्टर, ट्रेक्टर, विद्युत पंप इत्यादि से भी दुर्घटनाएं होती रहती हैं।

विभिन्न उद्योग कर्मियों के लिए शासन और कंपनियों की ओर से उनके हित में विभिन्न स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रावधान है। कई कानून भी इसके लिए बनाए गये हैं। फैक्टरी एक्ट, 1948 के अनुसार उद्योग कर्मियों के स्वास्थ्य और कल्याण का उत्तरदायित्व कंपनी का है। कार्य के लिये कम से कम 500 वर्ग फुट क्षेत्र प्रत्येक कर्मी को दिया जाना चाहिये। फैक्टरी में धोने की सुविधा, कपड़े सुखाने की सुविधाएं इत्यादि होनी चाहिए। एक्ट के अनुसार 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चे को काम पर नहीं रखा जा सकता है एवं सप्ताह में उद्योग कर्मियों से 48 घंटे से अधिक कार्य नहीं लिया जाना चाहिये।

उद्योग के व्यवस्थापकों को उद्योगों से हाने वाली बीमारियों या दुर्घटनाओं की सूचना देनी होगी। खतरनाक उद्योगों में चीफ इंस्पेक्टर सहित एक कमेटी, निगरानी के लिए रहती है। कर्मचारियों का दुर्घटना बीमा भी होना जरूरी है। उद्योग कर्मियों के हितों के रक्षार्थ कर्मचारी राज्य बीमा (इ.एस.आई.) नामक बीमा भी होता है, जो कई तरह के लाभ जैसे - चिकित्सा लाभ, बीमारी लाभ, पुनर्वास लाभ इत्यादि देती हैं।

इसके बावजूद उद्योग कर्मियों का उद्योग जनित बीमारियों के खतरों से बचाने के लिए अभी भी प्रभावी कदम उठाने की आवश्यकता है क्योंकि अधिकतर उद्योगपति या कंपनियां मुनाफे की ओर अधिक ध्यान देती हैं, बजाय अपने कर्मचारियों के स्वास्थ्य की ओर ध्यान देने के।

- डॉ. प्रेमचंद स्वर्णकार, एम.डी.
गायत्री नगर, दमोह (म.प्र.) - 470 661

4. टाइफा - इंदिरा गांधी नहर की एक उपयोगी खरपतवार :

रेगिस्तान का नाम आते ही तेज गर्मी, तूफानी धूलभरी आंधियां, चलायमान टीले आदि का स्मरण सामान्यतः होता रहा है। परन्तु इंदिरा गांधी नहर परियोजना के आने के बाद न केवल इस क्षेत्र में पीने के पानी की समस्या का समाधान हुआ है वरन् क्षेत्र की वनस्पति में भी सुधार हुआ है। इस नहर के आने से कई जन्तु एवं पादप प्रजातियां विकसित हुई है जो पहले नहीं थी। वस्तुतः इन प्रजातियों के बीज नहर के पानी के साथ प्रकीर्णन द्वारा वहाँ आ गये एवं उनका अंकुरण इस क्षेत्र में हो गया। ऐसी मान्यता है कि इस थार रेगिस्तान के मरू क्षेत्र में कभी सरस्वती नहर हुआ करती थी। जैसलमेर में स्थित ''जीवाश्म उद्यान'' में रखे जिम्नोस्पर्म (अनावृत बीजी) पौधों की उपस्थिति इस मान्यता को अधिक बल प्रदान करते है। इंदिरा गांधी नहर परियोजना से क्षेत्र के जलस्तर में वृद्धि के साथ क्षेत्र की हरियाली में भी वृद्धि हुई है, परन्तु साथ ही कई तेज गति से बढ़ने वाली खरपतवारें न केवल पानी के बहाव में रुकावट पैदा करती है, वरन् नहर के लिए भी एक खतरा

बन रही है। ऐसी ही खरपतवारों में से एक है - टाइफा।

टाइफा एक जलीय अथवा दलदली क्षेत्रों में उगने वाली एक शाकीय झाड़ी है जिसके राइजम रेंगते हुए वृद्धि करते है। टाइफा प्रजाति को सामान्यतः बिल्ली की पूंछ (Cat-Tails) कहते हैं। ये मुख्यतः सजावट के लिए जलीय उद्यानों एवं तालाब आदि के किनारे उगाये जाते है। यह धीमी गति से बहने वाले अथवा स्थिर मीठे एवं खारे जल का पौधा है परन्तु बाढ़ में जीवित नहीं रह सकता है।

इसके बीज अथवा राइजोम निक्षेपित बालू के कर्णो से निर्मित पंक पर पनपकर नये पौधों का निर्माण करते है जबकि राइजोम कापिक प्रवर्धन द्वारा अपनी संख्या बढ़ाता रहता है। इसकी अत्यधिक प्रजनन क्षमता के कारण यह बहुत कम समय में क्षेत्र को भर सकता है।

इसके बीज अथवा राइजोम निक्षेपित बालू के कर्णो से निर्मित पंक पर पनपकर नये पौधों का निर्माण करते है जबकि राइजोम कापिक प्रवर्धन द्वारा अपनी संख्या बढ़ाता रहता है। इसकी अत्यधिक प्रजनन क्षमता के कारण यह बहुत कम समय में क्षेत्र को भर सकता है। इसके युवा तने, पुकैंसर एवं राइजोम विभिन्न रूपों में खाये जाते है। इसकी कुछ प्रजातियों से प्राप्त रेषे का उपयोग रुई, ऊन व जूट के व्युत्पन्न के रूप में किया जाता है।

टाइफा की पत्तियाँ सीधी, त्रिकोणीय, चिकनी व गाढ़े रंग की तथा 1.2 से 1.8 मीटर तक लम्बी एवं 1.2 से 1.8 सेंमी. तक चौड़ी होती है। इसका राइजोम मोटा एवं भू:त्तारिक होता है, जो रंगकर भूमि की सतह पर फैलता है एवं नये जड़ तंत्र एवं पौधे को जन्म देता है। शुष्क भार के आधार पर इसका करीब आधे से अधिक भाग जड़ तंत्र का होता है। इसकी अत्यधिक वृद्धि दर के कारण पत्तियां एवं तने सड़ते रहते है जिससे कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि होती रहती है एवं कुछ ही समय में जलीय क्षेत्र को पहले दलदल में एवं अन्त में भूमि क्षेत्र में भी परिवर्तन करने की क्षमता रखता है।

इसकी विभिन्न जातियाँ विश्व के शीतोष्ण एवं उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में पाई जाती है। भारत में पाई जाने वाली तीन प्रमुख प्रजातियाँ है - ''टाइफा ऑस्ट्रेलिस'', ''टाइफा एलीफैन्टाइना'' व ''टाइफा एंगस्टीफोलिया'' एवं ''टाइफा लेक्सेमनाई''। इनमें ''टाइफा एलीफैन्टाइना'' प्रमुख है। ''टाइफा एलीफैन्टाइना'' को हाथी घास भी कहते हैं। इसे हिन्दी में मोथीट्रिना, बोरा, बंगाली व उड़िया में होगला, मारवाडी में इरेका व रेम्बडना, गुजराती में गाबाजारिन, तेलगू में इन्यूगाजामू, तमिल में अनाईकोरई, एनिपीपूल, एवं चम्बा तथा कन्नड में अपू, जाभजूहालू कहते हैं। कश्मीर में इसे पिट्जव वीरा, पंजाब में बोज, बोरी, गौड, लूख आदि नामों से पुकारा जाता है। यह प्रजाति कश्मीर एवं उत्तरप्रदेश से आसाम तक पाई जाती है। इसकी पत्तियां, तना आदि रस्सी, छप्पर, बाड़ आदि बनाने के अतिरिक्त कलम बनाने में भी होता है। इसका राइजोम स्तम्भक एवं मूत्रवर्धक के रूप में भी प्रयुक्त होता है।

''टाइफा आस्ट्रेलिस'' लगभग संपूर्ण भारत में पाई जाती है तथा 1730 मीटर तक आसानी से उगती है। इसे हिन्दी में पटेरा, बंगाली में कांव, होगला, मारवाड़ी में पानलूनिस, पान व जंगली-बाजरी, गुजराती में गाबाजारियों, पंजाब्रिस व परिओ, तेलगू में जम्मूगडी, डाबूजामू व जामू तमिल में साम्बू एवं कन्नड में आपू, मारिवाला आदि नामों से जाना जाता है। कश्मीर एवं पंजाब में इसे पटिरा, पिट्ज, कुन्दार एवं कई आदिनामों से जाना जाता है। इसका पुष्पवृक्ष, राइजोम व तना विभिन्न रूपों में खाये जाते है। इसकी पत्तियों एवं पुष्पों में एक एल्केलोइड पाया जाता है। इसका राइजोम भी स्तम्भक तथा मूत्रवर्धक है इसके पराग कणों का उपयोग आकस्मिक सर्जरी के समय लाइकोपोडियम के बीजों की जगह अवशोषक के रूप में प्रयुक्त होता है। इसकी पत्तियों से कई घरेलू वस्तुएँ बनाई जाती है। इसको 80,000 - 90,000 टन पत्तियां गुजरात के बनासकांठा व मेहसाना जिलों में ही वार्षिक रूप से एकत्र की जाती है। इसमें से 40,000 टन एक्सट्रेट की जाती है, जबकि राजस्थान में भी कुछ मात्रा उपयोग में लाई जाती है। इसके मनचूरिया से एकत्र बीजों में 20 प्रतिशत तक तेल भी मिलता है। टाइफा की तीसरी प्रजाति टाइफा लैक्समेनाई कश्मीर के गिलगिट क्षेत्र में 2700 मीटर की ऊँचाई पर पाई जाती है। इस पादप का उपयोग संभवतः रेयॉन बनाने में होता है।

टाइफा की अत्यधिक वृद्धि दर के कारण प्रतिवर्ष इसको पानी से निकालने हेतु भारी भरकम खर्च वहन करना पड़ता है। टाईफा के कई संभावित उपयोगों के बारे में लोगों में जागरूकता पैदा करने की आवश्यकता है जिससे लोग स्वतः ही इन्हें पानी से बाहर निकालते रहे तथा इससे क्षेत्र की

आर्थिक उन्नति भी हो सके। टाइफा के कुछ संभावित उपयोग है –

टाइफा की विभिन्न प्रजातियों की पत्तियों एवं तनों से एक प्रकार का रेशा प्राप्त होता है। इस पौधे से रेशों का उत्पादन 40 प्रतिशत तक होता है। इस प्रकार प्राप्त रेशों में 63 प्रतिशत सेलूलोज होता है तथा ये सफेद या हल्के भूरे रंग के होते हैं। इन रेशों पर मोम लगाकर चमक एवं लचीलापन दिया जाता है। इनका उपयोग मुख्यतः मोटे कपड़ों एवं कार्पेट की सिलवटें बनाने में होता है। इन रेशों को भिगोने पर इनकी मजबूती बढ़ जाती है अतः इसे समुद्री रस्से एवं मछली पकड़ने की जाल बनाने में प्रयोग किया जाता है। भविष्य में कपड़ा उद्योग के लिए टाइफा एक प्रमुख कच्चा माल बन सकता है।

टाइफा की नवजात कोपलें खाई जाती है जबकि इसकी पत्तियाँ हाथी का प्रिय चारा है। इसके राइजोम में स्टार्च की मात्रा अधिक होती है। ऑस्ट्रेलिया में इसे वहाँ के आदिवासी भूनकर जाते हैं।

टाइफा की रेशेदार पत्तियाँ एवं तनों का उपयोग बाड़ लगाने, मोटे रस्से बनाने एवं छप्पर बनाने में होता है जबकि इसकी सूखी टहनियाँ लिखने की कलम मछली पकड़ने की ट्रे एवं अनाज के दानों को भूसे से अलग करने का सामान बनाने में होता है। इसके पुष्प कम पकने पर रूई के समान रेशमी तन्तु देते हैं जिन्हें तकिया बनाने में प्रयुक्त किया जाता है। इसकी पत्तियों का पाउडर संधिरोधक के रूप में प्रयुक्त होता है।

टाइफा के प्रकन्द एवं राइजोम का प्रयोग स्तम्भर एवं मूत्रवर्धक के रूप में होता है। इसके अतिरिक्त अतिसार, सुजाक व खसरा आदि रोगों में भी इसका उपयोग होता है। पूर्व में आकस्मिक सर्जरी के समय अवशोषक के रूप में इसका उपयोग लाइकोपोडियम के बीजों के स्थान पर किया जाता था। इसके पुजातीय स्पाइक पुष्पक में एवं पके हुए फल के नीचे के मुलायम एवं उनी लोमक औषधयुक्त अवशोधक के रूप में आकस्मिक चोट एवं अल्सर में आज भी ग्रामीण स्तर पर प्रयुक्त होते हैं। सुदूर क्षेत्रों में सामान्यतः इसे घावों में भर दिया जाता है जो चोट ठीक होने के साथ ही बाहर निकल आता है।

यह सामान्यतः एक खरपतवार के रूप में जाना जाता है, परन्तु यह एक अच्छा मृदा संरक्षक भी है। इसी कारण टाइफा को जल स्त्रोतों अथवा झील के तटीय क्षेत्रों में मृदा बंधक के रूप में लगाया जाता है। इसकी अत्यधिक वृद्धि के कारण इसकी पत्तियां व तना सड़ता है एवं बड़ी मात्रा में कार्बनिक पदार्थ बनता है जो सूक्ष्म जीवों के भोजन के रूप में उपयोग किया जाता है। ये सूक्ष्म जीव जलीय खाद्य जाल का एक प्रमुख अवयव है तथा इस प्रकार ये जलीय पारिस्थितिकी तंत्र के परिसंचरण में सहायक होते हैं।

ऑस्ट्रेलिया में रेनीसन गोल्डपिळ्क कस्सोलिडेटेड (आर.जी.सी.) मिनरल सैंड लिमिटेड द्वारा निर्मित कृत्रिम जलाशय है जिसके तटीय क्षेत्रों में उगाई गई घासों में टाइफा प्रमुख है एवं पर्यटन का मुख्य केंद्र है। भारत में इसी प्रकार टाइफा लगाकर पर्यटन केंद्रों की सुंदरता बढ़ाई जा सकती है। टाइफा से नहर किनारे बने वाले लवणीय जलमग्न क्षेत्रों का भी विकास किया जा सकता है जो उस क्षेत्र से संबंधिच जीवों के लिए घर, घोंसला व शरण आदि कार्यों के लिए सहायक हो सकता है।

इससे प्राप्त रेशों, कपास ऊन के प्रतिस्थायी के रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं। इसके तंतु व पुष्प कम जीवन रक्षक आवरण व विद्युत रोधी के रूप में तथा पेपर उद्योग में प्रयुक्त हो सकते हैं। भारत में रेशा उद्योग में ''टाइफा ऑस्ट्रेलिस'' एवं टाइफा एलिफेन्टीना का व्यापारिक स्तर पर दोहन कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश व पश्चिमी बंगाल में होता है। अकेले पंजाब में 7 से 10 हजार हैक्टेयर में टाइफा का दोहन होने की पुष्टि हो चुकी है।

इस प्रकार जलकुम्भी जो ''बंगाल का त्रास'' कहलाती है की तरह ही टाइफा को ''इंदिरा गांधी नहर का वास'' बनाने से रोकने हेतु लोगों में जागरूकता पैदा करने की आवश्यकता है जिससे इनका व्यापारिक दोहन हो सके एवं हर वर्ष नहर से घास निकालने हेतु एक बड़ी राशि खर्च करने के स्थान पर इस खरपतवार से भी आमदनी अर्जित की जा सके।

- डॉ. एन. के. बोहरा
शोध अधिकारी
नॉन उड डिविजन
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून (उत्तराखंड)

विज्ञान समाचार

भा.प.अ. केंद्र से :

1. टेल्युरियम अर्धचालक पर आधारित विषाक्त गैस संवेदक :

वर्तमान समय में पर्यावरण प्रदूषण के प्रति बढ़ती जागरुकता ने, वैज्ञानिकों को ऐसी सुदृढ़ तकनीक वाले संवेदकों के विकास के लिए प्रेरित किया है, जिनके द्वारा विषाक्त गैसों की न्यून मात्रा को भी ज्ञात किया जा सके। गैस संवेदक के रूप में सामान्यतः अर्धचालकयुक्त पदार्थों का उपयोग किया जाता है जिनमें से कुछ प्रमुख पदार्थ हैं SnO_2, WO_3, ZnO और TiO_2। ये सभी पदार्थ n-प्रकार के अर्धचालक होते हैं तथा इनके प्रचलन हेतु उच्च तापमान (200-400° C) की आवश्यकता होती है। साथ ही इस प्रकार के संवेदकों के प्रयोग में ऊर्जा की अधिक खपत (200 mW से लगभग 1W तक) होती हैं तथा इन्हें लम्बी अवधि तक इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। पिछले कुछ वर्षों से ऐसे पदार्थों के विकास पर कार्य किये जा रहे हैं जिनका उपयोग विषाक्त गैसों के संसूचन हेतु निम्न तापमान, विशेषकर परिवेशी तापमान पर किया जा सके। हाल ही में किये गये अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि टेल्युरियम की पतली फिल्मों का प्रयोग कर कुछ विषाक्त गैसों जैसे कि NO_2, CO एवं प्रोपाइलएमीन के संवेदक के रूप में, सामान्य तापमान पर किया जा सकता है। इसके आधार पर भा.प.अ. केंद्र द्वारा विकसित सामान्य तापमान पर प्रचलित होने वाली टेल्युरियम से बनी विभिन्न आकृतियों जैसे कि पतली फिल्मों तथा टेल्युरियम नैनोसंरचना वाली फिल्मों का विषाक्त गैसों के संवेदक के रूप में अन्वेषण किया गया है। इन फिल्मों द्वारा अपचायक गैसों तथा ऑक्सीकारक गैसों के लिए अलग-अलग गुणधर्म प्रदर्शित किये गए हैं। इन संवेदकों की संवेदनशीलता और चयनात्मकता का अध्ययन विभिन्न गैसों के संदर्भ में किया गया है। प्राप्त परिणामों से ज्ञात हुआ है कि टेल्युरियम अर्धचालक से बने गैस संवेदक सामान्य तापमान पर भी विषाक्त गैसों की पीपीएम मात्रा (ppm level) का पता लगाने के लिए अत्यधिक उपयोगी है।

टेल्युरियम एक तात्विक अर्धचालक है जिसके संयोजन बैंड तथा चालन बैंड के बीच ऊर्जा अंतर 0.34 इ.वो. (eV) होता है और यह p-प्रकार के अर्धचालक के रूप में कार्य करता है। चूंकि टेल्युरियम का गलनांक कम होता है (~723K) अतः इसे विभिन्न प्रकार की आकृतियों में आसानी से तैयार किया जा सकता है। तकनीकी और आर्थिक दृष्टि से अनुकूल इस प्रकार के संवेदकों की प्रौद्योगिकी जल्दी ही बाजार में उपलब्ध हो जायेगी।

2. तापविद्युत युक्तियों हेतु प्रौद्योगिकी का विकासः

विश्व स्तर पर हो रहे औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप ऊर्जा की बढ़ती मांग और वैश्विक तापमान वृद्धि को ध्यान में रखते हुए तापविद्युत युक्तियों (Thermoelectric Devices) द्वारा विद्युत ऊर्जा उत्पादन की दिशा में परिवर्तित करती हैं। ये युक्तियाँ तापविद्युत प्रभाव के सिद्धांत पर आधारित होती हैं। जिनका उपयोग विद्युत के उत्पादन, तापमान मापन तथा किसी वस्तु को ठंडा करने अथवा गरम करने में किया जाता है। ये युक्तियाँ कई n- तथा p- प्रकार के अर्धचालक युक्त तत्त्वों से मिलकर बनी होती हैं, जिनमें श्रेणीक्रम में विद्युत संयोजन तथा समान्तर क्रम में तापीय संयोजन होता है। इनके बीच विद्युत संपर्क स्थापित करने के लिए मुख्यतः धातु इलेक्ट्रोडों का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार की युक्तियों से उच्च दक्षता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि तापीय तत्त्वों तथा इलेक्ट्रोडों के बीच की संधि का विद्युत प्रतिरोध कम हो और ये तापीय चक्रण के दौरान क्षतिग्रस्त न हों। तापीय प्रसार के कारण होने वाली यांत्रिक क्षति को रोकने के लिए धातु इलेक्ट्रोड तथा ताप विद्युत पदार्थों के बीच, मध्यम तापीय प्रसार वाले पदार्थों की एक बफर सतह का इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके अलावा ऐसे पदार्थों का उपयोग किया जा सकता है जिनका संधि पदार्थों तथा तापीय तत्त्वों के बीच अंतर्विसरण (Interdiffusion) न हो। इसीलिए ताप विद्युत शीतलक में n- और p- प्रकार के तापीय तत्त्वों को जोड़ने के लिए SnBi जैसे संधि पदार्थों का उपयोग किया जाता है। परन्तु उच्च तापमान पर प्रचलित होने वाली तापविद्युत युक्तियों में विसरण संबंधी समस्या उत्पन्न होती है जिसमें समय के साथ युक्ति की कार्यक्षमता में कमी आती है। यही कारण है कि उच्च क्षमता वाली तापविद्युत युक्तियों का निर्माण मुश्किल होता है।

भा.प.अ. केंद्र के अंतर्गत तकनीकी भौतिकी एवं प्रोटोटाइप अभियांत्रिकी प्रभाग (अब तकनीकी भौतिकी प्रभाग) के वैज्ञानिकों द्वारा उच्च तापमान पर कार्य करने वाली ताप विद्युत युक्तियों के लिए विसरण रहित, अतिनिम्न

प्रतिरोध (<10μOhm cm²) वाले विद्युत संस्पर्शों का विकास किया गया है। सामान्यतः उच्च तापमान पर कार्य करने वाली ताप विद्युत युक्तियों हेतु जिन अर्धचालक मिश्र धातुओं का बहुतायत में प्रयोग होता है, उनमें प्रमुख हैं n-प्रकार की PbTe तथा p- प्रकार की ($AgSbTe_2$) 0.15(GeTe) 0.85 (TAGS-85) एवं Si-Ge मिश्र धातु। इन पदार्थों से बनी तापविद्युत युक्तियां का अंतरिक्ष अभियान में से 1961 से इस्तेमाल हो रहा है और 20 वर्षों से भी अधिक समय तक इनका सफलतापूर्वक प्रचालन किया गया है। केंद्र में विकसित किये गए संस्पर्शों का n- प्रकार के PbTe तथा p- प्रकार के (TAGE-85) ($AgSbTe_2$) 0.15 (GeTe) 0.85 तापीय तत्त्वों पर उपयोग कर विकसित की गयी तापविद्युत युक्ति द्वारा बेहतर परिणाम प्राप्त किये गए हैं। संपूर्ण युक्ति के कुल प्रतिरोध में संस्पर्शों का योगदान मात्र 3.5% पाया गया और इस युक्ति की कार्यदक्षता 6% प्राप्त की गयी है। विकसित की गयी इस ताप विद्युत युक्ति का आठ महीनों से भी अधिक समय तक, बिना किसी निर्गत विद्युत ऊर्जा ह्रास के, सफलतापूर्वक लगातार प्रचालन किया गया है।

3. एल्यूमिना तथा एल्यूमिना आधारित पदार्थों के संश्लेषण की सॉल-जैल प्रक्रिया का विकास :

भा.प.अ. केंद्र के ईंधन रसायन प्रभाग द्वारा एल्यूमिना तथा एल्यूमिना आधारित पदार्थों के संश्लेषण सॉल-जैल (Sol-Gel) प्रक्रिया की विभिन्न तकनीकों के माध्यम से किया गया है। सॉल-जैल प्रक्रिया पदार्थों के संश्लेषण की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें पदार्थ के निलंबित कणों वाला विलयन, जल अपघटन तथा संघनन क्रियाओं द्वारा, एक नयी प्रावस्था सॉल का निर्माण करता है। नैनोमीर आकार के निलंबित ठोस कणों वाला यह सॉल रासायनिक निक्षेपण तथा बहुलीकरण की प्रक्रिया द्वारा नयी प्रावस्था जैल का निर्माण करता है। निम्न तापमान (25-100° C) पर इस जैल को सुखाने से सरंध्र ठोस पदार्थों का निर्माण होता है। अतः सॉल-जैल प्रक्रिया द्वारा उच्च परिशुद्धता तथा अत्यधिक समांगता वाले सिरेमिक पदार्थों का निर्माण किया जाता है। सॉल-जैल प्रक्रिया उच्च तकनीकी पदार्थों के संश्लेषण की उत्तम विधि है। सॉल-जैल प्रक्रिया द्वारा निर्मित एल्यूमिना सिरेमिक्स विभिन्न प्रकार के लेपन पदार्थ, उत्प्रेरकों के निर्माण तथा पृथकरण प्रौद्योगिकी में उपयोग आने वाली झिल्लियों के निर्माण में बहुत उपयोगी हैं। क्रोमिया मिश्रित एल्यूमिना और नियोडिमियम मिश्रित YAG का लेजर प्रौद्योगिकी में अत्यधिक उपयोग है। बायोसिरेमिक का उपयोग कृत्रिम दांत एवं हड्डी बनाने में होता है। एल्यूमिना पदार्थों की, उच्च तापीय एवं विकिरण स्थायित्व, रासायनिक अक्रियाशीलता तथा बृहद पृष्ठ क्षेत्रफल वाली संरंध्र संरचना के कारण इन्हें विविध अनुप्रयोगों हेतु उपयोग में लाया जाता है।

एल्यूमिना आधारित पदार्थों की अत्यधिक उपयोगिता के चलते ही केंद्र में इन पदार्थों के निर्माण की प्रौद्योगिकी के विकास में महत्त्वपूर्ण अनुसंधान किये जा रहे हैं। कई विशिष्ट उपयोगिता वाले सिरेमिक पदार्थों का संश्लेषण किया जा चुका है। एल्यूमिना सॉल से भौतिक एवं रासायनिक जिलेटिनन द्वारा डिस्क तथा बेलन के आकार के एल्यूमिना मोनोलिथ का निर्माण किया गया है। एल्यूमिना सॉल में क्रोमियम नाइट्रेट विलयन का समांगी मिश्रण तैयार कर जिलेटिनन के पश्चात इसे आक्सी एसीटिलीन की ज्वाला में गरम करके कृत्रिम कीमती पत्थर रूबी का निर्माण किया गया है। एल्यूमिना नाइट्रेट विलयन से उच्च परिशुद्धता वाले इट्रियम एल्यूमिनियम गार्नेट (YAG) तथा नियोडिमियम मिश्रित YAG का निर्माण एक साधारण नई पद्धति जिसे जैल संपाशन तकनीक (Gel Entrapment Technique) कहा जाता है के विकास द्वारा किया गया है। आंतरिक जिलेटिनन प्रक्रिया (Internal Gelation Process) द्वारा हेक्सामेथॉलनटेट्राएमीन (HMTA) और यूरिया को जिलेटिनन कारक के रूप में उपयोग करते हुए एल्यूमिनिम नाइट्रेट विलयन से वांछित आकार एवं संरंध्रता वाले ठोस एल्यूमिना कणों को तैयार किया गया है। इसी प्रकार इन एल्यूमिना ठोस कणों में महत्वपूर्ण रूपांतरण कर सूक्ष्म क्रिस्टलीय अमोनियम मॉलिबडो फॉस्फेट (AMP) को अंतः स्थापित किया गया है। AMP, उपयोगी एवं प्रमुख विखंडन इत्पाद सीजियम के चयनित पृथकरण हेतु अतिउपयोगी है। चूंकि AMP सूक्ष्म क्रिस्टलीय पाउडर के रूप में होता है अतः इसका सीधे उपयोग पृथक्करण कॉलम में नहीं किया जा सकता है। AMP अंतःस्थापित एल्यूमिना ठोस कणों को कॉलम प्रचालन हेतु आसानी से इस्तेमाल में लाया जा सकता है। इसी तरह जियोलाईट भी एक क्रिस्टलीय एल्यूमिनो सिलिकेट है जिसका उपयोग रेजिन, उत्प्रेरकों इत्यादि के रूप में किया जाता है। अतः विविध अनुप्रयोगों हेतु एल्यूमिना ठोसों पर महत्वपूर्ण रूपांतरण द्वारा जियोलाईट का जलतापीय संश्लेषण किया गया है। इन सभी पदार्थों की संश्लेषण से

लेकर अभिलक्षणन तक की संपूर्ण प्रक्रिया इस केंद्र में विकसित की गयी है और इन पदार्थों का उपयोगिता के आधार पर विभिन्न अनुप्रयोगों में सफलतापूर्वक इस्तेमाल हो रहा है।

4. अवरक्त संसूचन प्रणाली पर आधारित कार्बन विश्लेषक का विकास :

यूरेनियम धातु में उपस्थित कार्बन की मात्रा का पता लगाने के लिए एक कार्बन विश्लेषक का अभिकल्पन एवं निर्माण किया गया है। भा.प.अ. केंद्र में वैश्लेषिक रसायन प्रभाग की विभिन्न गतिविधियों में से एक प्रमुख है, यूरेनियम धातु प्रतिदर्शों में कार्बन का विश्लेषण। इस कार्य के लिए अभी तक परंपरागत निम्न दाब विधि पर आधारित उपकरण तथा केंद्र में ही विकसित ऊष्मा चालकता संसूचक (TCD) पर आधारित कार्बन विश्लेषक का उपयोग किया जाता रहा है। इस प्रकार के उपकरणों में कुछ खामियां मौजूद थीं। जैसे कि निम्नदाब विधि में एसीटोन-द्रव नाइट्रोजन स्लरी बनाने की कठिन प्रक्रिया से गुजरना पड़ता था। साथ ही इस प्रकार के उपकरणों में निर्यात नलिकाओं, आण्विक छलनी ट्रैप एवं नाजुक कांच के पात्रों का इस्तेमाल होता है। दूसरी ओर TCD आधारित कार्बन विश्लेषकों में आण्विक छलनी ट्रेप, सालेनाइड वाल्व और वाहक गैस के रूप में कीमती हीलियम गैर का इस्तेमाल होता है।

अतः केंद्र में अवरक्त संसूचन प्रणाली पर आधारित एक उन्नत तकनीक के कार्बन विश्लेषक का अभिकल्पन, विकास एवं निर्माण किया गया है। इस यंत्र का प्रचालन इस सिद्धांत पर आधारित है कि जब एक क्वार्ट्ज दहन नलिका में ऑक्सीजन की उपस्थिति में धातु प्रतिदर्श में उपस्थित कार्बन का दहन होता है तो वह कार्बनडाईऑक्साइड में परिवर्तित हो जाता है। फिर इस कार्बनडाईऑक्साइड का संसूचन, अवरक्त संसूचकों के उपयोग द्वारा किया जाता है। इस यंत्र में कई कमियों को दूर किया गया है, साथ ही इसमें आण्विक छलनी ट्रैप की भी आवश्यकता नहीं होती है। विकसित किया गया यंत्र काफी किफायती भी है क्योंकि इसमें कीमती हीलियम वाहक गैस की जगह ऑक्सीजन का दहन हेतु उपयोग होता है। इस नये यंत्र में साधारण वातीय नियंत्रणों (pneumatic control) का उपयोग होता है। तथा इसके द्वारा विश्लेषण में काफी समय लगता है। इस यंत्र द्वारा यूरेनियम धातु के प्रति किलोग्राम में उपस्थित कार्बन की 10 मिलीग्राम तक की मात्रा का पता लगाया जा सकता है। विकसित किये गए यंत्र का उपयोग करते हुए यूरेनियम प्रतिदर्श में कार्बन के विश्लेषण की विधि का माननीकरण किया गया है। अब इस यंत्र का उपयोग नियमित विश्लेषण हेतु किया जा रहा है।

भा.प.अ. केंद्र द्वारा विकसित की गयी निम्न तकनीकें प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के लिए उपलब्ध हैं :

1. ग्रामीण स्वास्थ्य संरक्षण हेतु टेली-ईसीजी मशीन :

इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम (ईसीजी) हृदय परीक्षण की एक ऐसी मशीन है जिसके द्वारा हृदय संबंधी कई बीमारियों का पता लगाया जाता है। यह एक साधारण, दर्दरहित परीक्षण होता है जिसके द्वारा हृदय गति, दिल की धड़कन, हृदयघात, हृदय धमनियों की स्थिति इत्यादि से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। ईसीजी मशीन लगभग सभी बड़ी अस्पतालों में उपलब्ध होती हैं। परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों के दूर-दराज के इलाकों में इस प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हो पाती हैं। भा.प.अ. केंद्र में एक ऐसे टेली-ईसीजी मशीन का विकास किया गया है जिसे हाथ में लेकर, मरीज के पास पहुँच कर उपयोग में लाया जा सकता है। इस यंत्र का प्रचालन मोबाईल फोन की सहायता से ब्लूटूथ के माध्यम से होता है। यह किसी व्यक्ति के ईसीजी को रिकॉर्ड करता है और उसे मोबाईल स्क्रीन पर प्रदर्शित करता है। पूर्ण रिकॉर्डिंग होने के पश्चात् ईसीजी को मल्टीमीडिया मैसेजिंग सर्विस (MMS) के द्वारा किसी विशेषज्ञ डॉक्टर के मोबाईल फोन पर भेजकर आवश्यक सलाह प्राप्त की जा सकती है। वास्तव में यह मशीन ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य संरक्षण हेतु अति उपयोगी है। जिन अस्पतालों में लोकल एरिया नेटवर्क (LAN) की सुविधा मौजूद है, वहाँ इस मशीन को मोबाईल फोन जगह लैपटॉप अथवा कंप्यूटर डेस्कटॉप के माध्यम से भी प्रचालित किया जा सकता है।

टेली-ईसीजी की संकल्पना, टेलीफोन लाइनों के विस्तार के साथ ही लगभग 30 वर्ष पूर्व प्रतिपादित की गई थी। परन्तु टेलीफोन लाइनों का उपयोग संचार तक ही सीमित रह गया। वर्तमान परिवेश में सैटेलाइट संचार के माध्यम से बेतार टेली-औषधियों के विकास पर कार्य किये जा रहे हैं। चूंकि ग्रामीण क्षेत्रों में शहरों की अस्पतालों की तरह लोकल एरिया नेटवर्क की सुविधा उपलब्ध नहीं होती है। इसलिए

ग्रामीण स्वास्थ्य संरक्षण के लिए मोबाईल सेलुलर नेटवर्क जैसी वैश्विक प्रणाली अथवा अत्याधुनिक थ्री जी नेटवर्क का उपयोग अत्यधिक लाभकारी साबित होगा। टेली-ईसीजी प्रणाली विकासशील देशों के लिए अतिमहत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यहाँ 70% से अधिक जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है जो आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं का बहुत ही कम इस्तेमाल कर पाती है। अब इस प्रकार के टेली उपकरणों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों की जनता को भी अत्याधुनित चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध कराई जा सकती है।

प्रस्तुति : एस. के. पाठक
ईंधन पुनर्संसाधन प्रभाग
भा.प.अ. केंद्र, ट्रांबे,
मुंबई - 400 085.

अन्य विज्ञान समाचार :

1. बाल से भी पतली सौर बैटरी :

वैज्ञानिकों ने मनुष्य के बाल से 250 गुणा अधिक पतली सौर बैटरी विकसित की है। हावर्ड विश्वविद्यालय ने इस सूक्ष्म बैटरी का नाम ''कोसिलिकन नैनोवायर'' दिया है पर इसे इलेक्ट्रॉनिक सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखा जा सकता है। हावर्ड विश्वविद्यालय के अनुसंधानकर्ता मानते हैं कि इन सौर बैटरियों के कारण भविष्य में नौनोस्केल उपकरण के संचालन की क्षमता में औसतन 50 प्रतिशत की वृद्धि होगी। आधुनिक युग में वस्तुतः अल्ट्रा माईक्रोस्कोपिक तकनीकी पर अनुसंधान जोरों पर चल रहा है। इसी अध्ययन का नतीजा है, बालों से 250 गुणा पतली और बैटरी का आविष्कार जो प्रकाश को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित करती है। यह अर्द्धचालक सिलिकॉन की बनी है। एक सिलिकॉन नैनोवायर 200 किलोवाट के बराबर चमक पैदा करती है। एक वाट का 250 अरबवां हिस्सा भले ही शक्ति देने के लिए नगन्य है लेकिन नैनोस्केल में कम शक्ति से चलने वाले इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों को चलाने के लिए काफी कारगर है।

2. आकाश द्वारा बिजली पैदा करने की योजना :

वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों की खोज में डूबी एक अमरीकी कंपनी ने आकाश अर्थात अंतरिक्ष से बिजली पैदा करने की योजना बनायी है। पृथ्वी से अधिक ऊँचाई पर अंतरिक्षयान द्वारा पैदा की जाने वाली विद्युत ऊर्जा अधिक समय तक विश्व में ऊर्जा संकट से निजात दिला सकेगा। कैलिफोर्निया की कंपनी स्काई विंड पॉवर कारपोरेशन ने आकाश में करीबन 35,000 फीट की ऊँचाई पर बिजली उत्पादन की योजना बनाई है।

कंपनी ने इसके लिए ऑस्ट्रेलिया में अपने फ्लाइंग इलेक्ट्रिक जनरेटर एवं रोटोस्क्राफ्ट का परीक्षण भी सफलतापूर्वक किया है। स्काई विंड पावर के निदेशक डॉ. डेविड शेपर्ड के अनुसार इस योजना में शुरूआती दौर में 2 मिलियन डॉलर का खर्च आएगा एवं विद्युत उत्पादन की कुल क्षमता 250 कि.वाट की होगी जिससे 200 घरों की बिजली उत्पादन की जा सकती है और यह ऊर्जा बिल्कुल प्रदूषणमुक्त है। वस्तुतः अंतरिक्ष में दो सेटेलाइट 25 मीटर व्यास के षष्टाकार आकृति के सामान्तर क्रम में रखे जाएँगे जिससे सूर्य की अल्ट्रावाइलेट किरणें पड़ेगी एवं दो षष्टाकार सैटेलाइट के मध्य में दो 45 डिग्री पर परावर्त्तक रखें जाएंगें जिससे किरणें पृथ्वी की तरफ फोकसन होगी और माइक्रोवेव द्वारा ऊर्जा प्राप्त की जा सकेगी।

3. सूर्य से पैदा होगा चुंबकीय तूफान :

सूर्य पर नजर आने राले काले धब्बे सौर हवाओं के जन्मदाता बनेंगे और पृथ्वी पर चुंबकीय तूफान उठ खड़ा होगा। उज्जैन स्थित वराह मिहिर वैज्ञानिक केंद्र एवं शोध संस्थान के खगोल वैज्ञानिक डॉ. संजय कैथवास ने यह जानकारी दी। उन्होंने बताया कि इस समय सूर्य पर काले धब्बे सक्रियता से बन और मिट रहे हैं। करीब दो दशक पूर्व भी ऐसी परिस्थितियां बनी थीं जिसके परिणामस्वरूप संचार व्यवस्था में बाधा पैदा हुई थी एवं कृत्रिम उपग्रह बुरी तरह नष्ट हो गए थे। डॉ. कैथवास के अनुसार अंतरिक्ष में भी तूफान उठता है जिसका मुख्य कारण सौर हवाएँ हैं। इसके कारण पृथ्वी पर चुंबकीय तूफान पैदा हो सकता है। हालांकि इस घटना में केवल कृत्रिम उपग्रहों एवं संचार प्रणाली पर बुरा असर होगा, जानमाल को कोई नुकसान नहीं होगा।

4. पंपों का रिमोट कंट्रोल पोन द्वारा :

जी हां, अब पंपों को आप मैनुअल खोल या बंद करने की जगह फोन द्वारा खोल या बंद कर सकेंगे। फोन द्वारा खोलने अथवा बंद करने की पद्धति का आविष्कार हरियाणा में एक सैनिक कार्यशाला में 28 वर्षीय श्री प्रेमसिंह सैनी ने की, जो सेना में मात्र आठवीं पास एक इलेक्ट्रिकल मैकेनिक हैं। उनके अनुसार किसी विशेष फोन नंबर द्वारा ही पंप को चालू या बंद किया जा सकता है। श्री प्रेमसिंह ने इंफ्रारेड एवं रेडियो फ्रिक्वेंसी आधारित क्लच ब्रेक पद्धति से वाहनों में बीक की दूरी बनाए रखने का तरीका भी ढूँढ निकाला है।

5. 35,000 वर्ष पुरानी बाँसुरी :

पश्चिमी जर्मनी की एक गुफा से हाथी के समान मैम्मथ नामक पशु के दांत से बनी 35,000 वर्ष पुरानी बाँसुरी प्राप्त हुई है। अब तक का यह सबसे पुराना वाद्य यंत्र है।

ट्यूविनजन विश्वविद्यालय के पुरातत्त्वविदों ने 32 टुकड़ों में प्राप्त इस बाँसुरी को दक्षिण पश्चिमी जर्मन स्थित स्वाबियन नामक पर्वत की गुफा से प्राप्त की है। इस बाँसुरी को स्टुट्गार्ड संग्रहालय में रखा गया है। पुरातत्त्वविदों का पूर्ण विश्वास है कि मैम्मथ नामक जीव, 11 हजार वर्ष पहले पाये जाने वाले जानवर के दाँत से बने बाँसुरी का ही स्वरूप है जो 32 टुकड़ों में विभक्त है उस वक्त शायद मनुष्यों का अस्थायी आवास वहां मौजूद होगा।

6. साईबर-मेडिसिन अब आपके दरवाजे में आएगा :

साईबर-मेडिसिन के क्षेत्र में कार्य कर रहे वैज्ञानिकों की रिपोर्ट के अनुसार यह तथ्य सामने आया है कि आज के भागदौड़ भरे दिनों में डॉक्टर, नर्स, कंपाऊंडर एवं सहकर्मी विभिन्न हाइटेक उपकरणों के माध्यम से अपने रूम में बैठे-बैठे सैकड़ों मरीजों का इलाज एवं दवा देकर उसे ठीक करेंगे। इसके लिए सबसे कारगर सिद्ध होगा चिप-तकनीकी, जिसे रोगी के संक्रमित भाग के शरीर में प्रत्यारोपित कर दी जाएगी यह इलेक्टॉनिक आयुर्विज्ञान एवं कंप्यूटर यानि न्यूरल - नेटवर्किंग के माध्यम से शरीर में कायापलट एवं परिवर्तन हो रहे विभिन्न जैविक एवं रसायनिक क्रियाओं पर नजर रखेगी। डॉक्टर एवं नर्स के सामने रखे संगणक पर रोगी से संबंधित रोग की सारी विद्युत जानकारी उस संगणक में लगे चिप के अनुसार रोगी की स्थिति जैसा है वैसे आँकड़े इकट्ठा किए जाएँगे। इन आँकड़ों का अध्ययन (बायो) एवं विश्लेषण डॉक्टर द्वारा किया जाएगा एवं रोग के रोकथाम हेतु आवश्यक दवा एवं सलाह दी जाएगी जो अनुभवी डॉक्टरों के माध्यम से होगा। यदि कोई रोग है तो उसकी प्रवृत्ति क्या है? एवं उसकी परिस्थिति भी अलग होगी और ऐसी दशा में आँकड़ा भी रोग के कारणवश असमान्य दिखाएगा, कंप्यूटर के स्क्रीन पर संदेश (रोग से संबंधित) तत्काल फ्लैश होने लगेगा एवं अलार्म बजने लगेगा, तथा उसमें आवाज भी आएगी रोगी को..... रोग है उसे तत्काल दवा चाहिए, नर्स उससे संबंधित चिकित्सक से राय लेकर रोगी को दवा देगी वह भी नेटवर्किंग के माध्यम में डॉक्टर एवं नर्स के द्वारा होगी को घर पर रहने की उसके शरीर के रोग के अनुसार दवा की मात्रा ब्लड प्रेशर, बुखार, असाध्य रोग की जानकारी कोसों दूर बैठकर आप प्राप्त कर सकते हैं वर्चुअल नर्सिंग के ऊपर यह तकनीकी चल रही है।

इसके लिए कुछ आयुर्विज्ञान के अत्याधुनिक यंत्र भी मौजूद हैं, जैसे स्मार्ट टॉयलट नामक यंत्र से पेशाब में शूगर की मात्रा की जाँच खुद ब खुद हो जाती है। यह वस्तुतः इंटरनेट के माध्यम से डॉक्टर/ वैज्ञानिक और नर्स को बैठे बैठे ही एक कमरे के संपर्क में तथा रोगी की दवा की खोज में रहता है लेकिन यदि सही समय पर रोग की दवा से रोगी ठीक हो जाए तो रोगी भाग-दौड़ भरी जिंदगी एवं थकान से मुक्ति पा सकता है और समय रहते यदि रोगी को डॉक्टर से इलाज हो जाए तो रोग तुरंत ठीक हो जाएगा। बिना खर्च के तमाम तरीके के टेस्ट कराने की जरूरत नहीं पड़ेगी। यह वस्तुतः स्मार्ट मेडिसिन कैबिनेट रोगियों को नर्सिंग (वर्जुअल) की तरह पढ़ाई शुरू हो रहा है जिसके द्वारा सही रोग को पहचानने एवं ईलाज करने में मदद मिलेगी वो भी रोगी से कोसों दूर।

अमरीका के मिशिगन विश्वविद्यालय के नर्सिंग विभाग में इस विषय पर पाठ्यक्रम पूरी तरह से तैयार हो गया है। कैलिफोर्निया के आयुर्विज्ञान अनुसंधान केंद्र के प्रमुख टॉम मूके को अब अंतरीक्ष विज्ञानी के रोग के इलाज में जुटे हैं, पृथ्वी पर ही रोगों का इलाज स्वास्थ्य विशेषज्ञों के बीच अंतरिक्ष यात्रियों और पृथ्वी पर बैठे डॉक्टर एवं नर्सों तथा संगणक द्वारा वर्चुअल नर्सिंग के माध्यम से वर्चुअल क्लीनिकों में रोग की सलाह दी जाएगी क्योंकि अंतरिक्ष का वातावरण वैज्ञानिकों एवं डाक्टरों के बीच समन्वय करना बड़ा मुश्किल होता है। रक्तचाप घटने लगता है एवं वहां भारहीनता के कारण पूरे शरीर में तेजी से दर्द होता है। डॉक्टर कहाँ खोजा जाए, क्या किया जाए इन सब का जवाब एवं इलाज इंटरनेट के माध्यम अर्थात (वर्चुअल नर्सिंग) के माध्यम से ढूँढ लिया गया है। ऐसा माना जा रहा है कि इस तकनीक के प्रभाव से न सिर्फ नर्सिंग का पेशा एक शसक्त विकल्प के रूप में उभरेगा, बल्कि डॉक्टर और नर्सों के बीच सही तालमेल से रोगी का रोग भी तुरंत दूर होगा। अंतरिक्ष में वैज्ञानिकों के लिए अभी भी परेशानी है क्योंकि अंतरिक्षयात्रियों की आवाज को पृथ्वी पर पहुंचने में काफी वक्त लगेगा ऐसे में तुरंत सलाह या इलाज पाना मुश्किल है।

7. सुपर कंप्यूटर द्वारा ब्लैक होल की आवाज सुनेंगे

स्पेस वैज्ञानिकों ने एक ऐसा सुपर कंप्यूटर तैयार किया है जो ब्रह्मांड के संगीत को सुनने में मदद देगा। वैज्ञानिकों का दावा है कि सुपर कंप्यूटर की मदद से दुनियां के परे मौजूद ब्लैक होल की आवाज को सुन सकेंगे। इसे "सूगर" का नाम दिया गया है इसे साईराक्यूज विश्वविद्यालय के खगोलीय विज्ञान विभाग के दल द्वारा तैयार किया गया है।

संस्था के अध्यक्ष डॉ. डूफेन ब्राऊन के अनुसार यह कंप्यूटर बेहद बड़ी तादात में डाटा इकट्ठा करगे, जिससे ब्लैक होल की आवाज को अलग करने में सहायता प्राप्त होगी।

इससे पहले कि खगोल वैज्ञानिक ब्लैक होल की आवाज को अन्य से अलग करें, इन्हें यह पता लगाना जरूरी है, आखिर इसकी आवाज किस तरह की होती है। इसके लिए सुदूर ब्रह्मांड में होने वाली प्रचंड घटनाओं के दौरान पैदा होने वाली गुरूत्वीय तरंगों को सुनना होगा। प्रोफेसर ब्राऊन और उनके वैज्ञानिक दल दो ब्लैक होल के आपस में टकराने से कैसी ध्वनि उत्पन्न होती है इसे जानने हेतु आंईसटाइन के सापेक्षिकता के सिद्धांत को गहराई से अध्ययन करेंगे एवं इसके अध्यक्ष में 'सूगर' यानि सुपर कंप्यूटर के मॉडल को जोड़कर गुरूत्वीय तरंगें की हलचल को कैद करेंगे एवं इससे यह समझेंगें कि क्या गुरूत्वीय तरंगे, 'सूगर' को कुछ संकेत दे सकती है? ब्लैक होल की हलचल के बारे में एवं ब्रह्मांड में चल रही घटना को गुरूत्वीय तरंगों द्वारा ध्वनि को सुपर कंप्यूटर द्वारा संकेत के माध्यम से सुना जा सकता है। इसमें दिक्कत यह है, ध्वनि का ऊँचाई पर प्रकीर्णन होता है एवं अवशोषण होता है और यह निर्वात, ब्रह्मांड में नहीं सुना जा सकता क्योंकि ध्वनि के लिए माध्यम की आवश्यकता होती है लेकिन शायद गुरूत्वीय तरंगों एवं आंईसटाईन के सापेक्षवाद सिद्धांत को विश्लेषण कर शायद यह संभव है ऐसा डॉ. ब्राऊन का मानना है।

संकलन : संजय गोस्वामी
एन.आर.जी.,
बी.ए.आर.सी., मुंबई - 400 085.

विज्ञान कविता

प्रकृति अपनी बदल

यह अजब अनुभूतियों का है संसार
कदम-कदम पर चमत्कार है, चमत्कार
सुधिजन करते रहे पुकार
मत बनाओ इन्हें मौत का आधार।
आकाश? आकाश की न पूछो बात
उलटा लटका आभासित होता
पार उसके क्या, नहीं बताता
जाने कहाँ से गर्मी, सर्दी, वर्षा है लाता।
अजब सितारों की बातें हैं
टिमटिम करते कुछ गाते हैं
भटकों को राह दिखाते हैं
पर राज़ न दिल का बताते हैं
चांद से रोशन रहती रातें
नहीं चाँदनी करती बातें
सभी नक्षत्र हैं हँसते-गाते
नहीं कभी हैं सेंध लगाते!
दिनकर भी कितना मदमाता
कितना निःस्वार्थी, परहित जल जाता
फिर भी ज्वलनशील न आभासित होता
पार क्या है उसके, खबर कभी न देता।
हरित क्रांति वर्षा लाती है
सावन-भादों में मदमाती है
जलमग्न धरा जब होती है
पश्चाताप में नहीं रोती है
भले ही कितनी जिंदगियाँ खोती हैं
और नयी भी तो जन्म लेती हैं।
उर्वरा है, नवजीवन देती धरा
भावना-शून्य कभी न होती है।
मौसम के चक्र निर्विघ्न हैं घूमते
इनसानियत हित ही मदमाते-झूमते
ज़रा घनघोर घटाओं के दिन टटोलो
कभी देखा है दर्द उनका भी, बोलो।
फिर भी विहँसते बरस जाते हैं
शीतल करने धरा को लबालब पानी देते हैं
कृषक भी होते कितने उपकारी
क्षुधाग्रस्त काटें रात सारी
नहीं दर्शाते कभी अपनी लाचारी
नहीं उन्हें तड़पने - रोने की बीमारी।
तब हे मानव! तुझे क्या हो जाता
जो इतना खूँखार हो जाता
विध्वंस तो तेरा होना है
फिर काहे का रोना है।
सीख, सीख, सीख
प्रकृति से ले, तू कुछ सीख
छोड़ सारे गुर्गों के धंधे
प्रकृति अपनी बदल ले बंदे।
मत बिगाड़ प्रकृति की शक्ल
इनसानियत हेतु लगा तू अक्ल
देख ज़माना जाएगा बदल
मत दे कभी प्रकृति में दखल।

श्रीमती रवि रश्मि 'अनुभूति'
9-बी, नालंदा,
अणुशक्ति नगर, मुंबई - 400 094

कुछ फूल - कुछ कांटे

''वैज्ञानिक'' का अक्तूबर 2008 - मार्च 2009 का अंक प्राप्त हुआ। डॉ. देवकी नंदन के लेख 'हिंदी का विज्ञान साहित्य : कल, आज और कल' अच्छा लगा। हिंदी विज्ञान को बचाये रखने के लिए जगह जगह झूठा स्वांग रच रहे हैं, जबकि विज्ञान को हिंदी में स्थापित करने का संकल्प, हिंदी को अंग्रेजी के कवच में ढ़ँककर अवाम को भाषा की पहुँच से दूर रखे हैं। जैसे पत्र-पत्रिकाओं में हिंदी के राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा के स्वरूप की स्थापना एवं उनकी स्थापना के कारणों से संबंधित विशेषज्ञों की भरमार है। इस दिशा में हिंदी विज्ञान सभाओं, संगोष्ठियों, कार्यशाला एवं संस्थाओं की वैज्ञानिक भागीदारी कुछ कम नहीं है। भावुकता के स्तर पर भी बहुत कुछ कहने-सुनने वालों की समाज सेवी संस्थाओं जो हिंदी को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान दिलाने में संकल्पित हैं की कमी नहीं है लेकिन यह गंभीर प्रयास की वकालत करना एवं संकल्प लेना स्वयं की असफलता की कहानी कह रही है। क्योंकि आज देश के स्वतंत्र हुए करीब 62 वर्ष हो गए हैं लेकिन हिंदी की दुर्दशा को सुधारने हेतु संस्थाओं, पत्र-पत्रिकाओं की बाढ़ सा आ जाना इसकी असफलता की कहानी कहता है। अब तक तो हिंदी को इस कदर हो जाना चाहिए कि हिंदी दिवस समारोह गली-गली झंडे की तरह फहरने लगे जो 15 अगस्त एवं 26 जनवरी को होता है। आजादी मिलने के इतने लंबे समय के बाद हिंदी दिवस पर समारोहों के आयोजन भी किसी फंड की जुगाड़ में रहे यह हिंदी - दिवस पर मात्र खानापूर्ति करता है। इसका यह मतलब है, इसकी सफलता का प्रयास पूरी लगन से नहीं हुआ। हिंदी विज्ञान की हिंदी में संगोष्ठी, पत्रिका निकालना एक मात्र उद्देश्य नहीं है, बल्कि उसमें वैज्ञानिक जागरूकता पैदा करना है।

भविष्य में हिंदी से जुड़ी हीनभावना, बोल-चाल की समस्या से मुक्ति एवं हिंदी से अंतर्निहित संकीर्णताजन्य बाधाओं से संघर्ष करना आवश्यक है। आज अंग्रेजी इस तरह हावी है कि एक न्यूज पेपर हिंदी के न्यूज पेपर से दस गुना कम दाम पर बिक रहे हैं और उससे भी उत्तम क्वालिटी का हिंदी में साहित्य को सहयोग (आर्थिक एवं सामाजिक) न मिल पाने से कितने ग्रंथों में दीमक लग रहे हैं। हिंदी विज्ञान साहित्य का मूल्य कम होने के बावजूद कोई पढ़ने की लालसा नहीं रखता, कारण यह कि हिंदी में विज्ञान पढ़ना मुश्किल है। इस कारण विद्यार्थियों में इस कदर खौफ है कि वो विज्ञान लेने का सीधा मतलब यही समझते हैं कि विज्ञान के लिए अंग्रेजी बहुत अनिवार्य है। एक तो शिक्षकों में भी यही सोच है और अभिमत विज्ञानी भी यही सोचते हैं, जिससे हिंदी में विज्ञान की गति बिल्कुल थम गई है, न की शिक्षा के उद्देश्य से। लेकिन पाठक मित्रों, शिक्षाविदों, वैज्ञानिकों से मेरा यही अनुरोध है कि कृपया हिंदी के प्रति एक तो व्यवहारिक अशुद्धियों को दूर करें एवं दूसरा इसके प्रति व्याप्त उदासीनता एवं संकीर्णता को दूर कर नयी आशा एवं पूरी श्रद्धा से विज्ञान के क्षेत्र में अपना कार्य हिंदी में करें।

- पिंकी गोस्वामी
यमुना, जी/13,
अणुशक्ति नगर, मुंबई - 400 094

- - -

''वैज्ञानिक'' का अप्रैल-सितंबर 2008 'प्रतियोगिता विशेषांक' पढ़ा। काफी अच्छा लगा। सदैव की तरह संपादकीय तो अति उत्तम था ही पर कुछ लेख 'अमृत फल - नोनी (मोरिन्डा सिट्रीफ़ोलिया, स्मृति के विविध आयाम, कैंसर की रोकथाम में एंटी - ऑक्सीडेंट्स की भूमिका तथा 'वैज्ञानिकों के रोचक प्रसंग' विशेष आकर्षण के केंद्र बने। प्रसन्नता का विषय है कि अब लोग स्वदेशी विधियों में भयंकर व जानलेवा रोगों जैसे कैंसर, मधुमेह, हृदयरोग, गुर्दे के रोगों के उपचार में न केवल रुचि लेने लगे हैं बल्कि अचूक सूत्रों (फार्मूलों) की तैयारी में भी जी जान से लगे हैं और काफी सफलताएं भी उन्हें हाथ लगी हैं।

- सलालुद्दीन अहमद
स्वास्थ्य भौतिकी प्रभाग
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085.

रचनाकारों से विशेष निवेदन

कृपया प्रकाशनार्थ पांडुलिपि तैयार करते समय संपादन की सुविधा के लिए निम्नलिखित निर्देशों का पालन करें :

1) (क) विभक्तियों को शब्दों से अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'राम ने', 'मेज पर', लड़कों को'
(ख) सर्वनामों की सभी विभक्तियों को मिला कर लिखा जायें -
उदाहरण - 'उसने', 'मैंने', 'उनका', 'हमसे'
(ग) जिन सर्वनामों के अंत में 'ही' अथवा 'ई' लगा हो, उनकी विभक्तियों को अलग लिखा जाये -

2) पूर्वकालिक क्रियाओं के 'कर' को अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'जा कर', 'आ कर', अन्यथा 'कर' मिलाकर लिखें।

3) संयुक्त क्रियाओं में दोनों अंशों को अलग-अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'आ गया', 'चल पड़ा', 'हो सका'

4) जिन भूतकालिक कृदंत क्रियाओं अथवा विशेषणों का अंत 'या' से होता है, उनके स्त्रीलिंग और बहुवचन रूपों में 'य' का ही प्रयोग किया जाये -
उदाहरण - 'गया, गयी, गये', 'नया, नयी, नये', 'आया, आयी, आये', 'लाया, लायी, लाये', 'पाया, पायी, पाये', 'खाया, खायी, खाये', 'किया, किये आदि।

5) 'हुआ' जैसी जिन क्रियाओं के अंत में 'आ' है उनके स्त्रीलिंग 'हुई' व बहुवचन 'हुए' के अनुसार होना चाहिए।

6) 'लिये/लिए' : 'लिये' को 'लिया' का बहुवचन रूप मानें और 'लिए' को विभक्ति चिन्ह।
'चाहिये / चाहिए' : 'चाहिए' ही लिखा जाये।

7) 'एसा / ऐसा' : 'ऐसा' लिखा जाये।
'दिखाई / दिखायी' : 'दिखाई' संज्ञा रूप मानें और 'दिखायी' भूतकालिक क्रिया (स्त्रीलिंग)। उदाहरण - 'सांप दिखाई पड़ा', 'मैंने उसे पुस्तक दिखायी' इसी प्रकार 'पढ़ाई' और 'पढ़ायी' में भी अंतर करें।

8) आदरार्थ आज्ञा रूपों में संभावनार्थक क्रियाओं में 'ए' ही लिखा जाये -
उदाहरण - 'आइए', 'खाइए', 'जाइए', 'समझिए', 'कीजिए' 'रखिए' आदि।

9) अनुस्वार और आनुनासिक ध्वनियां : 'संयुक्त व्यंजन' की अनुनासिक ध्वनि को 'अनुस्वार' के द्वारा दर्शाया जाना चाहिए -
वर्ग का प्रत्येक पंचम वर्ण यथा, ङ ('क' वर्ग), ञ 'च' वर्ग), ण ('ट' वर्ग), म ('प' वर्ग) तथा न ('त' वर्ग) अनुनासिक ध्वनियां है।
अनुस्वार स्थापन का नियम इस प्रकार है : जिस किसी अक्षर के आगे यदि उसी वर्ग की अनुनासिक ध्वनि है तो उसे अनुस्वार (बिंदी) से बदला जा सकता है;
उदाहरण - कंगन, अंक, व्यंजन, रंजन, ठंडा, डंडा, पंडित, कंपन, पंप, बंद, परंतु, किंतु, मृगांक, दंडित, संबंध, अंत आदि।
इस नियम का प्रयोग ध्यानपूर्वक करना चाहिए, अन्यथा अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है। जन्म, मान्य, समन्वय, सम्मति आदि शब्द वैसे ही रहेंगे।

10) एकवचन से बहुवचन - 'या' से 'ये', 'ए' नहीं। जैसे, रुपया - रुपये, हंसिया - हंसिये (हंसिए' आदारार्थ आज्ञा रूप होगा)

11) संस्कृत के जो शब्द हिंदी में तत्सम रूप में प्रचलित हैं, उनमें 'य' का व्यवहार उचित है। जैसे, अस्थायी, बाजपेयी, उत्तरदायी आदि। इन्हें अस्थाई, बाजपेई, उत्तरदाई लिखना न तो व्याकरण सम्मत है और न व्यावहारिक।

12) चंद्र-बिंदु का प्रयोग - छपाई की सुविधा के लिए चंद्र-बिंदु की जगह अनुस्वार का प्रयोग किया जाये। जैसे अंधा, आंख, अंगना, चांद, मां, पहुंचना, हां, आदि।

13) संख्याओं को अरैबिक (अंग्रेजी) में लिखा जाये - 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10.

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, भा.प.अ. केंद्र, ट्रांबे, मुंबई-85 के लिए डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल द्वारा संपादित एवं श्री विपुल सेन द्वारा रचना साहित्य प्रकाशन, कालबादेवी, मुंबई-02, (फोन : 22033526) में मुद्रित व प्रकाशित

वैज्ञानिक (त्रैमासिक) R. No. : 18862/70

दिल्ली, नयी दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ. प्र. के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों व कॉलेजों के लिए स्वीकृत।

'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद'
की
वैज्ञानिक मोनोग्राफ प्रकाशन योजना

परिषद ने विज्ञान के विभिन्न विषयों पर मोनोग्राफ (पृष्ठ संख्या लगभग 64, 96, 128, 192, 256) प्रकाशित करने की एक योजना बनायी है। इस कार्य के लिए उचित मानदेय, (120 रु. प्रतिपृष्ठ लेखन एवं टंकण, चित्रों इत्यादि के लिए अलग) देने का प्रावधान है। परंतु प्रकाशित सभी पुस्तकों पर परिषद के सर्वाधिकार सुरक्षित रहेंगे। विषय-विशेषज्ञों से लगभग 5-6 पृष्ठों में पुस्तकों की विस्तृत रूप रेखाएं आमंत्रित हैं। जिसमें अध्याय, अनुच्छेद, संदर्भ सूची इत्यादि की जानकारी हो।

मोनोग्राफ मुख्य वैज्ञानिक विषयों यथा नाभिकीय, ताप रसायन, जीव विज्ञान आदि पर न होकर उप-विषय, जैसे आइसोटोप, लेसर, रेडियोधर्मिता, अतिचालकता आदि पर हों। उदाहरणार्थ कुछ उप-विषयों के सुझाव इस प्रकार हैं :

- ✧ नाभिकीय ऊर्जा के शांतिमय उपयोग
- ✧ नाभिकीय रिएक्टर
- ✧ नाभिकीय ईंधन - यूरेनियम, प्लूटोनियम
- ✧ नाभिकीय पदार्थ - कवच, मंदक, परिरक्षक एवं अन्य
- ✧ आइसोटोप उत्पादन व उपयोग
- ✧ रेडियोसक्रिय विकिरण व उनके उपयोग
- ✧ नाभिकीय ऊर्जा एवं सुरक्षा
- ✧ एजिंग (काल प्रवाहन) एवं डिकमीशनिंग
- ✧ ईंधन पुनर्संसाधन
- ✧ अन्य संबद्ध कार्य

रूप रेखाओं का मूल्यांकन परिषद द्वारा गठित एक विशेष समिति करेगी। मूल्यांकन रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद लेखक को परिषद के साथ लेखन कार्य संबंधी अनुबंध पर हस्ताक्षर करने होंगे। इस संबंध में अधिक जानकारी के लिए परिषद सचिव से इस पते पर संपर्क करें : **श्री जयप्रकाश त्रिपाठी**, प्रभारी अधिकारी, न्यूक्लीयर मैटेरियल मैनेजमेंट अनुभाग, पी. पी., एफ. आर. डी. (F.D.R.), भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई- 400 085.

E-mail : jptripathi@rediffmail.com
Tel. : 022-2559 1224